सुन्दर साहित्य-माला

८

सम्पादक

श्रीरामलोचनशरण बिहारी

['बालक'-सम्पादक]

सत्यं शिवं सुन्दरम्

प्रेमपथ

[सरस सामाजिक मौलिक उपन्यास]

श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी

पुस्तक-भण्डार, पटना

हिन्दी-साहित्य के परम प्रेमी

श्रीकेशवप्रसादजी

प्रिय केशव बाबू,

तुम्हारे जीवन के अनेक वर्ष जिन पवित्र, मधुर और करुणापूर्ण घटनाओं भरे रहे हैं, उनका मैं आदर करता हूँ। तुम्हे कोई जाने, न जाने, मैं जानता हूँ। तुम्हे कोई पहचाने, न पहचाने, मैं पहचानता हूँ। तुम हिन्दी साहित्य के एकान्त प्रेमी और औपन्यासिक घटनाओं के प्रत्यक्ष रूप हो। ईश्वर की कृपा! तुम अपनी धुन के पक्के, अपनी बात के धनी, सरल—किन्तु अत्यन्त कठोर— और पवित्र प्रेम के सच्चे आदर्शवादी हो। संसार के नेत्रों से छिपाकर अपने-आपको रखनेवाले, प्यारे-दुलारे, तुम्हारे जीवन के सरल और आदर्श सद्गुणों पर मुग्ध होकर, उनके आदर के लिए, मैं यह पुस्तक तुम्हें सप्रेम समर्पित करता हूँ।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-कार्यालय — तुम्हारा

प्रयाग, चैत्र-शुक्ल १, १९८३ — भगवतीप्रसाद वाजपेयी

विमर्श

समाज का आधार मनुष्यकृत बंधनों ही पर है। उन बंधनों को हटा दीजिये और समाज का अस्तित्व मिट जाता है। विवाह भी तो एक कृत्रिम बंधन ही है। बेटा बाप की जायदाद का वारिस होता है, यह भी तो एक कृत्रिम बंधन ही है। इनमे कुछ बंधन तो ऐसे है, जिनकी पहले चाहे जितनी जरूरत रही, अब बिल्कुल नहीं रही। उनका टूट जाना ही अच्छा है। लेकिन कुछ बंधन ऐसे हैं, जो समाज के स्तम्भ हैं, उनका टूट जाना कदापि वांछनीय नहीं।

स्त्री और पुरुष में प्रेम हो जाना स्वाभाविक क्रिया है, लेकिन जिस प्रेम का अंत विवाह हो, नहीं, केवल वासना हो, वह कलुषित है, उसकी निंदा होती है और होनी चाहिये, अन्यथा विवाह की मर्यादा भंग हो जायगी। तारा और रमेश का प्रेम कलुषित है, लेकिन आश्चर्य है कि वह इतने दिनो तक उसे निर्मल और निष्कलंक समझती रही। अगर विधवा साली का अपने जवान बहनोई के साथ एकात में रात-रात-भर बातें करना, चुम्बन और आलिंगन करने से भी न हिचकना, पवित्र प्रेम है, तो फिर संसार में अपवित्र प्रेम कहीं है ही नहीं। पवित्र प्रेम यह रूप नहीं धारण करता, यह तो वासना ही का रूप है। तारा अपने को बहुत दिनों तक धोखा देनेके बाद अंत में रमेश की कुचेष्टा देखकर एक दिन उसका तिरस्कार करती है, और रमेश लज्जित होकर उसके पैरो पर गिर पड़ता है। इसके बाद तारा का एक पत्र रमेश के पास आता है और पुस्तक का अंत हो जाता है। सम्भव है, इस तिरस्कार ने रमेश को सदैव के लिए सचेत कर दिया हो, पर ऐसा अनुमान करने के लिए हमे कोई प्रमाण नहीं मिलता। जो तारा दो बार क्षमा कर सकती है, क्या वह

तीसरी वार न क्षमा करेगी ? जिस तारा में लेखक ने विलासिता और चंचलता का प्रचुर मात्रा में होना बताया है, जो एक बार प्रेम की इन शब्दों में व्याख्या करती है—'जहाँ प्रेम होता है, वहाँ लाज नहीं रहती और जहाँ लाज रहती है, वहाँ प्रेम नहीं होता',—उसका आत्म-दमन करना आशातीत ही है।

लेखक ने बीच-बीच में समाजनीति पर जो विचार स्वयं प्रकट किये हैं या नायक या नायिका के मुँह से निकलवाये हैं, उनसे अगाध प्रेम का समर्थन होता है। मालूम नहीं, वाजपेयीजी ने क्यों दोनों प्राणियों को विवाह-सूत्र में नहीं बाँध दिया—कदाचित् रमेश में इतना साहस नहीं है। जब रमेश ने ज्ञान का उपदेश करके देख लिया कि तारा पर उसका कोई असर नहीं हुआ, जब वह यह भी मानता है कि ऐसी परम सुन्दरी रमणी भोग ही के लिए बनाई गई है, आत्म-दमन करने के लिए नहीं, तो उसका अपने कर्त्तव्य से जी चुराना उसकी कायरता ही है।

मगर यह तो मतभेद की बात हुई। भगवतीप्रसादजी ने हिन्दी-संसार को यह बहुत ही अच्छी वस्तु भेंट की है। इसमें वासना और कर्त्तव्य का अंतर्द्वन्द्व देखकर आप चकित हो जायँगे। देखिये, वासना कैसे-कैसे कपट-वेष धारण करती है—कभी दार्शनिक बन जाती है, कभी भक्ति के रूप में नजर आती है, पर है वह वासना। रमेश ने तारा को अपने प्रेम का वास्तविक रूप दिखा दिया है; और जब बदनामी होने पर भी तारा को क्रोध या रोष नहीं आता, तो वह उससे पूछता है—ऐसी बातें सुनकर भी तुम्हें क्रोध नहीं आता ?

तारा निस्संकोच होकर कहती है,—'मैं तुमसे पूछती हूँ कि मैंने वास्तव में अपराध क्या किया है ? मेरे हृदय को विश्वास है कि मैंने पाप नहीं किया। फिर मुझे रोष किस बात पर पैदा हो ?'

यह वासना का दार्शनिक रूप नहीं तो और क्या है ? रमेश पुरुष है, इसलिए उसकी वासना तर्क का रूप धारण करती है। वह अपनी

स्त्री रमा से कहता है—'मेरी यह आन्तरिक धारणा रही है कि ऐसे समय पर उसके अधःपतन का मार्ग अवरुद्ध करूँगा। मैं सदा उसके अंतःकरण मे ऐसी भावनाएँ भरता रहूँगा, जिससे वह अपने जीवन के इस कठोर तप में सफल हो सके। उसके विचारों में कभी कुत्सित भाव न पैदा होने पावें।'

तर्क का इससे बढ़कर कुत्सित रूप और क्या हो सकता है?

लेकिन अंत में सद्विचार अपना असर दिखाता और यह वासना शुद्ध प्रेम के रूप में बदल जाती है। तारा अपने शुद्ध और पवित्र आचरण से रमेश के हृदय में श्रद्धा का बीज बो देती है। उसे अन्त में ज्ञात होता है कि तारा उसके साथ सदैव निष्कपट और पवित्र व्यवहार करती रही। लेकिन रमेश उसके मनोभावो को समझ न सका। वह सीन, जिसमें रमेश ने तारा का यथार्थ रूप देखा है, बहुत अच्छा हुआ है। रमेश को कुवासनाओं ने उत्तेजित कर रखा है। वह तारा का दृढ़ालिंगन करके कहता है—'तारा आज मुझे क्षमा करोगी।'

तारा की नसों की उत्तप्त शोणित-धारा चंचल हो उठी। उसके दोनो नेत्र जलने लगे। उसकी कलुषित चेष्टा देखकर वह पूछती है—'बोलो, क्या चाहते हो? ब्याह करोगे? क्या करोगे, बोलो ना?'

आगे चलकर तारा कहती है—मैंने प्रेम किया था, आत्म-समर्पण किया था उस प्रेम का यह फल? मैं जानती नहीं थी, प्रेम का यह फल होता है। मै जानती थी, तुम मुझसे प्रेम करते हो, मुझे प्यार करते हो—सखी-भाँव से करते हो-निष्काम-भाव से करते हो। तुम्हारे हृदय में एक क्षण के लिए भी कुत्सित भावना उत्पन्न हो सकती है, मुझे स्वप्न में भी पता न था। मैंने भूल की, उसी भूल का यह प्रायश्चित्त है।'

रमेश की आँखें खुल जाती हैं और वह तारा के चरणों पर गिर पड़ता है।

इस भाँति कर्त्तव्य की, वासना पर, विजय होती है। ठीक उस वक्त,

जब पाठक को मालूम होता है कि अब तारा का पतन हुआ चाहता है, यकायक उसका विवेक जाग्रत हो जाता है और वह रमेश को फटकार बताती है, जो भाषा और भाव दोनों ही पहलुओं से इस कथा की जान है।

मगर हम फिर भी कहेंगे कि यदि तारा ने समाज के बन्धनों की अवहेलना न की होती, तो शायद उसे यह तिरस्कार सुनाने की नौबत न आती। अगर वह इतने दिनों तक कलुषित वासना का परिचय न पा सकी—एक बार उसका प्रमाण मिलने पर भी नहीं समझी, तो हम यही कहेंगे कि वह जरूरत से ज्यादा अबोध है, और ऐसी अबोध बालिकाएँ समाज में जितनी कम हों उतना ही अच्छा।

प्रेमचन्द

१

ज्येष्ठ मास की कड़ी दुपहरी है। भूमि तप्त तवा-सी जल रही है। सारा भूमंडल अग्निमय हो रहा है। वायु के जो झोंके आ रहे हैं उनमें इतनी ज्वाला भरी हुई है कि घरों के भीतर से मनुष्य का निकलना कठिन हो रहा है। चारों ओर उड़ती हुई धूल दिखाई देती है। मार्ग के मार्ग खाली पड़े हैं। कहीं किसी का पता नहीं है।

ऐसे समय में एक नवयौवना सुन्दरी अपने घर की छत पर एक कमरे मे चारपाई पर बैठी हुई है। उसके हाथ में रामायण है। कमरे का द्वार बन्द है। केवल खिड़की खुली हुई है।

युवती ने पढ़ना बन्द कर दिया, और हाथ पर कपोल रखकर चुपचाप लेट गई। एक पैर पर रखे हुए दूसरे पैर का निरन्तर हिलना और नेत्रों का अचंचल भाव युवती के किसी चिन्तना में व्यस्त होने की बात स्पष्ट बता रहे है।

घर की सीढ़ियां पार करके रमेश छत पर पहुँचे। देखा, कमरे के किवाड़ बन्द हैं। किन्तु खिड़की का एक किवाड़ खुला हुआ है। रमेश ने लेटी हुई युवती को अलक्षित रूप से देखा। साधारण वेष में भी उसके लावण्य-भरे सुघटित सुपुष्ट अंग उसके यौवन-सम्पन्न सुवर्ण शरीर को और भी सुन्दर बना रहे थे। वह चिन्तना में इतनी आत्म-विस्मृत हो रही थी कि रमेश का आना और खिड़की के पास खड़ा होना उसे ज्ञात तक न हुआ। यकायक वायु के प्रखर झोंके से खिड़की का एक बन्द किवाड़ बड़े जोर की आवाज करके खुल गया।

युवती की चिन्तना भंग हो गई। उसने खिड़की की ओर देखा, रमेश भयानक धूप में खड़े हुए हैं। वह चौंक उठी, और झपट कर 'धूप में खड़े क्यों तपस्या कर रहे हो', कहते हुए उसने द्वार खोल दिया। रमेश भीतर जा कर चारपाई पर बैठ गये और कहने लगे—

हाँ, तपस्या कर रहा हूँ।

युवती ने पूछा—क्यों, किस लिए ?

रमेश ने कुछ उत्तर न देकर मुस्कुरा दिया। उस मुस्कुराहट में अप्रकट उत्तर पा कर युवती का मुख लज्जा से नीचा हो गया। वह कुछ समय के लिये अन्यमनस्क हो गई।

कुछ ठहर कर रमेश ने कहा—रामा, कहो आज कितना पढ़ा है।

रामा—पढ़ने के लिए समय कहाँ मिलता है। जाने कैसे दोपहर को थोड़ा सा समय मिल जाता है।

रमेश—क्यो, समय क्यो नहीं मिलता ? सारा दिन क्या हुआ करता है ?

रामा—सारा दिन काम हुआ करता है।

रमेश—इतना अधिक काम है, जो सारा दिन काम हुआ करता है !

रामा—काम-काज करने का ऐसा ढंग ही है, जिससे मुझे पढ़ने लिखने का समय नहीं मिलता।

रमेश—ऐसा क्यो है ?

रामा ने कुछ भी उत्तर न दिया। कुछ समय तक उसके मुख की ओर निर्निमेष नेत्रों से देख कर, उत्तर न मिलने पर, रमेश ने फिर कहा—क्यों, बोलो ना, काम-काज का ऐसा ढंग क्यों है ?

फिर भी कुछ उत्तर न दे कर रामा मन-ही-मन कहने लगी—ढंग क्यों है ? इसलिए कि उन्हें पढ़ना-लिखना अच्छा नहीं लगता।

रमेश ने फिर कुछ कहना चाहा। इतने में सुनाई दिया—सांझ हो गई, उतरोगी नहीं ?

भीता हरिणी की भाँति उद्विग्न नेत्रों से रामा ने रमेश की ओर देखकर कहा—बुला रही है। अब मैं जाती हूँ। नहीं तो नाराज होंगी।

ऐसे भीषण समय में, जब कि मारे गर्मी के नाक में दम हो रहा था, रामा के पास बैठ कर बातें करते हुए रमेश को जो संतोष और आनन्द मिल रहा था, वह रामा के अकस्मात् 'जाती हूँ' कहने पर न जाने कहाँ विलीन हो गया। मुख से कुछ न कहने पर भी रमेश के अवसन्न नेत्र मानो बार-बार कहने लगे—रामा, तुम न जाओ।

रामा अधिक न ठहर कर उठ कर खड़ी हो गई और उत्तर की प्रतीक्षा न करके रमेश की ओर ताकती चली गई।

२

रामा के चले जाने पर रमेश के हृदय मे कुछ ऐसी भावनाएँ उठने लगीं, जिससे उनके मुख की प्रसन्नता क्रान्ति के रूप मे परिणत हो गई। सोचने लगे—रामा रात-दिन घर का काम-काज करेगी, उसका यौवन-सम्पन्न सौन्दर्य गृहस्थी के भार से नष्ट होगा, यह कभी नहीं हो सकता। पढ़ना-लिखना ही उसके लिए एकमात्र काम हो सकता है। मेरे जीवन से रामा के भाग्य का सम्बन्ध हुआ है। जब मैं अपने जीवन में पढ़ने-लिखने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता, तो यह कैसे सम्भव हो सकता है कि वह घर के कठोर काम करती हुई जीवन व्यतीत करे। उसकी सुन्दरता, उसका विचार-स्वातंत्र्य, क्या इसी लिए है कि श्रम-जीवियों की भाँति काम-काज करते हुए कार्य्य-भार से नष्ट हो जाय। इससे न तो उसको संतोष होगा, न मुझे। प्रत्येक स्त्री का जीवन अपने पति के जीवन का अनुयायी होना चाहिये।

सोचते सोचते अकस्मात् रमेश उठ कर बैठ गये। संध्या होने में अब अधिक विलम्ब नहीं है। कमरे से निकल कर उन्होंने उसे बन्द कर दिया और सीढ़ियों से नीचे उतर आये। वस्त्र पहनते हुये चाहा कि रामा का एक

बार दर्शन करके बाहर जाऊँ; किन्तु जिस संकोच के कारण रामा रमेश से कुछ पूछ न सकी, वह संकोच और विवशता रमेश के समक्ष मूर्तिवत् उपस्थित हो गई।

इसी धुन में रमेश घूमने के लिए घर से बाहर हुए। पथ में परिचित जनों का मिलना और बातें करने लगना उन्हें भार-सा प्रतीत होने लगा। उनका हृदय एक ऐसी उलझन में उलझ गया मानो उनके निकट संसार की और कोई बात ही न रह गई। रामा के प्रेम और सहवास ने रमेश की मनोवृत्तियो को इतना आकर्षित किया था कि उनको अपना रामा-रहित जीवन फीका जान पड़ने लगा।

रमेश टहलते हुए ग्राम के बाहर हुए। धीरे-धीरे ऐसे स्थान पर जा पहुँचे, जहां भिन्न-भिन्न वृक्षों के अतिरिक्त यदि और कुछ दिखाई देता था, तो केवल इधर-उधर घूमते हुए पशु, वन्य जीव, उड़ते हुए भिन्न-भिन्न जाति के पक्षी, और कुछ नहीं।

उस स्थान पर पहुँच कर रमेश की अवस्था और भी अव्यवस्थित होने लगी। वन-पशुओं का स्वतन्त्र जीवन देख कर उन के हृदय में अपने जीवन के प्रति घृणा और ईर्ष्या का प्रादुर्भाव हुआ। पक्षियो का सुन्दर विहार देख कर वह मन-ही-मन कहने लगे—संसार में मनुष्य-जीवन कितना परतंत्र है! ये पशु इच्छानुसार उठ सकते है, बैठ सकते है, घूम सकते है, जहाँ चाहे आ जा सकते है; ये पक्षी अपने-अपने घोंसलो से निकल कर मनमानी केलि कर सकते हैं, मनमाने आहार-विहार कर सकते है; किन्तु मनुष्य-जाति सभ्यता और शिष्टाचार के बन्धन में बँध कर आज कितनी परतंत्र हो गई है। यदि इन वन-पशुओं में से मैं भी कोई होता, तो रामा को साथ लेकर मैं भी वन में घूमता। उस समय मै कितना सुखी होता। वृक्षो और झाड़ियों की शीतल छाया में रामा के साथ बैठ कर आज मैं कितना पुलकित होता। किन्तु आह! मैं मनुष्य होकर दुखी हूँ! मैं पक्षी क्यों न हुआ? पशु क्यों न हुआ? मनुष्य क्यों हुआ? उस मनुष्यजाति में मैने क्यों जन्म लिया, जिसमें व्यक्तिगत जीवन का कोई मूल्य नहीं है?

थोड़ी देर इसी तरह की चिन्ता में निमग्न रहने के बाद रमेश ने चारों ओर देखा–वन में अंधकार छा रहा है। न कहीं अब वे पशु दिखाई देते हैं, और न कहीं पक्षियों का वह झुंड ही दिखाई देता है। हर तरफ सन्नाटा है। प्रकृति स्तब्ध हो गई-सी जान पड़ती है। अस्तंगत सूर्य्य की रक्त रश्मियों से रंजित मुखड़ोवाली दिशाओं ने मुख पर अंधकार का कृष्ण अवगुण्ठन डाल लिया है।

रात होते देख रमेश घर चले आये।

३

दिन के दो बजे होंगे। दुपहरी कुछ-कुछ ढल चुकी है। फिर भी धूप की प्रखरता इतनी अधिक है कि उसकी ओर निहारना कठिन हो रहा है। मानो धरती अवाँ-सी धधक रही है।

रामा नित्य की भाँति आज भी समय पाकर थोड़ी देर से रामायण पढ़ रही है। उस समय घर में उसकी जेठानी श्यामा और उसकी एक लड़की को छोड़कर दूसरा और कोई नहीं था। श्यामा के कई लड़के-लड़कियों में आज एक ही लड़की है। इसीलिए श्यामा को अपनी लड़की पर बड़ा प्रेम है। और श्यामा भी अपने पति नीलकंठ की आँखों का प्रकाश है। रमेश, नीलकंठ के कनिष्ठ भ्राता है।

नीलकंठ ही घर के प्रबंधक हैं। रमेश ने तो अब तक केवल शिक्षा ही पाई है। नीलकंठ श्यामा के हाथों की कठपुतली है, वह वही करेंगे जो कुछ श्यामा को स्वीकार होगा।

रामा को ससुराल आये हुए अभी तीन मास बीते हैं। उसका विवाह हुए तीन वर्ष हुए; किन्तु इसी बार उसे इतने समय तक ससुराल में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। गृहस्थी का काम करते हुए जितना समय मिलता है, रामा वह समय पढ़ने-लिखने में बिताती है, यह बात श्यामा

को पहले से ही खटकती थी। अब तो रामा को पढ़ते देखकर श्यामा जल-भुनकर राख हो जाती है।

रामा आज जिस समय पढ़ रही थी, श्यामा उस समय अपनी लड़की के साथ सो रही थी। रामा का पढ़ना सुनकर वह जग पड़ी। बड़ी देर तक कुछ सोचकर उसने रामा से कहा—संध्या होने चली, पढ़ने-लिखने के आगे तुम्हें काम-काज की भी याद रहती है या नहीं?

रामा ने पढ़ना बन्द कर दिया। मन-ही-मन सोचने लगी-न तो अभी संध्या ही हो रही है, और न कोई ऐसा काम ही पड़ा हुआ है। आप तो सोती थीं, और मैं जब पढ़ने में लग गई तो काम आ पड़ा। बात यह है कि मुझे पढ़ते देखकर इनको जलन होती है।

यह सोचते-सोचते धीरे से कहा—अभी तो बहुत समय है। कौन ऐसा काम पड़ा हुआ है?

श्यामा बिगड़ कर बोली—तुम्हे क्या दिखाई देगा कि कौन काम पड़ा हुआ है? जैसा रमेश सिखावेंगे, वैसा तुम करोगी।

रामा कुछ उत्तर न दे सकी। चित्रित चित्र की भांति एक ओर निहार कर रह गई। श्यामा की बात उसके कलेजे मे चुभ गई।

श्यामा उठकर झुँझलाती हुई रसोई-घर मे गई और जूठे बरतन लाकर उनके मलने का उपक्रम करने लगी। रामा यह देख वहाँ गई और चाहा कि मैं बरतन मल डालूँ। किन्तु रामा का यह प्रयास देखकर श्यामा ने झिड़क कर कहा—झगड़ा न बढ़ाओ, हमें काम करने दो।

रामा—झगड़ा बढ़ाने की इसमें कौन सी बात है। तुम्हीं ने तो अभी कहा था कि काम पड़ा हुआ है। लाओ, दो, मैं कर डालूँ।

श्यामा—अभी तक काम की याद न आई थी। जब मैं काम करने आई हूँ तब काम सूझा है! रहने दो, मैं सब कर लूँगी।

रामा—काम की याद क्यों नहीं थी। अभी समय ही नहीं हुआ था,

और अभी काम करने के लिए देरी ही क्या हो रही है? इस समय तो किसी दिन बरतन नहीं मले जाते थे।

श्यामा—तभी तो कहती हूँ, जा कर पढ़ो; मैं बरतन मल डालूँगी। बेकार पढ़ने में हर्ज होगा। यह कौन बड़ा जरूरी काम है।

रामा ने कुछ उत्तर न देकर बरतन मलना आरम्भ किया ही था कि श्यामा ने तड़प कर कहा—जाती हो, या कुछ उपद्रव की भूखी हो?

यह सुनकर भी श्यामा की ओर ध्यान न दे रामा बरतन मलने में लगी रही। श्यामा ऐंठती हुई पानी के एक बड़े घड़े के पास गई और एक छिछले बरतन मे पानी भर कर ले चली। झपट कर चलने के कारण उस बरतन से पानी उछला और बहुत-सा जल एक साथ ही रामा की खुली हुई रामायण पर जा गिरा। यह देखकर रामा का मुख रोष से रक्तवर्ण हो उठा। उसने क्रोध के वेग को रोक कर कहा—इससे क्या होगा, उसे उठाकर कुएँ में डाल दो।

रामा की बात समाप्त होते-होते नीलकंठ ने घर मे प्रवेश किया। रामा ने हाथ धोकर वस्त्र से रामायण का जल सुखाया और उसके भीगे हुए पृष्ठों को सूखने के लिए उसे धूप मे रख दिया।

४

लगातार कई दिनो तक श्यामा को उदास रहते हुए बीत गये। वह मन-ही-मन अनेक बातें सोचती और बिना कहे-सुने शान्त हो जाती। आज बिना कुछ खाये-पिये वह चारपाई पर लेटी हुई थी। उसे छोड़ कर घर में उस समय और कोई नहीं था। श्यामा कुछ सोचती हुई लम्बी साँसें खींच रही थी। नीलकंठ ने घर में जाकर देखा—श्यामा चारपाई पर लेटी हुई करवट बदल रही है। उसका मुख, फीका और भारी हो रहा है। नील-

कंठ ने जाकर बड़े प्यार के साथ कहा—आज कई दिनों से तुम उदास क्यों हो ?

श्यामा ने रुखाई से उत्तर दिया—तुम्हें क्या, कौन उदास है, कौन कैसे है ? तुम तो आनन्द से बाहर रहो। तुम्हें इससे क्या मतलब कि घर में किसपर क्या बीत रही है !

नीलकंठ ने बड़े आग्रह से कहा—बिना कहे हमें क्या पता ?

श्यामा—कहने से ही क्या होगा ? कितनी बार तो कहा, क्या हुआ ?

नीलकंठ—क्या कहा है, बताओ न ?

श्यामा—हमें अब कुछ नहीं कहना है। हमको हमारे मायके भेज दो और तुम सबको लेकर रहो। तुम्हीं से सब कुछ हो सकता है। मुझसे दासी-कर्म नहीं होने का। मैं भीख माँगकर खाऊँगी, पर मुझसे यह न होगा कि वह पलँग पर लेटी हुई पढ़ना-लिखना करे और मैं दासी हो कर घर का सारा काम-काज करूँ। यदि कभी मुख से कोई बात निकल आती है, तो सिर पर चढ़ बैठती है। कल तनिक-सी बात कही थी कि पढ़ने-लिखने के साथ-साथ काम का भी ध्यान रखा करो। बस, इतनी-सी बात पर न जाने कितनी उलटी-सीधी बातें सुना गई। मै जल लेकर चली, तो शायद दो-चार बूँद कहीं उसकी रामायण पर गिर पड़े। इस पर सैकड़ो बातें सुननी पड़ीं। इसलिए मैं तुमसे अब इतना ही कहूँगी कि मुझे मायके भेज दो।

नीलकंठ कुछ समय तक चुपचाप बैठे रहे और फिर लम्बी साँस खींच कर कहने लगे-तुम्हें अब यह कहने की आवश्यकता नहीं। हमने भी भली-भाँति देख लिया कि रमेश की आँखें अब और है। जब तक पढ़ते रहे, तब तक कोई बात नहीं थी। अब भी वह घर के काम-काज की ओर कभी आँख नहीं उठाते। उनकी स्त्री उनसे भी बढ़-चढ़ कर है। इसलिए अब उनसे स्पष्ट कह देना है कि अपना प्रबन्ध करें, अब हमारा भरोसा छोड़ दें।

श्यामा नीलकंठ की बातें सुनकर समझ गई, आज कुछ और ही रंग है। ऐसा समय पाकर अब चूकना बड़ी भूल होगी। अनेक बातें सोच

समझ कर और हृदय के दुःखावेग को उभार कर कहने लगी—रात-दिन घर में ही रहना और उनका अंधेर देखना, यह कबतक हो सकता है? उनको अपने स्वामी का अहंकार है। रमेश भी उन्हें मेम बना कर रखना चाहते हैं। नौकर-चाकर की तरह तुम काम करते हो, और दासी हो कर मै घर का काम-काज करती हूँ।

श्यामा की बातें सुन कर नीलकंठ से न रहा गया। वह यकायक कह उठे—अच्छा, अब इसका निर्णय हो जाना चाहिये। हमसे जहाँ तक हो सका, उनके लिए किया, अब हमसे नहीं हो सकता।

श्यामा लेटी हुई ही छत की ओर निहार कर रह गई थी। कुछ देर रहने के पीछे नीलकंठ उठ कर खड़े हो गये। उनका क्रोध बढ़ता जा रहा था। बाहर निकल कर आये। देखा, रमेश कई मित्रों के साथ बैठे हुए बातें कर रहे हैं। रमेश को बुला कर वह घर में लौट आये। घर में आकर वह एक ओर बैठ गये। पीछे से रमेश आकर वहाँ खड़े हो गये।

नीलकंठ झुँझला कर बोले—हमसे जहाँ तक हो सका, तुम्हारा पालन किया, तुम्हें लिखा-पढ़ा दिया। अब तुम भी कुछ कर सकने के योग्य हो गये हो। इसलिए आज से अपना प्रबन्ध आप ही करो—अपने निर्वाह का दायित्व अपने ऊपर समझो।

एकाएकी नीलकंठ के मुख से ऐसी बातें सुन कर रमेश उन बातों का कुछ अर्थ न समझ सके। केवल नीलकंठ के मुख की ओर निहार कर रह गये।

नीलकंठ ने फिर कहा—हम आज से पृथक होते हैं और बताये देते हैं कि आज अपनी-अपनी रसोई अलग बनेगी। जाओ, अपना इन्तजाम करो।

नीलकंठ इतने जोर से बातें कर रहे थे कि आसपास के घरो की स्त्रियाँ आकर खड़ी हो गईं। रामा भी आकर वहीं घर के एक कोने में बैठे-बैठे यह सब बातें सुनने लगी।

रमेश ने उत्तर दिया—हम नहीं जानते, यह बातें क्यों पैदा हुईं। मेरी समझ में तो उस कारण को दूर करना अधिक अच्छा होता, जिससे यह

बातें उत्पन्न हुई हैं। परन्तु, यदि आप यही चाहते हैं, तो आपकी इच्छा।

हाँ, हम यही चाहते हैं-तीव्र कंठ से कह कर नीलकंठ बाहर चले गये। रमेश खड़े खड़े अपने नखों को दाँतों से काटते हुए कुछ सोचने लगे।

५

स्वतंत्र जीवन के आगे यद्यपि रमेश के लिए पारिवारिक बन्धन भार हो रहा था, फिर भी अकस्मात् नीलकंठ के मुख से स्पष्ट बातें सुनकर वह सहसा कुछ निर्णय न कर सके कि उन्हें अब क्या करना चाहिये। अभी तो उन्होंने बाल्य-जीवन समाप्त करके यौवन के प्रथम सोपान पर केवल पैर रखा था, सुखोपभोग और विलासिता की धुन में संसार के सभी नेह-नाते विषमय दिखाई देते थे; पर आज यकायक अपने निर्वाह का प्रश्न सामने उपस्थित देख सभी कुछ भूल गया।

छत के सामने वाले कमरे मे, रामा के समीप बैठे हुए, रमेश के हृदय मे नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उठ रहे हैं। अधिक देर तक सोचते रहने के पश्चात् रमेश ने कहा—रामा, बताओ, अब क्या होना चाहिये?

रामा ने मस्तक नीचा किये हुए उत्तर दिया—मै क्या बताऊँ।

रमेश ने कहा—क्यों, बताओ क्यो नहीं। अब तो जितने प्रश्न पैदा होंगे, हमें और तुम्हें मिल कर उनका निर्णय करना होगा।

रामा ने ध्यानपूर्वक उत्तर सुना, किन्तु वह कुछ उत्तर न दे सकी। रमेश ने थोड़ी देर ठहर कर फिर कहा—जब तक मै अपना कोई प्रबन्ध न कर लूँ, तब तक के लिए तुमको तुम्हारे मायके भेज दूँ, क्यों?

रामा ने धीमे स्वर में उत्तर दिया—जैसी आप की इच्छा।

रमेश कुछ समय के लिए चुप हो रहे। कुछ सोचते हुए अचानक अपना मस्तक ऊपर उठाकर उन्होंने देखा—रामा की आँखो से अश्रुबिन्दु टपक रहे हैं। रामा का हाथ पकड़ कर पूछा—रोती क्यो हो?

रामा ने कुछ भी उत्तर न दिया। अपने मुख को आँचल से छिपा लिया। रमेश ने अंचल को खींच कर कहा—बोलो न, क्या बात है?

रामा ने दीर्घ स्वर खींच कर कहा—कुछ नहीं।

रामा की इस अवस्था पर रमेश कुछ देर तक सोचते रहे। फिर मन-ही-मन कहने लगे—रामा के रोने का क्या कारण हो सकता है? मायके भेजने का नाम लेते ही रोने का यही एक कारण होगा कि उसने मुझको निर्बल और कापुरुष समझा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कोई पुरुष अपनी स्त्री को उसके मायके भेजकर यदि अपनी सुविधा चाहता है, तो वह बड़ी निन्दा और लज्जा के योग्य है। क्या मैं भी उन्हीं कापुरुषों में हो सकता हूँ—क्या रामा मुझे भी उसी प्रकार का अकर्मण्य समझ कर रोई है?

रमेश के हृदय में इस प्रकार अनेक प्रश्न उठने लगे। नाना प्रकार के प्रश्न पैदा करके और उन पर सोच-विचार कर रमेश को अपने ऊपर अश्रद्धा और घृणा होने लगी।

रमेश फिर झुँझला कर विचार करने लगे—क्या मैं इतना अकर्मण्य हूँ? क्या मैं इतना पतित और निकम्मा हूँ कि अपना और रामा का जीवन-निर्वाह नहीं कर सकता? मैंने जो इतने दिनों तक पढ़ा-लिखा है, उसका क्या यह फल होगा कि अपना और रामा का पालन-पोषण करने में असमर्थ रहूँ?

रमेश का मुख भारी हो गया। गम्भीर नेत्रों से रामा की ओर निहार कर और उसका हाथ अपनी ओर खींच कर उन्होंने कहा—रामा, क्यों, बताओगी नहीं? क्या मैं आज इतना भारी हो गया हूँ कि तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर देने के लिये भी तैयार नहीं हो?

रमेश की बात सुनकर रामा के हृदय का अव्यक्त दुःख उमड़ उठा। रोती हुई रामा के मुख से निकला—भारी तुम नहीं, मैं हो गई हूँ। अभी कल जिसे अपने पास से दूर नहीं होने देते थे, आज उसे न जाने कितने समय के लिए मायके भेजने की बात कह रहे हो। मैं और कुछ सुख

नहीं चाहती, यह ऊँची-ऊँची अट्टालिकायें भी नहीं चाहती, सूखी-रूखी तुम्हारी बची-बचाई रोटियाँ खाकर केवल तुम्हारे साथ रहना चाहती हूँ।

रमेश टकटकी लगाये हुए रामा की ओर निहार रहे थे। रामा की बात समाप्त हो गई; किन्तु रमेश की निर्निमेष चितवन मे कुछ भी अन्तर न पड़ा। उनको स्वप्न में भी पता न था कि रामा मेरे प्रश्न का उत्तर इतनी गम्भीरता के साथ देगी। यह भी पता न था कि उसके क्रन्दन का कारण मेरी अकर्मण्यता नहीं, उसके हृदय का अगाध प्रेम है। वह आज ही रामा के हृदय को पहचान सके। रामा को हृदय लगा कर कहा—रामा मैं तुम्हारे भेजने की बात कह कर केवल तुम्हारे हृदय को टटोल रहा था। विश्वास रखो, मैं तुम्हें कभी नहीं भेज सकता।

रमेश ने देखा—रामा विशाल नेत्रों से उसकी ओर निहार रही है, किंतु वह बात का उत्तर देने को प्रस्तुत नहीं। उसका सुन्दर और प्रतिभापूर्ण मुख एक बार जी भर देख कर उन्होंने कहा—मेरा विश्वास था कि को बहुत चाहता हूँ और जब तुम मेरे पास से उठकर चली जाती रही हो, तब मुझे किसी प्रकार अच्छा नहीं लगता रहा। ऐसी अवस्थाओं में जब जैसी मुझ पर बीती है, मैंने तुम से कहा है, किन्तु आज तुम्हारे उत्तर को सुनकर और तुम्हारे हृदय के भावों को जानकर, मैंने समझा कि स्त्रियों के गम्भीर अन्तस्तल में प्रेम की कितनी अधिक मात्रा अव्यक्त रहती है।

इसके पश्चात् बड़ी देर तक किसी के मुख से कोई बात न निकली। रमेश को शान्त देख कर रामा ने कहा—अभी तक तुमने केवल पढ़ा-लिखा है, नहीं जानते संसार में कितनी कठिनाइयाँ होती है। आजतक न खाने की चिन्ता थी, न पीने की। पढ़ना-लिखना और घूमना-टहलना ही काम था। अब सिर पर सारा बोझ पड़ा है, न जाने भगवान अब कसे पार करेंगे।

रमेश ने कहा—मैं जानता हूँ कि अब मेरे सिर पर गृहस्थी का भार होगा, मुझे पद-पद पर कठिनाइयों और असुविधाओं का सामना करना होगा। किन्तु, जब मैं तुम्हें आँख से देखूँगा, तुम्हारे साथ स्वतंत्रतापूर्वक उठूँगा-

बैठूँगा, अनेक कठिनाइयों के समय भी जब तुम मेरे पास होओगी, तो उस समय केवल तुम्हें एक बार देखने में ही मेरे सब दुख दूर हो जावेंगे। संसार की कठिनाइयाँ देखकर हमको हताश न होना चाहिये। देखो, अब तुम कभी दुःखी न होना। हमलोग स्वाधीन जीवन बिताने के लिए संसार में उत्पन्न हुए हैं। परमात्मा करेगा, तुम्हारे साथ अब मैं स्वतंत्र जीवन व्यतीत करके सुखी होऊँगा।"

रमेश की बातें सुनकर रामा के व्यथित हृदय को बहुत कुछ शान्ति मिली।

६

रामा और रमेश के लिए अब वह पारिवारिक बन्धन नहीं है। उनको भाई से पृथक हुए कई मास बीत चुके है। अब रामा के लिए रमेश और रमेश के लिये रामा ही परिवार है। संसार के प्रायः सभी सुख और ऐश्वर्य भूलकर रमेश को केवल रामा में और रामा को केवल रमेश में ही शान्ति मिलती है। अपने जीवन मे जितनी भी चरित्र की विशुद्धता, स्वातंत्र्य-प्रियता, आत्म-निर्भरता और प्रेमासक्ति मिलती है, रामा के चरित्र में सम्भवतः उससे भी अधिक देखकर रमेश अपने सौभाग्य की सराहना करते हैं। रामा अपने स्वामी की प्रेम-परायणता, समवेदना और सच्चरित्रता पर अपने पूर्व जन्म के पुण्य कर्मों को बधाई देती है।

आजकल रमेश का अधिकाश समय रामा के साथ बैठकर तर्क-वितर्क और अनेक प्रकार की आलोचना-प्रत्यालोचना में व्यतीत होता है। रामा बाल्य-काल से ही रामायण पढ़ने की अभ्यासिनी है। किन्तु रमेश की विशेष इच्छा थी कि रामा अच्छे-अच्छे उपन्यासो का पाठ करे, तो अधिक अच्छा हो।

रमेश स्वयं उपन्यास-प्रेमी है। यद्यपि उन्होंने साहित्य के अनेकानेक

ग्रन्थों का अवलोकन किया था, पर उन्हे रामा को उपन्यास पढ़ाने की ही बड़ी अभिलाषा थी। जब तक रामा को स्वतंत्रतापूर्वक पढ़ने-लिखने का अवकाश नहीं था, तबतक रमेश की यह अभिलाषा भविष्य के गर्भ में लीन रही। किन्तु अब रमेश के लिए किसी प्रकार का कोई बन्धन न रह गया। रमेश जैसा चाहते थे, रामा के सम्मुख वह तदनुसार आदर्श रखते थे। रमेश के एक बार कहते ही रामा के लिए वह विधाता की इच्छा हो जाती। उनकी बातों पर वह सहज ही विश्वास कर लेती।

आज रामा और रमेश मे इसी प्रकार की बातें हो रही है। रामा कहती है—रामायण बड़ा अच्छा ग्रन्थ है। स्त्रियों के लिए तो वह इतना उत्तम और आवश्यक है, कि उसे पढ़कर स्त्रियां अपना लोक और परलोक दोनों सुधार सकती हैं। कहना तो यह चाहिये कि स्त्रियों के लिए दूसरा कोई ऐसा ग्रन्थ है ही नहीं।

रमेश ने कहा—रामायण एक बड़ा ग्रन्थ है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु जिस युग में वह लिखा गया था, वह दूसरा युग था और आज दूसरा युग है। जब-जब समय पलटता है, तब-तब उसके साथ सभी बातें पलट जाती हैं। जिन बातों का रामायण में समावेश है, वह बातें उस युग के लिए आवश्यक भले ही हों, पर आज उनमें अधिकांश बातों की संसार अवहेलना कर रहा है। यह बात माननी होगी कि रामायण की सभी बातें आज मानी नहीं जा सकतीं।

रामा ने उत्सुकता के साथ पूछा—वह कौन-सी बातें हैं, जो अब नहीं मानी जा सकतीं। एक-आध भी तो बताइये।

रमेश—मैं समझाऊँगा, कि वह कौन-सी बातें हैं। यह युग स्वाधीनता-युग के नाम से प्रख्यात हो रहा है। संसार में मानवसमाज एक दिन अनेक बन्धनों में बँधा हुआ था, स्त्री-जाति पुरुषों की विलास-सामग्री हो रही थी। पुरुष जितना ही स्वतंत्र और स्वाधीन हो रहे थे, स्त्रियाँ उतनी ही परतंत्र बनाई गई थीं। यह ऐसी बातें हैं, जिन्हें तुम अभी कदाचित् न समझ

सकोगी। इसलिए कि तुम उसी स्त्री-जाति का एक अंग हो, जिसे अब भी संसार का कुछ ज्ञान नहीं है। वह अब भी इतने अन्धकार में है, जिसे प्रकाश का बोध कराना कठिन दिखाई देता है। इसलिए हम चाहते हैं कि तुम रामायण पर अंध-विश्वास रखना छोड़कर आधुनिक युग के उत्तम उपन्यासो का अध्ययन प्रारम्भ करो। इससे तुम्हारा मनोविनोद भी होगा और साथ ही संसार की स्थिति का ज्ञान भी।

रमेश की बात समाप्त हो चुकने पर भी रामा ज्यों-की-त्यो बैठी रही, उनकी बातो के सुनने की प्रत्याशा मे कुछ उत्तर न दे सकी। रामा के कुछ उत्तर न देने पर रमेश ने समझा—रामा ने हमारी बात समझी नहीं है। उन्होंने फिर कहा—क्यो, तुम्हारी समझ में कुछ नहीं आया?

रामा—समझ में क्यों नहीं आया।

रमेश—फिर बोलती क्यों नहीं हो?

रामा—बोलूँ क्या, मुझे उसमें कोई ऐसी बात ही नहीं देख पड़ती।

रमेश ने उत्तेजित होकर कहा—जिसने स्वयं कभी दुख नहीं उठाया, वह दूसरे को दुखी देखकर कभी उसके दुख का अनुभव नहीं कर सकता। तुम्हें क्या पता, हमारे देश में कितनी स्त्रियाँ है जो सुखी कही जा सकती हैं? दिन-पर-दिन देश में विधवाओं की संख्या बढ़ती जाती है। लड़कियो के विवाह मे कितनी असावधानी से काम लिया जाता है? दस-दस बारह-बारह वर्ष की दुधमुही बालिकाओं का विवाह ऐसी अवस्था के पुरुषो के साथ किया जाता है जो अपने जीवन के अंतिम दिन पूरे करते होते हैं। इसका फल और प्रतिफल विधवाओ की बढ़ी हुई संख्या है। दूसरी असावधानी यह होती है कि लड़की का विवाह ऐसे वर के साथ किया जाता है, जिसके गुण, रूप, प्रकृति, अवस्था और प्रतिभा के वरण योग्य वह वर कदापि नहीं होता। जिसका यह परिणाम होता है कि उनमें कभी भी परस्पर प्रेम और सहानुभूति नहीं होती। बहुत बड़े अंश में तो यह देखने में आता है कि व्यभिचार की अधिकता से पुरुषों को केवल अपनी स्त्री में संतोष नहीं होता।

पर-स्त्री-गमन और वेश्या-गमन के परिणाम-स्वरूप उनकी स्त्रियो को आजीवन रोना पड़ता है। इस प्रकार की न जाने कितनी बातें है, जिनके कारण इस देश की स्त्रियो का जीवन पतित और दुख-पूर्ण हो गया है। स्त्री-जाति का इतना पतन हुआ है कि उनमे अपनी इस दुरवस्था के समझने का भी ज्ञान नहीं रहा। वे नहीं जानतीं कि हमारी यह पतितावस्था क्यो हो गई है, और यह कैसे दूर हो सकती है। स्त्रियो मे यदि संसार का ज्ञान हो, यदि वे जानने लगें कि संसार में कहीं भी स्त्रियाँ इतनी दुर्गति में नहीं हैं, जितनी हमारे देश में; तो फिर उनमें भी अपने दुखो के दूर करने की भावना उत्पन्न हो जाय।

रामा कोमल स्वर में बोली—स्त्रियाँ इनमे क्या कर सकती हैं? पुरुष क्या स्त्रियो को विधवा बना देते हैं? उनके भाग्य में जो लिखा होता है, वही होता है। विवाह के लिए लड़कियाँ क्या कर सकती है? जैसा उनके माँ-बाप ने चाहा, कर दिया। वे बेचारी क्या करें?

रमेश—इसीलिए तो स्त्रियो की यह दशा है। वे हर एक बात में यही समझ लेती हैं कि हमारे भाग्य में लिखा है। माँ-बाप के हाथो से विवाह होने की ऐसी परिपाटी चली आती है कि वे चाहे जितना अनुचित करने के लिए प्रस्तुत हो, लड़कियाँ बेचारी कुछ कह नहीं सकतीं। इसका कारण यह है कि उनमें ज्ञान नही है। यदि उनमे ज्ञान होता, यदि वे संसार की अवस्था जानती होतीं, और यह भी जानती होतीं कि हमारे लिए यदि कोई अनुचित व्यवस्था करता है, तो उसे रोकने का हमें अधिकार है तथा उनमें लज्जा का इतना अटूट बन्धन न होता, तो आज स्त्रियों की अवस्था पतित न हुई होती।

रामा—अच्छा तो उपन्यासो के पढ़ने से क्या होगा?

रमेश—उपन्यासों में मानव-जीवन का चरित्र-चित्रण होता है। उनके पढ़ने से तुम जानोगी कि आज हमारे देश में स्त्रियों की कैसी दुर्दशा हो रही है। पुरुष-जाति ने स्त्रियो को कितना पतित बना दिया है! उनके व्यक्तिगत

अधिकार—उनकी आत्म-मर्य्यादा किस प्रकार पद-दलित की गई है। इसके अतिरिक्त उन बातों का भी-जो तुम रामायण में पढ़ती हो, जीता-जागता चित्र प्रत्यक्ष देखोगी। एक सती स्त्री किस प्रकार प्राण देकर सतीत्व रक्षा करती है, आचार-भ्रष्ट पुरुषों के हाथों में पड़ कर सती-साध्वी स्त्रियाँ किस प्रकार अपने धर्म की रक्षा करती है—इस प्रकार की एक दो नहीं, अनेक बातें, जो संसार के मानव-समाज में स्वभावतः होती हैं—उनका प्रत्यक्ष दर्शन उपन्यासों में किया जा सकता है।

रामा—उपन्यासों के पढ़ने में भी क्या उतनाही आनन्द मिलेगा जितना रामायण के? दोनो को आप एक-सा आनन्ददायक मानते हैं?

रमेश—रामायण के पढ़ने में एक अद्भुत आनन्द मिलता है, मैं मानता हूँ। किन्तु उपन्यासो मे ही यह एक महत्त्व होता है कि पाठक खाना-पीना, खेल-कूद और काम-काज भूल जाते हैं।

रामा—और रामायण में तल्लीन होने वाला तो अपने आपको ही भूल जाता है। खैर, मुझे कोई उपन्यास मँगा दो, मै पढ़ूँगी।

रमेश—मेरे पास कितने ही बढ़िया-से-बढ़िया उपन्यास रखे है। पहले तुम उन्हें ही पढ़ डालो, पीछे और मँगा दूँगा।

यह कहकर रमेश ने अपनी पुस्तकों की आलमारी से एक उपन्यास निकाला और रामा को देकर कहा—देखो, यह कौन-सा उपन्यास है?

रामा ने उसे हाथ में लेकर उसके पृष्ठों को इधर-उधर उलटते हुए कहा—प्रतिभा।

रमेश—कई एक चरित्रों के साथ इस उपन्यास में प्रतिभा नामक एक नव-यौवना बालिका का चरित्र चित्रण बड़ा ही सुन्दर है। पढ़कर मुग्ध हो जाओगी।

रामा—अच्छा तो इसका कथानक किस प्रकार चला है?

रमेश—यह बता देने से इस उपन्यास का सारा महत्त्व मिट्टी में मिल

जायगा। तुम्हारी उत्सुकता भी शान्त हो जायगी। पहले इसे पढ़ो। जब समाप्त हो जाय, तब फिर मुझ से बातें करना।

रामा वहाँ से उठकर एक अलग-चारपाई पर चली गई और रमेश की ओर देखकर मुस्कुराते हुए उस उपन्यास को पढ़ने लगी।

७

रमेश के रहने का जो घर है, उसी से मिला हुआ पंडित बद्रीनाथ का घर है। पंडितजी चलते-पुर्जे आदमी है। पंडितजी का लोगों में जिस प्रकार आतंक है, उनकी स्त्री गंगा का स्त्रियों में उनकी अपेक्षा कुछ कम नहीं। पंडित जी का विरोध चाहे कोई साहस करके कर भी सके, किन्तु गंगा देवी की बातो का उसके सम्मुख विरोध करने के लिए किसी स्त्री में साहस नहीं। गंगा की अवस्था लगभग चालीस वर्ष के होगी। पंडितजी से गंगा देवी मे न तो कूट-नीति कम है और न दूसरो पर शासन करने की शक्ति।

किसी स्त्री में क्या दोष है, किसका कैसा स्वभाव है, किसकी बहू-बेटी किस प्रकार की है, किसका आचार कैसा हो रहा है—आदि बातों की समालोचना करने में गंगा देवी सिद्धहस्त है। संसार जिसके गुण-रूप की प्रशंसा करता, गंगा का हृदय उसकी प्रतिभा को कभी स्वीकार न कर सकता। उठते-बैठते, खाते-पीते, प्रत्येक समय गंगा के घर में इस प्रकार की आलोचनायें हुआ करती हैं।

गंगा के विस्तृत प्रांगण मे आज भी अनेक स्त्रियाँ बैठी हुई है। टोला पड़ोस की स्त्रियाँ और बहू-बेटियाँ प्रायः आ आकर गंगा के घर में बैठा करती हैं। समीप होने के कारण और विशेष कर अकेली होने से रामा भी प्रायः गंगा के घर आ जाती है। आज इस समय अन्य स्त्रियो के साथ गंगा के प्रांगण में रामा भी बैठी हुई है। स्त्रियाँ परस्पर एक दूसरे से बातें कर रही हैं। गंगा ने अपने घर का काम-काज करते हुए कहा—आजकल तो कलि-

काल की बहुएँ अपने आदमी को छोड़कर और किसी को कुछ समझती ही नहीं है। कल अभी बिदा होकर आई है आज देखो तो सबके सामने बातें कर रही हैं। न सास की परवाह है, न ससुर-जेठ की लाज है।

बैठी हुई स्त्रियों में से एकने कहा—जैसी वे देवी हैं, वैसे ही उन्हें देवता भी मिल जाते है। न उन स्त्रियों को लाज है, न उन पुरुषों को। अपनी स्त्री का प्यार सभी करते हैं; किन्तु सिर पर रखे कोई नहीं घूमता।

सभी स्त्रियाँ हँस पड़ीं। कुछ समय तक किसी के मुख से कोई बात न निकली। गंगा ने फिर कहा—दस-दस ग्यारह-ग्यारह वर्ष सास-ससुर के साथ रहते बीत गये थे, किन्तु किसी ने कभी बोल तक न सुन पाया था। आजकल तो अपने आदमी से बिना बोले भोजन ही नहीं पचता।

गंगा की इस बात को सुनकर स्त्रियाँ एक दूसरे से बातें करके गंगा की बात का अनुमोदन करने लगीं। वहाँ पर रामा बैठी हुई चुपचाप विष के घूँट पी रही थी। गंगा की बात सुनते ही रामा के शरीर मे मानों बिजली-सी दौड़ जाती। उसके मुख से कुछ न निकलता। उसको जान पड़ता मानों वह सभी बातें गंगा मेरे ऊपर कह रही है।

रामा का मुख नीचा होकर रह गया। कभी उसके हृदय मे क्रोध बढ़ता, कभी रोष के आवेश मे वह चाहती कि गगा को फटकार कर उसका विरोध करूँ; किन्तु साथ ही संकोच की मात्रा से उसका हृदय पानी-पानी हो जाता। वह सोचने लगी, मुझे क्या करना चाहिये।

गंगा और अन्य स्त्रियों की बातो मे अपने को न बोलते देख कर रामा को बार-बार प्रत्यक्ष रूप में जान पड़ने लगा, मानो मै अपराधी हूँ, और पकड़ कर इन सबके सम्मुख लाई गई हूँ।

यकायक गंगा के मुख से फिर सुनाई पड़ा—विवाह होकर आये हुए इतने दिन हो गये, पर सास-ससुर, जेठ-जेठानी को छोड़ कर अपने आदमी के साथ रहने का साहस न हुआ।

अनेक स्त्रियों ने गंगा की बात सुनकर रामा की ओर बार-बार देखा।

रामा उसी तरह शान्त बैठी थी। उसकी इच्छा हुई कि यहाँ से किसी प्रकार उठकर चली जाऊँ, किन्तु कैसे चली जाऊँ? कोई अवसर नहीं है। ऐसी बातों के होते हुए बिना कारण उठकर यदि मै चल दूँगी, तो ये क्या कहेंगी?

इसी सोच विचार मे रामा का ध्यान बँटा हुआ है। वह बार-बार सोच रही है—अब मैं किस बहाने से उठकर जाऊँ? यहाँ बैठे हुए जी नहीं लगता। ये बातें सुनकर और भी रोष बढ़ता है। गंगा की बात-बात में मेरा अपमान और उपहास भरा है।

तबतक गंगा ने फिर कहा—अभी क्या हुआ है, अभी तो कलजुग का पहला चरण है। अभी न जाने क्या-क्या होगा!

स्त्रियो मे से किसी ने कुछ और किसी ने कुछ कहकर गंगा की बात का समर्थन किया। रामा से अब बिना बोले रहा न गया। उसने धीरे से कहा—बहुएँ सब कुछ करती है, पर क्या सास-जेठानियाँ कुछ करती ही नहीं? सास और जेठानियो का व्यवहार क्या कोई जानता नहीं?

रामा की बात सुनकर सभी स्त्रियाँ उसकी ओर बड़े ध्यान से निहारने लगीं। गंगा ने जलकर बड़े रोष से कहा—यह बात क्या किसी के ऊपर कही गयी है? आजकल तो समय ऐसा आ गया है कि सभी में यह बातें दिखाई देती है। किसी एक पर आक्षेप थोड़े ही है? पर किया क्या जाय—चोर की दाढ़ी में तिनका। पापी का पाप छप्पर पर चढ़कर आप ही पुकारा करता है, किसी को कहना नहीं पड़ता।

गंगा की बात सुनकर रामा का रोष बढ़ने लगा। सोचा अब बातें बढ़ती हैं, और बिना बात की बात में लड़ाई होते देर न लगेगी।

इतने में पंडित बद्रीनाथ खखारते हुए पहुँचे। सभी स्त्रियाँ इधर-उधर होने लगीं। पंडितजी को घर में ठहरते हुए जानकर कई स्त्रियाँ उठकर अपने अपने घर जाने लगीं। रामा भी उनके साथ ही उठकर घर चली गई।

रमेश एक मौसिक पत्र की गल्प पढ़ रहे थे। रामा को आते देख उन्होंने मुस्करा कर पूछा—घूर की याद आ गई?

रामा के हृदय का रोष अभी उसी प्रकार धधक रहा था। रमेश का प्रश्न सुनकर अपने हृदय का भाव छिपाते हुए बोली—क्यों, घर की याद क्या भूल गयी थी ?

रमेश—हम तो यही समझे थे।

रामा—यह कैसे समझ गये थे ?

रमेश ने रामा के मुख-मंडल पर गम्भीर दृष्टिपात करते हुए कहा—इसलिए कि गये हुए बड़ी देर हो गई थी।

रामा रमेश के समीप भूमि पर बैठ गई। उसका मुख फीका हो रहा था। रमेश के चुप हो जाने पर उसके सम्मुख गंगा की बातें एक-एक करके घूमने लगीं। उन बातो का स्मरण होते ही उसका हृदय अवसन्न हो उठा। रमेश ने बड़ी देर तक उसका खिन्न मुख देखकर पूछा—क्यों क्या बात है ?

रामा ने सावधान होकर आँखें मलते हुए कहा—कुछ नहीं।

रमेश—है तो कुछ अवश्य, छिपाती क्यों हो ?

रामा ने उपेक्षा के साथ कहा—छिपाती नहीं हूं, मगर, क्या बताऊँ, गंगा की बातें तो तुम जानते ही हो, आज कई स्त्रियो के साथ मैं भी वहाँ बैठी थी, परन्तु स्त्रियाँ इतनी दब्बू हो रही है कि किसी का बोल उसके प्रतिकूल नहीं निकलता।

रमेश ने पूछा—बातें क्या थीं ?

रामा ने कहा-उसकी भाषा के शब्द तो ठीक-ठीक मुझे याद नहीं रहे। उन बातो का भावार्थ यह था कि आजकल जहाँ विवाह होकर आया, बहुएँ अपने आदमी को छोड़कर किसी को जानती ही नहीं। हमने वर्षों जाना ही नहीं कि कौन कहाँ है, अब तक सास-ससुर जेठ-जेठानी के साथ रहते हो गया, किन्तु किसी ने बोल न सुन पाया। आजकल तो कल की आई बहुएँ अपने आदमी को लेकर सास-ससुर और जेठ-जेठानी से पृथक रहने लगती है। हमारा आदमी वर्षों पलटन में नौकर रहा, कभी हमने आदमी के साथ रहने का विचार तक न किया।

रामा अपने सिर का आँचल सरकाते हुए फिर कहने लगी—इस प्रकार न जाने कितनी बातें गंगा ने कह डालीं और सभी स्त्रियाँ उसकी बातो का अनुमोदन करती रहीं। यह सब बातें मेरे ऊपर कही गई है। उस समय मारे लज्जा के मैं मरी जा रही थी। बड़ी देर तक सोचती रही, किन्तु कोई उपाय नहीं था। उठकर यकायक न आ सकती थी और न उन बातो का कुछ उत्तर दे सकती थी। गंगा की एक-एक बात तीर सी लग रही थी। अंत में जब उनकी दो-एक बात सुनकर नही रहा गया, तो फिर मैने भी कहा कि बहुओ की बातें तो सभी जानते हैं, सास और जेठानियो की बातें तो कोई जानता ही नहीं। वे ता मानो बड़ी सीधी होती है। मेरे यह कहते....

रमेश ने काट कर पूछा—यह बातें उठी कैसे थीं।

रामा—अपने आप गंगा कहने लगी थी।

रामा की बातें सुनकर रमेश बड़ी देर तक कुछ न कह सके। मन-ही-मन सोचने लगे—गंगा कितनी धूर्त्त, कैसी मायाविनी है! उसकी इन बातो में जो भाव भरा हुआ है, उसे समझने मे प्राय. प्रत्येक हृदय असमर्थ होता है। उसके चरित्र को वही जान सकता है जिसने अधिक समय तक उसकी कूटनीति का अनुभव किया हो, उसका हृदय कभी भी दूसरे की कीर्त्ति को देख नहीं सकता, उसकी मलिन आत्मा सदा दूसरे की अपकीर्त्ति को प्रकट करने मे सुख मानती रही है। उसने आज जो बातें अनेक स्त्रियो मे कही है, मेरा विश्वास है कि वे एक मात्र रामा को लक्ष्य करके नहीं कही गईं, यद्यपि उनको सुनकर रामाको क्षोभ हुआ है। गंगा का हृदय बड़ा कलुषित है।

रमेश के हृदय में कुछ विषाद और रोष का आविर्भाव हुआ। रोष के आवेश में रामा को सम्बोधन करके बोले—रामा मै यह जानना चाहता हूँ कि गंगा की बातों को सुनकर तुमने क्या समझा?

रामा ने कुछ सोचकर कहा—मुझे वे बातें अच्छी नही लगीं। इसीलिये मैंने दो एक बातें उत्तर में कह दीं। तब गंगा ने कहा कि तुम्हारे ऊपर यह बातें नहीं कहीं गईं, यह तो सभी पर लागू हैं। इसमें चिढ़ने की कौन-सी बात है?

रमेश ने फिर पूछा—ये बातें तुम्हें अच्छी क्यो नहीं लगीं ?

रामा ने कहा—अपनी अपनी प्रकृति है। मेरा स्वभाव उससे भिन्न है, जो वह चाहती है। स्त्री और पुरुष का जितना घनिष्ट सम्बन्ध है उसे गंगा-जैसी स्त्रियाँ कभी समझ नहीं सकतीं—इतना ही कहना अधिक होगा। मेरे हृदय में पहले ही से अधिक स्थान था, इधर यहाँ आकर जब आप मेरे पढ़ने लिखने का ध्यान रखने लगे, अनेक प्रकार की बाँतो पर, सांसारिक प्रवृत्तियों को लेकर, अनेक तर्कनाओं के साथ समझाने लगे, तब से मेरी स्वाभाविक समवेदना और भी अधिक हो गई। आगे चलकर उपन्यासो का पठन-पाठन मेरे परिवर्तन का और भी विशेश कारण हुआ। अब तो यह अवस्था हो गई है कि जब तक मानव चरित्र पर और संसार की अवस्था पर आपके मुख से कुछ प्राकृतिक रहस्य नही जान लेती, तब तक कुछ भूखी-सी रहती हूँ। मेरा हृदय कुछ तो इस प्रकार का था ही, कुछ अब और हो गया है।

रमेश ने रामा की बातें बड़े ध्यान से सुनीं। जब वह अपनी बात समाप्त कर चुकी, तो रमेश ने कहा—जिन स्त्रियो का सम्बन्ध अपने पति से और जिन पुरुषो का सम्बन्ध अपनी स्त्री से बहुत थोड़ा रहता है, उनमे न तो स्त्रियो को अपने पति की और न उनके स्वामियो को अपनी स्त्री की उतनी परवाह रहती है जितनी कि रहनी चाहिये। यही कारण है कि उन पुरुषो से पर-स्त्री और वेश्या-गमन स्वाभाविक रूप से मिलता है। गंगा का कहना ठीक है। हमारे यहाँ पुरुष स्त्रियो से बहुत कम सम्बन्ध रखते है। इसके फल-स्वरूप अधिकांश स्त्रियों को केवल इसीलिए जीवन-पर्यन्त रोना पड़ता है, कि उनके स्वामी पर-स्त्री-गामी अथवा चरित्र-भ्रष्ट होते हैं। गंगा का यह कहना भी ठीक है कि यह बातें तुम्हारे ऊपर नहीं हैं, आजकल तो जिधर देखो उधर ही यह दृश्य दिखाई देता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आजकल प्रायः ऐसी ही प्रवृत्ति पाई जाती है। अपने प्रेम की मर्यादा, स्त्री अपने स्वामी में और स्वामी अपनी स्त्री में, समर्पित करके परस्पर एक-दूसरे मे संसार का सुखानुभव करना चाहते है। मेरी समझ में यह बड़ा सुन्दर है।

यही मर्य्यादा सनातन धर्म्म की मर्य्यादा है। यदि कोई सभ्यता इसका विरोध करती है, तो मैं कहूँगा कि केवल अनर्थ के लिए है, और कुछ नहीं।

रमेश यह कहते-कहते चुप हो गये। रामा शान्त बैठी हुई उनकी ओर निहार रही थी। कुछ समय तक उसके न बोलने पर उन्होने फिर कहा— गंगा के सम्बन्ध मे तुम कुछ जानती हो? पंडित बद्रीनाथ का चरित्र बहुत पतित रहा है। आजतक उनकी अनेक निन्दायें रात-दिन सुनने में आ रही है, दाम्पत्य सुख कुछ दूसरी वस्तु है, और केवल भोग-विलास के लिए स्त्री-सम्बन्ध होना कुछ और बात है। जिनमे केवल भोग के लिए स्त्री-सम्बन्ध होता है, उनकी गणना मानव-समाज में नहीं, वे पाशविक प्रकृति वाले है। पंडित जी इसी श्रेणी के पुरुषो में से है। यही कारण है कि गंगा पंडित जी के प्रेम को आकर्षित नहीं कर सकी। पंडित जी के दुश्चरित्रता पर गंगा को अनेक वार रोना पड़ा है, यह बात सब पर प्रकट है। किन्तु उसमें ऐसी कूटनीति है, जिससे वह दूसरे का अपमान करने के लिए और अपनी मान-मर्य्यादा को बढ़ाने के लिए न जाने कितनी बातें बनाया करती है। किसी की स्त्री को उसकी बातें अच्छी नहीं लगतीं, किन्तु उसका विरोध करने के लिए उनके सम्मुख किसी में साहस नहीं होता।

रमेश की बात सुन कर रामा ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा—जितनी वृद्धा स्त्रियाँ हैं, सभी इन बातों का विरोध करती है, और जब कभी बात आ पड़ती है तो जली-कटी भी सुनाती है।

रमेश ने कहा—तुम्हारे इन प्रश्नो के बड़े लम्बे उत्तर हो सकते हैं। मैं संक्षेप में तुम्हें समझा देना चाहता हूँ। हमारे देश का जिस समय पतन हो चुका था, देश में अनेक छोटे-छोटे राजा अपने-अपने राज्यों का प्रबन्ध स्वयं करते थे, उस समय मुसलमान-बादशाहों ने भारतवर्ष पर चढ़ाइयाँ कीं, और देश के शासन को लड़-भिड़ कर छिन्न-भिन्न कर डाला, सामाजिक उन्नति को नष्ट-भ्रष्ट कर के साहित्य का अन्त कर दिया। ऐसी अवस्था में देश को

अपनी रीति-नीति का पता न लगा, धार्मिक और राजनीतिक नीति-रीति लुप्त हो गई। उस समय जो नवीन साहित्य प्रस्तुत हुआ, उसमें केवल वैराग्य और संसार-त्याग के अतिरिक्त और कुछ न रखा गया। मानव प्रवृत्ति को केवल वैराग्य और संन्यास की ओर ढाल दिया। उस-नवीन साहित्य मे स्त्री-जाति को अत्यंत पतित और तुच्छ माना गया। जिस प्रकार की पुस्तकें लिखी गईं, सभी में स्त्री को नरक-कुण्ड, दुष्टा, दुराचारिणी और त्याज्य माना गया-समाज में स्त्री का हृदय पाप-पूर्ण और पुरुष जाति को अधर्म की ओर खींचने वाला ठहराया गया। यहाँ तक कि तुलसीदास की रामायण में भी इसकी गन्ध पहुँची। इस साहित्य का यह प्रभाव पड़ा कि पुरुष-जाति स्त्री-जाति को मोह, पाप, अधर्म, असत्य और पाखंड की मूर्त्ति समझ बैठी—पुरुष स्त्रियों को केवल भोग और विषय की सामग्री के अतिरिक्त और किसी योग्य न समझने लगे। समाज की इस अवस्था में स्त्री-जाति का जीवन इतने अधिक काल तक अतिवाहित हुआ कि वह स्वयं अपने को इसी योग्य समझने लगी। आजकल जो वृद्धा स्त्रियाँ हैं, वे उसी युग की चिन्हावशेष हैं। उनके हृदय इस नवीन युग की स्वाधीनता से परिचित नहीं है। इसी लिए वे इन बातो का विरोध करती है। यद्यपि आज भी समस्त स्त्री-जातिके जीवन में पूर्ण परिवर्त्तन नहीं हुआ, फिर भी इतना मानना होगा कि स्त्री-समाज के जीवन में परिवर्त्तन प्रारम्भ हो गया है।

रमेश की इस तर्कपूर्ण विस्तृत आलोचना को सुन कर रामा के हृदय में बड़ी प्रसन्नता हुई। उसके मुख से अकस्मात् निकल पड़ा—अच्छा! आज मैं समझी कि रामायण पर आपकी श्रद्धा और भक्ति क्यों नहीं है।

रमेश ने कहा—हं, इसमें सन्देह नहीं कि रामायण में इसी प्रकार की अनेक भ्रमात्मक बातें है। विशेष कर स्त्रियों की बड़ी निन्दा है।

८

आज कई दिनों से रामा की बिदा के लिए उसके भाई आये हुए हैं। इसी लिए रामा का हृदय प्रसन्न है-अन्त करण प्रफुल्लित हो रहा है। उसके मन की गति चंचल हो रही है। घर का काम-काज वह बड़ी शीघ्रता के साथ समाप्त करने में जुटी हुई है।

दो पहर के लगभग दो बजे होंगे। घर के छोटे-मोटे सभी कार्य्यों से निपट कर रामा ने अपनी सन्दूक खोली। उसमें से एक उज्वल साड़ी निकाल कर पहना। साड़ी के साथ-साथ अन्य नवीन और स्वच्छ वस्त्र भी पहने। इसके पश्चात् दर्पण निकाल कर बार-बार अपना सौन्दर्य देखने लगी। दर्पण देखते हुए हृदय की चंचल गति के साथ वह धीरे-धीरे कुछ गुनगुना रही थी। इतने में उसने रमेश को घर में आते देखा। बस, दर्पण को छिपा लिया। अंचल सँभालती हुई बोली-आज बड़ी देर से कहाँ गये हुए थे?

रमेश—क्यों आज भी हमारी याद आयेगी?

रामा ने कुछ उत्तर न दिया। रमेश चारपाई पर जाकर लेट गये। कुछ समय तक रामा बैठी रही। किन्तु रमेश के कुछ न कहने और न बुलाने पर वह उठ कर चारपाई के पास जाकर खड़ी हो गई। मंद-मंद मुस्कराती हुई बोली—भैया ने तुमसे कुछ कहा है?

रामा की बिदा की बात जब से उठी है, रमेश के हृदय में कुछ उथल-पुथल मची हुई है। रामा के इस प्रश्न के पहले रमेश कुछ उसी के सम्बन्ध में सोच रहे थे। उनका चेहरा मुरझाया हुआ था। रामा का प्रश्न सुन कर उनका हृदय और भी भारी हो गया। कुछ सोच कर बोले—हाँ, कहा है।

रामा के वे हार्दिक भाव, जो इस समय कुछ आन्दोलन-सा कर रहे थे, ठहर न सके; यकायक उसके मुख से इस प्रकार निकल पड़े—कल तो दिन अच्छा नहीं, परसों बिदा के लिए भैया कहते हैं।

रामाकी बात सुन कर उसके अन्तःकरण का भाव रमेश से छिपा न रह सका। वह सोचने लगे—यह जाने के लिए उत्सुक हो रही है, किन्तु क्या हमें छोड़ कर इसको और भी किसी अवस्था में सुख मिल सकता है? मुझे छोड़ कर न जाने किस सुख की चाह में इसका हृदय उन्मत्त हो रहा है। इसके जाने की बात सोच-सोच कर मैं जितना ही सूख रहा हूँ, यह उतना ही प्रसन्न हो रही है। आज पता मिला है कि इसके हृदय में मेरे प्रति प्रेम कहाँ तक है? मुझे इसको छोड़ कर बैकुंठ जाने में भी सुख नहीं, किन्तु यह मुझे छोड़ कर भाई के साथ रामनगर जाने की इच्छा से मुझे भूल-सी रही है।

बड़ी देर तक सोचते रहने के कारण रमेश के कुछ उत्तर न दे सकने पर रामा ने फिर कहा—क्यों, बताओ, भैया परसों की बिदा के लिए कहते हैं। उनको क्या उत्तर दिया है?

रमेश ने कहा—भैया को उत्तर क्या देना है? तुम बताओ, तुम्हारी क्या इच्छा है?

रामा ने सिर झुका कर कहा—मैं क्या बताऊँ, जैसा कहोगे, करूँगी। भेजोगे, जाऊँगी, न भेजोगे, न जाऊँगी। दोनों बातें तुम्हीं पर निर्भर है।

जिस प्रकार शरीर के व्रण मे तनिक भी स्पर्श हो जाने से यकायक असह्य वेदना होने लगती है, ठीक उसी भाँति रामा का इतना सरल उत्तर पाकर भी रमेश का दुःखित हृदय और कातर हो उठा। वह सोच रहे थे कि मैं एक बार जाने के लिए भी कहूँगा, तो रामा मुझे छोड़ कर जाने की इच्छा न करेगी। किन्तु आज रामा के मुख से जो उत्तर मिला, उससे यह अप्रकट न रहा कि वह जाने के लिए प्रस्तुत है।

रामा अब तक अपना सिर नीचा किये हुए बैठी कुछ सोच रही थी। रमेश ने उसके मुख की ओर देखा। सुन्दर मुख और मनोमोहक छवि देख कर उनका अन्तःकरण उद्विग्न हो उठा। वह दूसरी ओर को करवट बदल कर लेट रहे।

रमेश के कुछ उत्तर न देने पर, बड़ी देर तक कुछ सोचने के बाद, उनके करवट बदलने पर रामा ने उनकी ओर देखा। बड़ी देर तक निहारने पर भी रमेश का भाव उसकी समझ में न आया। उसने उनका हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींचा, किन्तु उन्होंने अपना हाथ भारी कर लिया। तब वह उनकी ओर बढ़ी और उनके दोनों हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींचने लगी। रामाने देखा, रमेश का मुख भारी है। उनकी मुखाकृति से जान पड़ता है कि वह उदासीन है। यह देखते ही उसका हृदय झिझक उठा। वह समझ गई, मेरी जाने की इच्छा जान कर इनकी यह अवस्था हो गई है। अपने कहे हुए शब्दों को लौटाती हुई, अपने हार्दिक भावो को छिपा कर बड़े प्यार के साथ हँस कर कहने लगी—मैं जाऊँगी नहीं, मै तो केवल यह देखती थी, कि आप क्या कहते है।

बारबार विनम्र भावो से बलय्या लेती हुई रामा संकोच तथा लज्जा का भाव भूल गई। परिधान-वस्त्रों से निरावृत हो जाने के कारण रमेश ने उसके वक्षस्थल और मुख-मंडल की अपूर्व छटा देखी। इस अवस्था में देखकर उनकी प्रेमासक्ति और भी प्रज्वलित हो उठी। उनको निर्निमेष दृष्टि से अपनी ओर निहारते देख कर रामा ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें नचाते हुए अत्यंत विनीत भाव से कहा—मैं हाथ जोड़ती हूँ, मुझे क्षमा करो। मै नहीं जानती थी कि मेरे इस उत्तर से तुमको इतना कष्ट होगा।

रमेश ने रामा को समझाते हुए कहा—मैं जानता हूँ कि मायके जाने के लिए स्त्रियों में पर्याप्त उत्सुकता होती है। इसका कारण यह है कि वे जन्म से लेकर युवावस्था तक माँ-बाप, भाई-बहिनो और सखियो-सहेलियो के साथ रहती हैं। विवाह हो जाने पर ससुराल में उन सबकी याद आना और उनसे मिलने के लिए उत्कंठा उत्पन्न होना परम स्वाभाविक है। ऐसे समय पर पशुओं की भाँति बन्धन में रखना और अपने बहुत दिनो के बिछुड़े हुए कुटुम्बियों से मिलने के लिए न जाने देना अत्यंत अनुचित है। किन्तु न जाने क्या बात है कि तुम्हारे जाने की बात जब मै सोचता हूँ तब......

रमेश आगे कुछ न कह सके। रामा की ओर ध्यान से देखने लगे। उनके चुप हो जाने पर भी रामा बड़ी देर तक उनकी ओर निहारती रही। रमेश अपने नेत्र बंद कर के शान्त हो रहे।

कुछ देर बाद रामा ने उनको सोते हुए मनुष्य की भाँति जगा कर कहा—भैय्या के आने पर माँ और बहिन को देखने की इच्छा हुई थी, किन्तु वह इच्छा वहाँ पहुँच कर बहुत थोड़े समय मे बुझ जाती और फिर वहाँ मुझे अच्छा न लगता। भैय्या से कोई बहाना कर दो, अब मैं न जाऊँगी।

रमेश ने कहा—नहीं, यह तो नहीं हो सकता कि मै भेजना स्वीकार न करूँ। तुम्हे जाना पड़ेगा। यद्यपि मुझे कष्ट होगा, तथापि मै इतना जानता हूँ कि मोह के आवेश मे कर्त्तव्य को भुलाना बड़ी भारी भूल होगी।

रामा—पहले मेरी इच्छा थी, पर अब किसी प्रकार जाने की इच्छा नहीं है। उनसे स्पष्ट कह दो कि इस समय न जायगी।

रमेश—नहीं जब खुद तुम्हारे भाई बिदा के लिए आये है, तब तुम्हारे लिए जाना और मेरे लिए भेजना कर्त्तव्य हो गया। मै जानता हूँ कि मेरी उद्विग्न अथवा खिन्न अवस्था देख कर केवल भावावेश के कारण ही तुम्हारी इच्छा अब जाने की नहीं होती। किन्तु देखो, मोह मे पड़ कर कर्त्तव्य को कभी न भुलाना चाहिये।

रामा ने कुछ भी उत्तर न दिया। रमेश ने फिर कहा—तुम्हारे भैय्या परसो तुम्हारी बिदा चाहते है। मैने स्वीकार कर लिया है। परसों तुम मुझसे बिदा हो कर चली जाओगी। वहाँ जाने पर माता, भावज और भाइयों के प्रेम सहवास मे कहीं मुझे भुला न देना।

मुस्कराते हुए रमेश के मुख से ये बातें सुन कर रामा ने कुछ उत्तर न दिया। एक बार गम्भीर दृष्टि से रमेश की ओर देखती हुई वह कहने

लगी—जब मैं जाऊँगी, तो रामनगर से यथा-समय पत्र लिख कर तुम्हें यह विश्वास करा दूँगी कि मैं भाई-भावज और सखी-सहेलियो के सहवास में भी तुम्हें नहीं भूल सकी ।

९

रामनगर, जो एक विस्तृत प्राचीन ग्राम है, रामा का मायका है। मायके आये हुए उसको लगभग एक मास बीत गया । यहाँ उसकी माँ, दो भाई और एक भावज है ।

माँ राधारानी के एक भाई था । उसकी मृत्यु हुए आज अनेक वर्ष बीत चुके हैं । उसे एक बालिका थी । वह बालिका अब भी है । उसका नाम है—तारा । पूरे चार वर्ष की भी न होने पाई थी कि उसके माँ-बाप उसे संसार मे असहाय छोड़ कर परलोक सिधार गये थे । माँ-बाप के न रहने पर उसको राधारानी ने अपने यहाँ बुला लिया था । उसी दिन से तारा का पालन-पोषण राधारानी ने बड़ी सावधानी से किया ।

रामा के विवाह में तारा की अवस्था केवल तेरह वर्ष की थी । किन्तु अब तारा सोलहवें वर्ष में पदार्पण कर चुकी है । रामा और तारा में बाल्यकाल से ही बड़ी प्रीति है । रामा जब से रामनगर आई है तारा बड़ी प्रसन्न रहती है । बड़े प्रेम से रामा के पास उठती-बैठती और ध्यान से उसकी बातें सुनती है ।

रामा की अवस्था इस समय उन्नीस वर्ष की है । उसकी अवस्था तारा से जितनी अधिक है, उतनी ही उसकी अवस्था से अधिक आयु उसकी भावज 'चन्द्रा' की है । यों, तीनो की अवस्थाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं है ।

चन्द्रा प्रायः रामा से उसके ससुराल की बातें पूछा करती है। पहले तो वह संकोच और लज्जा से कुछ नहीं कहती, किन्तु चन्द्रा के बहुत तंग करने पर उसको कुछ न कुछ कहना ही पड़ता है । जब तक वह ससुराल न गई

थी, तब तक अपना अधिकांश समय खेल-कूद और चन्द्रा तथा तारा के साथ बातें करने में बिताया करती थी।

चन्द्रा और तारा को अब भी वही अभ्यास बना हुआ है, किन्तु रामा की अवस्था में बड़ा परिवर्तन हो गया है। वह बाल्यकाल से ही गम्भीर स्वभाव की थी। विवाह हो जाने पर अब और भी गम्भीर हो गई है। अनेक प्रकार के उपन्यास पढ़ते-पढ़ते उसकी प्रकृति का रूपान्तर-सा हो गया है। उसका ध्यान उपन्यासो के पढ़ने में जितना लगता है, उतना और किसी बात में नहीं।

इस समय रामा बड़ी देर से 'रजनी' नामक उपन्यास पढ़ रही है। जब वह उसे पढ़ने बैठी थी, चन्द्रा ने कहा था—जब तक मै काम करती हूँ, तब तक तुम पढ़ लो, जब मै काम कर चुकूँगी, तब तुम्हारा पढ़ना बंद हो जायगा, इसलिए जितना पढ़ना हो शीघ्र पढ़ डालो।

इस समय चन्द्रा अपना काम कर रही थी। रामा उपन्यास पढ़ते-पढ़ते कभी मुस्कराने लगती और कभी गम्भीर हो जाती। चन्द्रा ने एक बार रामा को मुस्कुराते हुए देख कर अपना काम शीघ्रता के साथ समाप्त करके उसके निकट बैठ कर पूछा—क्या सोच-सोच कर मन-ही-मन बार-बार हँस रही हो।

रामा ने उत्तर दिया—कुछ नहीं, इस······

रामा की बात अभी पूरी नहीं होने पाई थी कि चन्द्रा ने बात काट कर कहा—हाँ-हाँ, मै जानती हूँ, मुझे न बहलाओ, बताओ, क्या बात है?

रामा—मै सच कहती हूँ, यह पुस्तक जो मै पढ़ रही हूँ, इसी में कुछ ऐसी बातें आ जाती है, जिन्हें पढ़ कर हँसी आ जाती है।

चन्द्रा ने कहा—मै न मानूँगी, और जब तक बताओगी नहीं, तब तक पढ़ने न दूँगी।

रामा—अच्छा, मैं पढ़ती हूँ। देखो, तुम्हें यदि हँसी न आ जावे, तो फिर न मानना।

चन्द्रा—नहीं, मै न सुनूँगी। जो पूछती हूँ, वह बताओ।

रामा—अच्छा बताओ, क्या पूछती हो?

चन्द्रा—रमेश बाबू की बातें याद करके तुम हँसी हो। बताओ, रमेश बाबू किस प्रकार तुम्हारा प्रेम करते है, किस प्रकार तुमसे मिलते-जुलते हैं। इतने दिनों में आई हो, फिर पुस्तक पढ़ने बैठी हो। जब वहाँ जाना, तब पढ़ लेना।

रामा ने कुछ व्यस्त हो कर कहा—मैं कुछ नहीं जानती, मुझे पढ़ने दो।

चन्द्रा ने कहा—मैंने तो पहले ही कह दिया था कि जब तक बताओगी नहीं, पढ़ने न दूँगी?

रामा और उसकी भावज चन्द्रा जहाँ यह बातें कर रही थीं, वहाँ पास ही तारा भी बैठी हुई थी। चन्द्रा और रामा की बातें सुन कर तारा कभी रामा की ओर कभी चन्द्रा की ओर निहारने लगती। चन्द्रा और रामा को जब हँसते देखती, तो हँसने लगती; और जब उनमे परस्पर व्यंग्य बाते होतीं, तो वह स्थिर हो जाती।

रामा और चन्द्रा के बीच में इस समय तारा का कोई मूल्य नहीं। उसकी अवस्था इस समय ठीक उस विद्यार्थी के समान है, जो दो शिक्षित युवको की तर्कनाओं को उनके पास बैठ कर श्रद्धा के साथ सुनता हो। चन्द्रा जब रामा से कुछ अनुरोध करती है, तो तारा उस अनुरोध को ध्यान-पूर्वक सुनती है, और फिर रामा की ओर उत्सुक नेत्रो से निहार कर उत्तर सुनने की अभिलाषा करने लगती है।

चन्द्रा के बहुत कुछ कहने पर भी रामा ने उसके प्रश्नो को बातो मे ही टाल दिया। तारा के समीप होने के कारण रामा संकोच-वश भावज के प्रश्नो का उत्तर न देने के लिए विवश हो रही थी, यद्यपि तारा को इन बातों का कुछ भी ज्ञान न था। रामा के किसी प्रकार ठीक उत्तर न देने पर चन्द्रा ने फिर कहा—मैं जानती हूँ, रमेश बाबू तुम्हें बहुत प्यार करते हैं।

रामा ने मुस्कुरा कर कहा—जिस प्रकार भैया तुम्हें चाहते हैं, तुम जानती हो, सब कोई इसी प्रकार चाहता है !

रामा के उत्तर से चन्द्रा का मुख लज्जावनत हो गया। गुलाबी गाल गुल्लाला हो उठे। मुख से कुछ उत्तर न निकला, आँखें खिल कर जमीन ताकने लगीं।

चन्द्रा को कुछ भी उत्तर न देते हुए देख कर तारा कभी चन्द्रा की ओर, कभी रामा की ओर निहारने लगती। उसके सरल दृष्टिपात में एक विचित्र कौतूहल था।

बड़ी देर में चन्द्राने सोच कर कहा—रमेश बाबू जब अवेंगे, तो कहूँगी कि मुझे भी पढ़ा दीजिये। देखो, क्या कहते है।

रामा ने जोर से हँस कर कहा—इस बात से मेरा क्या सम्बन्ध ? तुम उनको मास्टर रख लो।

लगातार कई बातों में चन्द्रा को पराजित करके रामा हँसने लगी। रामा को हँसते देख कर तारा भी हँस पड़ी। चन्द्रा ने मुस्कुरा कर फिर कहा—रमेश बाबू ने तुम्हे पढ़ा-लिखा कर पंडित बना दिया है, अब भला तुमसे कौन जीतेगा ?

रामा ने हँस कर कहा—अच्छा ! इसीलिए तुम भी पढ़ना चाहती हो ?

चन्द्रा फिर भी कुछ उत्तर न दे सकी। रामा यह देख कर हँस पड़ी। तारा ने गम्भीर दृष्टि से रामा के ललाट को देखा। उसके अविचल नेत्र उसके मुख की ओर देखकर रह गये। लगातार निर्निमेष दृष्टि से निहार कर रामा के मुख-मंडल में, तारा ने मानों रामा का नहीं, रमेश के चन्द्रमुख का दर्शन किया। रामा के मुख की ओर देखने के समय तारा की आँखों के सम्मुख रमेश की सुन्दर मूर्त्ति थी। जितना ही वह स्थिर नेत्रों से निहारती जा रही थी, उसके हृदय तथा शरीर में अस्थिरता का प्रवेश हो रहा था। उसने रामा की चतुरता में रमेश की चतुरता और रामा की मनोहर हँसी में रमेश की मनोमोहक मूर्ति की झलक देखी।

१०

रामा को गये हुए लगभग तीन मास हो गये। इतने दिनों में उसके अनेक पत्र आये हैं। प्रत्येक सप्ताह अथवा आठवें-दसवें दिन रामा का कोई-न-कोई पत्र अवश्य आता है। परन्तु इधर दो सप्ताह के लगभग होते आ रहे हैं, रामा का कोई पत्र नहीं मिला।

इसी चिन्ता से रमेश का हृदय आज उथल-पुथल में पड़ा हुआ है। इस बार इतने दिनों तक पत्र के न मिलने का क्या कारण हो सकता है, बहुत सोचने पर भी रमेश की समझ में यह बात न आई। उनका हृदय अस्थिर हो उठा। वह मन-ही-मन कहने लगे—रामा ने पत्र क्यों नहीं भेजा? इसका क्या कारण हो सकता है? क्या इतने दिनों तक पत्र भेज कर अब उसने हमें भुला दिया है, अथवा हमसे कोई भूल हो गई है, जिससे अप्रसन्न होकर उसने पत्र नही भेजा? समझ में नहीं आता, क्या बात है? हो सकता है कि वह बीमार हो गई हो। किन्तु, यदि बीमारी के कारण पत्र नहीं भेजा, तब तो और भी बड़ी भारी भूल की है। वैसे चाहे पत्र न भी भेजा जाय, पर बीमारी की अवस्था में तो अवश्य ही पत्र भेजना चाहिये था। तो फिर और क्या बात हो सकती है?

बात-की-बात में रमेश ने अनेक बातें सोच डालीं, किन्तु उन्हें किसी बात से भी सन्तोष न हुआ। हृदय की अस्थिरता अधिक बढ़ते देख कर वह फिर सोचने लगे—यहाँ से उठकर चलें, और जहाँ दो-चार मनुष्य बैठे हों, वहाँ चलकर बैठें। सम्भव है, वहाँ पर मन बहलाव हो।

इस प्रकार सोच-विचार कर रमेश वहाँ से उठ कर चल पड़े, और घूमते-घामते एक ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहाँ छः-सात मनुष्य, कई-एक बालक और एक वृद्धा स्त्री बैठी हुई थी। वहाँ जाकर बैठ गये। अभी बैठें ही थे कि उनकी ओर देख कर उन मनुष्यों में से एक ने पूछा—रमेश, आज इतने उदास क्यों हो?

रमेश उत्तर देने को ही थे कि दूसरे व्यक्ति ने हँस कर कहा—आज कल बेचारे रमेश बाबू अकेले हैं।

पहला मनुष्य—प्रश्न तो यह है कि उदास क्यों है, अकेले-दुकेले का प्रश्न नहीं है।

तब तक तीसरे व्यक्ति ने कहा—अकेले हैं, इसलिए तो उदास हैं। उदास होने का कारण अकेला होना ही है।

बैठे हुए छोटे-बड़े सब रमेश की ओर देखने लगे। किसी को कुछ न कहते देख कर वृद्धा स्त्री ने कहा—बेटा रमेश, ये कैसे तुम्हारी सच हँसी कर रहे है। घबराना नहीं, मै तुम्हारी ही ओर हूँ।

रमेश ने हँसते हुए कहा—बस, अब मुझे किसका डर है।

रमेश की बात समाप्त होते-होते एक व्यक्ति ने फिर कहा—बोलो रमेश बाबू, क्यों उदास हो?

रमेश—जब आप लोग मेरे उदास होने की बात परख सकते हैं, तो फिर यह भी जान सकते है कि उदासी का कारण क्या है।

रमेश की बात सुन कर बैठे हुए व्यक्तियो में से किसी के मुख से बड़ी देर तक कोई बात न निकली। यह देख कर एक दूसरे व्यक्ति ने कहा—उदासी तो मुख की आकृति से प्रकट हो जाती है, किन्तु उदासी का कारण कैसे जाना जा सकता है?

रमेश ने क[illegible]—यह मैं मानता हूँ कि उदासी की परीक्षा सरल है, परन्तु उस[illegible]रण पहचानना कठिन है। किन्तु जो चार-पाँच सीढ़ियाँ चढ़ सकता है, वह उसके आगे की सीढ़ियाँ भी पार कर सकता है—यह एक सिद्धान्त है। अतएव, जो अन्तरात्मा की गति परख कर उदासी का लक्षण जान सकता है, वह उसके कारण को भी पहचान सकता है।

इस पर किसी के मुख से कुछ प्रत्युत्तर न निकला। सभी एक दूसरे का मुख ताकने लगे। कुछ देर बैठे रहने के अनन्तर परस्पर कोई कुछ, कोई कुछ बातें करने लगे। यहाँ पर बैठ कर भी रमेश का जी न बहला। वह कुछ समय

तक बैठे हुए उनकी बातें सुनते रहे। किन्तु जब किसी प्रकार जी न लगा, तो वहाँ से उठ कर चल पड़े।

धीरे-धीरे गाते हुए रमेश रास्ते में जा रहे थे। एकाएक रामा की याद आ गई। गाना भूल गया। मन-ही-मन सोचने लगे—यदि आज सन्ध्या तक कुछ समाचार नहीं मिलता, तो कल प्रातः पत्र लिख कर भेजूँगा और तुरन्त उत्तर मँगाऊँगा। किन्तु पत्र भेजने से तो काम चलना कठिन है। इसलिए कि पत्र पहुँचने में तीन चार दिन की देर होगी। इस प्रकार एक सप्ताह मुझे प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। अच्छा, किसी मनुष्य को भेज कर समाचार जान लेना चाहिये। यही ठीक होगा। किसी को भेज कर कुशल-मंगल का संवाद मँगाना अनुचित नहीं। किन्तु यदि कोई मनुष्य न मिला तो फिर क्या उपाय है? मैं स्वयं जाऊँगा। कल कुछ-न-कुछ उपाय अवश्य करना है। कोई मनुष्य जाय, अथवा मैं स्वयं जाऊँ।

रमेश यह सोचते-सोचते बड़ी दूर तक निकल गये। अंत में एक नीम के वृक्ष के नीचे बैठ कर चारो ओर देखने लगे। सन्ध्या हो गई थी। अँधेरा होने में अधिक देर नहीं थी। उन्होंने चाहा कि यहाँ कुछ समय बैठें; किन्तु हृदय में बारबार यह भावना उठने लगी—घर जा कर देखें, बहुत सम्भव है कि रामा का कोई पत्र आया हो।

रमेश ने वहाँ से उठ कर घर का रास्ता पकड़ा। मार्ग में अनेक बातें सोचते-विचारते और चिन्तना करते हुए वह घर के द्वार पर पहुँच गये। देखा, थोड़ी दूर पर पंडित बद्रीनाथ टहल रहे थे। उन्होंने कुछ संकेत किया।

रमेश पंडित जी के समीप पहुँचे। पंडित जी ने रमेश के हाथ में एक बैरँग पत्र दिया। पत्र को बैरँग देख कर रमेश ने उस पत्र का चार्ज उनको देकर पत्र खोला और उस पत्र को पढ़ते हुए ही द्वार की ओर चले। परन्तु अन्दर न जाकर द्वार पर ही आकर बैठ गये। पत्र पढ़ कर सोचने लगे—इतने दिनों के पश्चात् पत्र भेजा है, तिस पर भी चार-पाँच पंक्तियाँ। उसमें भी अधिक न लिख कर देर से पत्र भेजने के अपराध की क्षमा-याचना मात्र

है। हाँ, एक दिन के लिए बुलाने का भी अनुरोध है। बुलाने का कारण क्या है, यह तो कुछ नहीं जान पड़ता।

निदान रमेश अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में चले गये। वहाँ बैठकर रामा को एक पत्र लिखने लगे। लिखा—

प्यारी रामा,

तुम्हारा पत्र मिला। किन्तु इस पत्र को वास्तव में पत्र न कहकर तार मात्र कहना अधिक अच्छा होगा। तुमने इसमें मुझे आने के लिए लिखा है, किन्तु आने की आवश्यकता पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला। अधिक दिनो से पत्र न मिलने के कारण मै अधीर हो रहा था। अनेक दिन प्रतीक्षा करने के पश्चात् जो बैरँग पत्र आज मिला भी, तो उसमें केवल चार-पाँच पंक्तियाँ! पता नहीं, इतना संक्षेप में पत्र लिखकर तुमने क्यों बला टाली है। पत्र लिखने में यदि इतना कष्ट होता था, तो फिर इतने की भी क्या जरूरत थी। क्यो वेकार कष्ट उठाया। पत्र द्वारा तारा देवी का प्रणाम मिला, किन्तु दूसरे के पत्र में प्रणाम भेजने का कोई मूल्य नहीं होता। इसलिए उसका उत्तर मेरे पास कुछ नहीं है। जहाँ तक होगा, आज के पांचवें दिन मै अवश्य रामनगर पहुँचूँगा।

तुम्हारा-रमेश

रमेश ने पत्र को इस प्रकार समाप्त करके उसे लिफाफे में बन्द किया। फिर टिकट लगाकर एक आदमी के हाथ डाकखाने में भेज दिया।

११

आज शुक्रवार है। आज ही वह पाँचवाँ दिन है। रमेश बाबू आते होंगे, इसी ध्वनि से रामा का घर गूँज रहा है। छोटे-बड़े सभी प्रसन्न हैं। रामा की माँ राधारानी घर के सभी काम-काज शीघ्रता से समाप्त कर रही हैं। चन्द्रा आज रामा से बार-बार हँसी करके रिझा रही है। तारा प्रसन्न हृदय से

उन्हीं कामों में लगी है, जिनके लिए राधारानी ने आज्ञा दी है।

तारा को उत्साह देते हुए राधारानी ने कहा—सब काम करके घर को अच्छी प्रकार झाड़-बहार डालो, रमेश बाबू आते होंगे।

तारा ने राधारानी से पूछा—माँ, अब तो वह अपने यहाँ से चल चुके होंगे न? आधी राह आये होंगे माँ?

राधारानी ने कहा—और क्या, कहीं रास्ते में ही होंगे। चार बजा होगा। पाँच बजे गाड़ी रामनगर स्टेशन पर आ जाती है। यदि वह पाँच बजे स्टेशन पर आ गये, तो साढ़े पाँच तक यहाँ जरूर आ जायँगे।

तारा ने कहा—तब तो माँ, उनके आने में अब देर नहीं है?

इतने में चन्द्रा बोल उठी—अच्छा, रमेश बाबू के आ जाने पर उनका आतिथ्य कैसे किया जायगा। बहुत दिनों पर आ रहे है।

राधारानी—मै क्या जानूँ, आतिथ्य तो तुम्हे करना चाहिये। मै तो आशीर्वाद-मात्र दे सकती हूँ।

चन्द्रा—मैंने तो निश्चय किया है कि तारा झटपट फूलों का एक हार बनावें और रमेश बाबू के आने पर उन्हें वही हार पहना दें, फिर उनके जाने के समय तारा को मैं उनकी भेंट में दे दूँगी। क्यो तारा देवी, पसंद है न?

तारा ने हँसकर कहा—हार तुम पहनाओ, मैं क्यो उन्हे हार पिन्हाने लगी? और उनकी भेंट में मुझे क्यो दोगी? तुम खुद क्यो नही उनकी भेंट हो जाती?

चन्द्रा—पहली बार जैसी मूल्यावन भेंट देकर रमेश बाबू का जितना सम्मान किया गया है, दूसरी बार उससे कम की भेंट पाकर वह किसी प्रकार प्रसन्न ही न होंगे।

चन्द्रा की बात का तारा कुछ भी उत्तर न दे सकी। उसको चुप देखकर राधारानी ने चन्द्रा से कहा—रमेश बाबू यदि तुम्हीं को अधिक मूल्यवान समझें तो?

चन्द्रा—यह कैसे हो सकता है? दूध और मट्ठे को सब पहचानते हैं। वह खुद बड़े पारखी है, कसौटी पर कस कर देख लेंगे।

चन्द्रा की इस बात से तारा और लज्जित हो गई। राधारानी ने फिर हँसकर कहा—आज तुम्हारी बन आई है। कह लो जो कहना है, तारा बेटी इतनी चतुराई कहाँ पाए।

कुछ ही समय बाद दौड़ते हुए एक बालक ने घर मे आकर कहा—रमेश बाबू आ गये, बाहर बैठकखाने में है।

सभी आनन्द मे उन्मत्त हो उठीं। रामा यह सुनते ही चौक सी पड़ी। तारा का हृदय उल्लसित हो उठा। चन्द्रा ने राधारानी से कहा—माँ तुमने तो कहा था कि अभी चार ही बजे है, किंतु चार से अधिक बज चुका होगा।

रामा के बड़े भाई प्रतापनारायण ने घर में आकर अपनी माता से कहा—माँ, थोड़ा-सा मीठा निकाल लाओ, मेहमान को पानी पिला आवें।

राधारानी ने एक कटोरे में लड्डू निकाल कर रख दिये। चन्द्रा ने लोटा और गिलास मलकर पानी से भर दिया। प्रतापनारायण ने मीठा और पानी लेकर कहा—तारा, पान लगाकर रख, हम अभी आते है।

प्रतापनारायण बाहर चले गये। तारा पानदान लेकर पान लगाने बैठी। पान लगाते हुए तारा सोचने लगी—पान मै लगाती तो हूँ, कहीं ऐसा न हो कि मुझसे पान लगाते न बने। पान लगाने में अगर कहीं चूना और कत्था देने में तनिक भी भूल हो गई, तो फिर मै कैसे मुख दिखाऊँगी।

यह सोचते हुए वह कुछ अस्तव्यस्त होने लगी। किन्तु फिर मन-ही-मन कहने लगी—अच्छा, अगर पान लगाते न भी बनेगा तो मेहमान को क्या पता होगा कि पान किसने बनाये हैं।

इस प्रकार सोच-विचार में पड़कर तारा अभी पान न लगा पाई थी कि प्रतापनारायण ने आकर पूछा—तारा, पान बन गये?

तारा चौंक पड़ी। कुछ उत्तर न देकर शीघ्रता से पान लगाने लगी। प्रतापनारायण ने फिर कहा—बड़ी देर लगा दी तुमने, जल्दी करो।

तारा—लग तो गये। ले न जाओ।

प्रताप०—लग गये तो लाओ। फिर क्यों देरी करती हो?

तारा ने लगे हुए पान के आठ बीड़े उठाकर प्रतापनारायण के हाथ में रख दिये। पान लेकर प्रतापनारायण जल्दी-जल्दी बाहर चले गये।

चन्द्रा ने तारा से कहा—तारा, चलो छत पर से देखें, मेहमान कहाँ बैठे है—भीतर है या बाहर।

तारा—हाँ भाभी, चलो न।

राधारानी ने चन्द्रा को रोक कर कहा—वहाँ से क्यों देखने जाओगी, थोड़ी देर में तो वह भीतर आवेंगे ही। जी-भर कर देख लेना।

किन्तु इस समय राधारानी की बात कौन मानने लगा। तारा और चन्द्रा झपटकर छत पर चढ़ गईं। चन्द्रा ने कहा—तारा तुम देखो, कहाँ बैठे है। वहाँ कोई और तो नहीं है।

तारा ने आगे बढ़कर देखा कमरे के बाहर एक चारपाई पर रमेश बैठे हैं। उनकी गोल टोपी चारपाई के कोने पर रखी हुई है। चारपाई से थोड़ी दूर पर दो मनुष्य बातें कर रहे हैं।

तारा ने चन्द्रा को अपनी ओर आने का संकेत किया। चन्द्रा तारा के समीप पहुँच गई। चन्द्रा के साथ-साथ तारा ने भी बड़ी उत्सुकता से रमेश की ओर देखा—पैरों में चमकीले जूते है, सुन्दर मोजे पहने हुए है; युवा-वस्था की सौम्य मूर्त्ति, सुडौल शरीर की दिव्य कान्ति, चतुर्दिक आकर्षण फैला रही है।

सौन्दर्य्य-मंडित बदन-मंडल की चितचोर शोभा निहार कर तारा अपने-आप को भूल-सी गई। उसी समय चन्द्रा ने तारा का हाथ पकड़ कर कहा—चलो, नहीं तो कोई देख लेगा।

चन्द्रा ने यद्यपि बहुत धीरे से कहा, तथापि रमेश के कानों में आवाज पड़ गई। तारा अभी चन्द्रा की बात का कुछ उत्तर भी न दे सकी थी, कि

अकस्मात् रमेश ने छत की ओर देखा। उनका उधर देखना और तारा का पीछे हट जाना एक साथ ही हुआ।

रमेश ने केवल किसी स्त्री को खड़े देख पाया, किन्तु कौन खड़ा है, उन्हें मालूम न हो सका। पहचानने के लिए वह दृष्टि को स्थिर करना ही चाहते थे कि तारा और चन्द्रा छिप गईं। नेत्रों की लालसा पूरी न हुई। किन्तु यह जानकर प्रसन्नता अवश्य हुई कि छत पर चढ़कर स्त्रियाँ मेरे बने-ठने रूप को निहार रही हैं। उनके मन में यह भी सन्देह हुआ कि सम्भवतः रामा ही छिपकर मुझे देख रही हो। अद्भुत आनन्द-वर्द्धक कौतूहल से हृदय भर गया।

१२

प्रतापनारायण के घर की छत पर एक विस्तृत बैठक-खाना बना हुआ है। बैठक मे प्रवेश करने के दो द्वार हैं। दाहिने और बाँयें एक-एक खिड़की है। दरवाजे की ओर छज्जा है।

बैठक के भीतर चन्द्रा, तारा और राधारानी इधर-से-उधर और उधर-से-इधर घूम रही हैं। चन्द्रा ने बैठक को अनेक प्रकार से सज्जित किया है। एक पलँग पर एक दरी और उस पर एक सुन्दर कालीन बिछी है। इस प्रकार बैठक मे रमेश के बैठने का प्रबन्ध करके चन्द्रा और तारा रमेश की प्रतीक्षा कर रही हैं। बड़ी देर तक रमेश के आने की प्रतीक्षा करने के पश्चात् चन्द्रा ने कहा—माँ, बड़ी देर हुई, अभीतक रमेश बाबू आये नहीं?

राधारानी—प्रताप को बुलाने के लिए भेजा था। जाती हूँ, देखूँ, क्या बात है? आते ही होंगे।

राधारानी बाहर जाने के लिए बैठक के बाहर हुई थी कि प्रतापनारायण के साथ रमेश छत पर आ पहुँचे। रमेश को छत पर भेज कर प्रताप लौट गये। बैठक में पहुँच कर रमेश कालीन पर बैठ गये। तारा और चन्द्रा वहीं

खड़ी थीं। उन्होंने चन्द्रा की ओर देख कर बैठने के लिए कहा। चन्द्रा ने अपूर्व भाव-भंगी के साथ घूँघट के अन्दर से ही मुस्कराते और नाज से आँखें नचाते हुए कहा—बिना आज्ञा?

रमेश ने अँगूठी को ऊँगली में कसते हुए हँस कर कहा—तब मैने बड़ी भूल की। बिना आज्ञा मुझे भी न बैठना चाहिये था।

तारा और चन्द्रा यह सुनते ही हँसती हुई बैठ गईं। रमेश ने चन्द्रा की ओर प्रफुल्लित नेत्रों से देखा। चन्द्रा अपनी चूड़ियों को कलाई में घुमाती हुई हँस कर बोली—आप बड़े आदमी हैं। आपको कौन आज्ञा दे सकता है। आज्ञा तो छोटों के लिए होती है।

रमेश—नियम सब के लिए एक होता है।

चन्द्रा कुछ भी उत्तर न दे कर पंखा खोजने लगी। इतने में राधारानी आकर वहाँ बैठ गईं और पंखा करने लगीं। पंखा झलते हुए राधारानी ने पूछा—बेटा, प्रसन्न तो रहे?

रमेश ने बिनम्र भाव से उत्तर दिया—हाँ, आपका आशीर्वाद।

थोड़ी देर तक किसी के कुछ न कहने पर राधारानी ने फिर कहा—आज मेरे बड़े सौभाग्य हैं, जो तुम मेरे यहाँ आये हो। तुम्हें आज देख कर मुझे बड़ी शान्ति और प्रसन्नता हुई है।

रमेश के प्रशस्त ललाट और प्रदीप्त मुखमंडल तथा नेत्रों में शान्ति छा रही थी। तारा चुपचाप यौवनोन्मत्त नवयुवक रमेश की ओर स्थिर नेत्रों से देख रही थी। कुछ देर बाद चन्द्रा ने कहा—इस बार बहुत दिनों में आये।

रमेश—जब बुलाया, तब आये।

चन्द्रा कुछ उत्तर न दे सकी। राधारानी ने चन्द्रा से हँस कर कहा—क्यों, अब कुछ बोलना नहीं आता? तुमने सभी को तारा समझ रखा था।

रमेश ने हँसकर कहा—क्यों, तारा को क्या समझ रखा था?

राधारानी—जब देखो, तब उसे खिझाया करती है।

रमेश ने अप्रकट नेत्रों से उस यौवनोन्मुखी बालिका की ओर देखा। वह कैशोर का अतिक्रमण करके नवयौवन की सम्पूर्ण सम्पदाओं से सम्पन्न हो गई है। उसके समस्त सुघटित शरीर में अपरूप परिवर्त्तन हो गया है। शीतान्त के समय नव वसन्तागमन के कारण जिस प्रकार धरित्री नव-लश्यामल श्री से उत्फुल्ल हो उठती है, उसी प्रकार तारा का शरीर भी नव-यौवन के सरस समागम से लावण्य-लहरी में निमज्जित हो रहा है।

रमेश के अप्रकट किन्तु मुग्ध दृष्टि-पात से तारा संकुचित और लज्जित हो गई। रमेश चंचल नेत्रों से तारा की ओर देख देखकर बड़ी देर तक चन्द्रा और राधारानी के साथ बातें करते रहे।

सूर्य्यास्त हुए अधिक समय बीत चुका है। चन्द्रा अँधेरा होते देखकर घर में गई और एक लालटैन जला ले आई। चन्द्रा लालटैन रखकर बैठ गई। अधिक समय हो जाने के कारण राधारानी भोजन का प्रबन्ध करने चली गईं।

रमेश को चुप देखकर चन्द्रा ने विहँस कर कहा—अपने यहाँ की कुछ नई बातें सुनाइये।

रमेश—सब कुशल है।

रमेश के इस संक्षिप्त उत्तर को सुनकर चन्द्रा चुप हो गई। रमेश ने फिर कहा—आज दिन के तीसरे पहर से मस्तक में धीमी-धीमी पीड़ा हो रही है।

चन्द्रा कुछ उद्विग्न-सी होकर बोली—तो फिर आप लेट जाइए।

रमेश ने मुस्कुराकर कहा—लेट जाने से क्या होगा?

चन्द्रा ने कहा-लेट जाने से सिर दर्द कुछ कम हो जायगी। मैं जाती हूँ, एक दवा लाकर आपके सिर में लगा दूँगी। उससे पीड़ा शान्त हो जायगी।

चन्द्रा उठकर दवा लाने चली गई। रमेश पलँग पर लेट रहे। लेटे-ही-लेटे एक बार तारा की ओर देखा। तारा वहीं बैठी पंखा झल रही थी।

इतनी देर तक बैठी रहने पर भी तारा के मुख से एक बात भी न निकली। उसकी इस स्तब्धता ने उसके रूप-लावण्य को रमेश के नेत्रो मे और भी मूल्यवान बना दिया। वह सोचने लगे—तारा का हृदय कितना गंभीर है। उसकी प्रकृति कितनी शान्त है। यह कोई अकम्पित कुसुमित सुमन है, या शान्ति और शोभा की अधिष्ठात्री दैवी मूर्ति, अथवा किसी कुशल चित्रकार-द्वारा चित्रित मन-मोहक चित्र।

न तारा ही कुछ रमेश से बोल सकी, न रमेश ही लज्जा और संकोच का बंधन तोड़ सके। लालटैन के प्रकाश में बैठी हुई तारा उस समय रमेश की दृष्टि मे भुवन-मोहिनी स्वर्गीय बाला-सी प्रतीत हुई। रमेश ने साहसकर के तारा से कुछ कहना चाहा; पर बात-की-बात में साहस टूट गया, संकोच की प्रस्तरमयी प्राचीर टूट न सकी। बड़ी देर तक चुपचाप लेटे रहे।

कुछ देर बाद बड़ा साहस कर के रमेश ने तारा की ओर देखकर कहा—तारा, पंखा अब मुझे दे दो। तुम्हे पंखा झलते देर हुई, हाथो में दर्द होने लगा होगा।

तारा ने अपना मस्तक नीचा करके अत्यंत लज्जा के साथ उत्तर दिया—नहीं, यह नहीं हो सकता। मेरे हाथो में दर्द नहीं होगा।

इतना कहते ही तारा का हृदय उद्विग्न हो उठा। उसको स्पष्ट बोध होने लगा कि मेरा उत्तर पर्याप्त और यथोचित नहीं है। जिस प्रकार एक विद्यार्थी अपने परीक्षक के प्रश्नो का उत्तर देते हुए बार-बार अपने उत्तरों की अनुपयुक्तता पर शंका करते हुए मन-ही-मन संकुचित होने लगता है, ठीक उसी भाँति आज रमेश को उत्तर देने के बाद तारा का हृदय व्यथित हो उठा।

रमेश और तारा के संसर्ग का आज यह पहला दिन है। अपने हृदय की बढ़ती हुई उद्विग्नता और लज्जा-जनित वेदना को दूर करने के लिए तथा अपने उत्तर की नीरसता को रमेश के हृदय से भुला देने के लिए तारा ने शान्त भाव से पूछा—आपके मस्तक में क्या अधिक वेदना हो रही है?

रमेश ने अपना हाथ अपने ललाट पर रख कर शिथिल स्वर में कहा—हाँ, कुछ हो रही है, अधिक नहीं।

इतने में चन्द्रा आ गई। उसने आते ही शीशी खोली। उससे कपूँरा-मृत की कुछ बूँदें उनके मस्तक पर छोड़ कर उसे सम्पूर्ण मस्तक में लगा दिया। उसके लगाते ही रमेश की मस्तक-वेदना अत्यन्त क्षीण हो गई। चन्द्रा ने पूछा—कुछ शान्ति मिली है?

रमेश ने स्वस्थ होकर कहा—इस समय तो ऐसा जान पड़ता है कि पीड़ा एक बारगी कम हो गई।

कुछ ठहर कर चन्द्रा ने कहा—तो अब मैं जाती हूँ।

रमेश ने चकित हो कर पूछा—क्यों?

चन्द्रा ने प्रसादपूर्ण लोचनों से तारा की ओर देखते हुए कहा—इसलिए कि तारा देवी भी आप से बातें कर लें।

रमेश-तारा देवी क्या आपकी उपस्थिति में मेरे साथ बातें नहीं कर सकतीं?

चन्द्रा ने हँस कर कहा—सम्भव है, कुछ ऐसी भी बातें हो, जो मेरी उपस्थिति से न हो सकती हों।

रमेश ने भी हँस कर कहा—आपने यही कैसे जाना कि तारा देवी को कुछ ऐसी बातें करनी है जो एकान्त में ही हो सकती हैं?

चन्द्रा—मैंने अभी तो कहा, कि सम्भव है कुछ ऐसी बातें हों।

रमेश—सम्भव की ही कल्पना क्यों की?

चन्द्रा ने मुस्कुरा कर कहा—जब तक माँ और हम दोनों बैठी रहीं, तब तक तो कुछ नहीं, पर जब माँ और हम दोनों चली गईं, तब लौट कर क्या देखती हूँ, कि तारा देवी कुछ बातें कर रही है।

रमेश—नहीं, तारा देवी बेचारी तो कुछ बोलीं भी नहीं। बल्कि मैंने ही कुछ पूछा था। तारा देवी ने उसका भी अत्यंत संक्षिप्त उत्तर दिया।

चन्द्रा—अच्छा तो तारा को न सही, आपको ही सही। आपको ही यदि कुछ बातें करनी हों, तो कर सकते हैं। इसलिए मैं जाती हूँ।

रमेश—इसका तो अर्थ यही होता है कि आपको कहीं जाना आवश्यक है। अच्छा, जाइये, किन्तु जाने का कारण तारा के मत्थे क्यों मढ़ती हैं ?

इस मधुर विवाद को शान्त करने की इच्छा से तारा ने कहा—अच्छा, अब यदि यह समय मेरे लिए ही बातें करने को छोड़ दिया गया है, तो फिर मै ही बातें करूँगी।

तारा की बात सुनकर रमेश हँस पड़े। तारा भी साड़ी में अंगो को समेटती हुई हँसने लगी। चन्द्रा ने फिर हँस कर कहा—तो बस मेरे जाने की ही देर है न ?

तारा ने स्पष्ट स्वर में मुस्कराकर कहा—लोगों का कहना बहुत ठीक है पापी को पापी न कहने पर भी उसके हृदय का पाप अपने आप चिल्लाया करता है।

रमेश ने तीव्र हँसी हँस कर तारा की बात का समर्थन किया। चन्द्रा मुस्कराती हुई बंकिम दृष्टि से तारा की ओर निहार कर रह गई। सोचा, अब यदि उठ कर जाती हूँ, तो पापी बनना पड़ेगा, और यदि कुछ बोलती हूँ, तो भी उसी दोष की भागिनी होना पड़ता है।

चन्द्रा को संकोच-विवश देख कर रमेश ने तारा से पूछा–तारा, बोलो, क्या बातें करोगी ?

तारा—आपको कोई पत्र मिला था ?

रमेश—हाँ, मिला था।

तारा—उसमे जो मैने प्रणाम लिखा था, उसका आपने क्या उत्तर दिया था, याद है ?

रमेश ने संकुचित भाव से मुस्कराते हुए कहा—क्यों, क्या तुमने मेरा पत्र पढ़ा नहीं था ?

तारा—हाँ, पढ़ा था। उसमें लिखा था—तारा का प्रणाम मिला, किन्तु दूसरे के पत्र में प्रणाम भेजने का कोई मूल्य नहीं होता, इसलिए उसका मेरे पास कुछ उत्तर नहीं।

तारा की बात सुन कर रमेश हँसने लगे। तारा ने फिर कहा—जब कोई किसी को प्रणाम लिखता है, तो क्या वह उसको इसी प्रकार उत्तर देता है ?

रमेश—तो क्या, जो जिसे चाहता है, वह उसके लिए दूसरे के पत्र में प्रणाम लिखकर ही छुटकारा पा जाता है ?

तारा—आपके पत्र मे यह पढ़ कर, कि मेरे पास उसका कुछ उत्तर नहीं—मुझे अत्यंत दु ख हुआ था।

तारा की बात सुन कर रमेश मन-ही-मन कहने लगे—मेरी बात से कष्ट हुआ था। मै नहीं जानता था कि तारा मुझसे शब्दों का अर्थ पूछेगी, मेरी साधारण विनोद-पूर्ण शब्दावली तारा के हृदय पर ऐसा मार्मिक प्रभाव डालेगी।

सोचते-ही सोचते रमेश ने अत्यन्त विनम्र भाव से कहा—मैने तुम्हारे हृदय को दुखी करने के लिए ऐसा नहीं लिखा था, तुम्हारा इस प्रकार प्रणाम पाकर वास्तव में मुझे कुछ संतोष नहीं हुआ था। मै चाहता था, कि तुम्हारे हाथ का लिखा हुआ पत्र पाउँ, और फिर मैं भी उसका उत्तर उन्हें भेजूं। इसीलिए मैने विनोदवश ऐसा लिख दिया था। मै नहीं जानता था कि मेरे इस प्रकार लिख देने से तुम्हें इतना दुःख होगा। इस बार मुझे क्षमा करो। फिर कभी ऐसा न करूँगा।

तारा ने मीठे स्वर में उत्तर दिया—क्षमा! यह क्या आप कहते हैं! मैं नहीं क्षमा आप करेंगे।

रमेश—मेरा ही अपराध, और मै ही क्षमा करूँगा? यह कैसी उलटी बात है ?

तारा—जिसका जो अधिकार होता है, वही उसका पालन कर सकता है। क्षमा करने का अधिकार आप को ही है। आप ही मेरे अपराध के लिए क्षमा करेंगे। यही शोभा देगा।

तारा की बात सुन कर रमेश चुप हो गए। सोचने लगे—इतना

गम्भीर उत्तर ! इतने सुकुमार अन्तःकरण से ऐसा विचारपूर्ण उत्तर ! आशातीत दृश्य !!

इसी प्रकार के विचारों को हृदय में धारण किये हुए टहलने के बहाने रमेश छत से उतर कर बाहर चले गए ।

१२

रामनगर में रमेश का आज तीसरा दिन है । वह आज रामनगर से बिदा होंगे । प्रतापनारायण की अनेक प्रार्थनाओं पर भी रमेश ने जाना ही निश्चित रखा । उनके जाने का समाचार सुन कर चन्द्रा और राधारानी का हृदय मुरझाया हुआ है ।

प्रातःकाल के आठ बजे होंगे । रमेश उसी बैठक में बैठे हुए राधारानी और चन्द्रा से बातें कर रहे है । प्रथम दिवस उनके पास बैठ कर जिस प्रकार चन्द्रा और राधारानी ने आनन्द का अनुभव किया था, आज की स्थिति उसके प्रतिकूल है । सभी के हृदयों में आज आनन्द के स्थान पर कुछ उदासी का भाव दिखाई देता है ।

चन्द्रा की बातों में आज वह उत्साह नहीं है । राधारानी बार-बार कभी रमेश के पास आती हैं, और कभी इधर-उधर घूम कर घर का कुछ काम-काज देखती हैं । तारा हाथ में पंखा लिए हुए बैठक में पहुँची और रमेश के पास बैठ कर उसे झलने लगी । अनेक प्रकार की बातें हो चुकने पर चन्द्रा ने कहा—अभी कल ही तो आप आए हैं, जाने के लिए क्यों इतनी शीघ्रता कर रहे हैं ?

रमेश—मुझे आये हुए आज तीन दिन हो गए । इतना रहना क्या कम है ? घर पर और भी तो काम है।

चन्द्रा—तीन दिन कैसे ? परसों तो आप यहाँ सन्ध्या समय पहुँचे । सिर्फ कल भर रहे और आज ही जाने के लिए तैयार हैं । इस प्रकार

तो बस कल का ही दिन यहाँ रहने की गिनती में आ सकता है।

रमेश—फिर भी तो कभी नहीं है।

राधारानी ने कहा—तुम लोग क्यों आग्रह करती हो। आज नहीं जाना होगा। अभी परसों ही आये हैं और आज ही कैसे जा सकते है। उन्हें रहने दो।

चन्द्रा—अच्छा! तो माँ, आज तुम्हारे कहने से रहेंगे।

तारा ने कहा—अभी तो नहीं जाते, किन्तु तुम ऐसा करोगी कि जाने के लिए उन्हें स्वयं कहना पड़ेगा।

चन्द्रा—हम लोग क्या करेंगी।

तारा—जो चोर नहीं भी होता, वह चोर चोर कहने से एक दिन चोर हो ही जाता है। न कोई जाता है, न कोई आता है; तुम बार-बार रोकने बैठी हो, जाता कौन है?

चन्द्रा—यह भी ठीक है।

रमेश ने प्रतिवाद करते हुए कहा—जिसे जाना है, उसकी भी बात कुछ सुनोगी अथवा अपने-आप जो चाहोगी, निर्णय कर लोगी?

तारा—अपने-आप।

रमेश—क्यो?

तारा—इसलिए कि आना आप के अधिकार में था, जाना दूसरे के अधिकार में है।

तारा की बात सुन कर राधारानी और चन्द्रा हँसने लगीं। रमेश ने भी तारा की ओर देख कर मुस्करा दिया और कहा—यह नियम मुझे नहीं मालूम था।

राधारानी ने हँसते हुए कहा—अब तो बेटा, तुमको न जाना चाहिये। नियम मालूम हो गया।

चन्द्रा कुछ कहना ही चाहती थी कि प्रतापनारायण आकर बैठक के पास खड़े हो गये। बोले—मै भी आ सकता हूँ?

रमेश—हाँ-हाँ आइये ।

रमेश के साथ-साथ चन्द्रा ने अत्यंत क्षीण स्वर में कहा—नहीं ।

चन्द्रा का अत्यंत अस्पष्ट और क्षीण स्वर भी प्रतापनारायण के कानों तक पहुँच गया । बोले—आप तो कह रहे है, आइये किन्तु आकाशवाणी हो रही है—नही । अब प्रश्न यह है कि मुझे क्या करना चाहिये ?

रमेश ने हँस कर उत्तर दिया—दोनों आज्ञाओं का पालन आपको करना चाहिये ।

प्रताप—ये दोनो आज्ञायें ऐसी है, जिनमें किसी एक का ही पालन हो सकता है ।

रमेश—नहीं, दोनों का पालन करना चाहिये, और हो भी सकता है ।

प्रताप—कैसे ?

रमेश—जो आज्ञा पहले हुई है उसका पहले, और जो अंत में हुई है उसका अंत में ।

प्रताप—इसका अर्थ तो यह होता है कि हम आ सकते है, पर बैठने के बाद ही हमें शीघ्र उठ कर चला जाना पड़ेगा ?

रमेश के साथ-साथ तारा और चन्द्रा ने हँस कर उस बात को उड़ा दिया । प्रतापनारायण रमेश के समीप आ कर बैठ गये । कुछ समय तक किसी के मुख से कुछ न निकला । सब को नीरव देख कर प्रतापनारायण ने हँसते हुए कहा—क्या हमारे लिए दूसरी आज्ञा के पालन की प्रतीक्षा हो रही है ।

प्रतापनारायण की बात सुन कर सब-के-सब हँस पड़े । चन्द्रा का हृदय आह्लाद से भर गया । सभी को हँसते देख कर प्रतापनारायण ने फिर कहा—लोकोक्ति है कि जहाँ पर अपना उपहास हो रहा हो, और जहाँ सब-के-सब केवल हँसी उड़ाने वाले हों, वहाँ से उठ कर चला जाना चाहिये ।

चन्द्रा ने धीरे कहा—इतना जान कर भी......

चन्द्रा आधा वाक्य कह कर रुक गई। अब यहाँ से चलने में ही कुशल है, यह कह कर प्रतापनारायण वहाँ से चले आये। प्रताप के पहुँचने पर चन्द्रा जो संकुचित और परतंत्र हो गई थी, फिर स्वाधीनता-पूर्वक सँभल कर बैठ गई। रमेश चन्द्रा की ओर देख कर मुस्कुराने लगे। फिर बड़ी देर तक सब को स्तब्ध देख राधारानी ने कहा—बेटा, तारा का विवाह इस वर्ष कर डालना है। विवाह तो पर-साल ही हो जाता, पर कहीं ठीक वर नहीं मिला। ईश्वर यदि चाहेगा तो इस वर्ष अवश्य हो जायेगा। प्रताप तो बड़ी दौड़-धूप कर रहे हैं। पर ......

रमेश ने बात काट कर कहा—कहाँ दौड़-धूप कर रहे है? कहीं कुछ निश्चित किया है?

राधारानी—हाँ, धीरजपुर में एक लड़का देखा है। आशा भी है कि वहाँ पर ठीक हो जायेगा। किन्तु अभी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

रमेश—निश्चित रूप से क्यो नहीं कहा जा सकता? कोई और विशेष कारण है।

राधारानी—और बातें तो सब ठीक है, किन्तु विवाह कन्या-पक्ष पर ही निर्भर तो नहीं है।

रमेश—इसलिए कि दहेज का निर्णय अभी नहीं हुआ?

राधारानी—और भी अनेक बातें है। दहेज तो मूल बात है ही।

रमेश के वाम पार्श्व मे बैठी हुई तारा पंखा कर रही थी। रमेश ने केवल नेत्र घुमा कर एक बार तारा की ओर देखा। उनकी दृष्टि पड़ते ही उस लोक-ललामा नवयुवती ने अपना मुख पंखे की ओर छिपा लिया।

तारा का यह अनूठा लज्जावरण देखकर रमेश मन-ही-मन सोचने लगे—जिस पुष्प को प्रकृति ने अधिक-से-अधिक सुन्दरता दी है, उत्तम-से-उत्तम गंध दी है और जिसके जन्मस्थान के लिये पवित्र से पवित्र भूमि दी है, उसको ग्रहण

करने के लिए कुछ साधन चाहिए? जिस कन्या के शरीर की गठन देखकर विधाता के रचना-चातुर्य का प्रशंसनीय परिचय मिलता है, जिसके रूप, गुण, और लावण्य के सम्मुख सर्वांग सुन्दरी प्रकृति की सुषमा-राशि पराजित होती है, उसके ग्रहण करने के लिए तुच्छ दहेज साधान हो सकता है? यदि ऐसी बात है, तो निश्चय ही समाज केवल लौकिक सभ्यता के भ्रम-जाल में फँसा हुआ है। वास्तविक सभ्यता के पहचानने का उसे ज्ञान नहीं है।

राधारानी फिर कहने लगीं—धीरजपुर में जो लड़का है, उसका सुभीता अच्छा है। प्रताप बड़ा परिश्रम व प्रयत्न कर रहे हैं। अब तारा का भाग्य जाने।

रमेश इस प्रकार राधारानी के मुख से तारा के विवाह की बातें बड़ी देर तक सुनते रहे। इसी बीच में तारा उठकर चली गई थी। चन्द्रा भी तारा के पीछे चली गई। रमेश बैठे-बैठे थक-से गये थे। इसलिए वहीं लेटकर बातें सुनने लगे।

कुछ देर और बातें करने के बाद राधारानी भी उठ कर वहाँ से चली आईं। रमेश दाहिनी ओर करवट लेकर लेटे-ही-लेटे कुछ सोचने लगे। बड़ी देर तक लेटे रहने पर रमेश की आँखों में कुछ आलस्य आ गया। उनके नेत्र कुछ झँपने से लगे कि अकस्मात् कटि-प्रदेश में किसी के हाथ पड़ने से चौंक कर वह पीछे की ओर घूमे। देखा, अनेक प्रकार के वस्त्रभूषणों से सुसज्जित, उनके कटि-भाग में हाथ रखे, रामा बैठी है।

रमेश ने बड़ी देर तक रामा के मुख की ओर देखा। उनको अपनी ओर इस प्रकार निहारते देख कर रामा ने कहा–भैया से आज चले जाने के लिए कहा था?

रमेश—कहा क्या था, आज तो जाऊँगा ही।

रामा—क्यों?

रमेश—तुम्हारे बुलाने से आया था। तीन दिन हो चुके। अब आज चला जाऊँगा।

रामा—और दो-एक दिन रहते तो—

रमेश—तो क्या ? अब ठहरने का समय नहीं है।

रामा चुप रह गई। थोड़ी देर चुपचाप बैठी रही। उसे शान्त देखकर रमेश ने पूछा—क्यों, चलोगी नहीं ?

रामा—कहाँ ?

रमेश—बिदा के लिए कहा था। अगर तुम चलने को कहो, तो फिर मैं प्रतापनारायण से कहूँ।

रामा—बिदा के लिए ही आये थे ?

रमेश—आया तो तुम्हारे बुलाने से था, किन्तु सोचता हूँ कि एक पंथ दो काज अच्छा होगा।

रामा—एक तो अभी विदा के लिये आये नहीं। यदि आये भी होते, तो भैया अभी भेजते नहीं।

रमेश—भेजना न भेजना क्या भैया के हाथों में ही है ? तुम्हारे ऊपर अब भी भैया का इतना अधिकार है ?

रामा यह सुनकर मुस्कुराने लगी। बड़ी देर तक रामा के कुछ न बोलने पर रमेश ने फिर कहा—अभी भैया क्यों नहीं भेजेंगे ?

रामा—तारा के विवाह की बातचीत हो रही है। निश्चित हो गया, तो कुछ दिनों में लग्न का समय आ जायगा—विवाह के बहुत थोड़े दिन रह जायँगे।

इसी तरह कुछ देर तक रमेश से बातें कर रामा ने कहा—भोजन बन चुका है। अब मैं चलती हूँ। भोजन के लिए सब कोई बाट जोह रहे होंगे।

रमेश—और अगर मैं भोजन न करूँ तो ?

नहीं, यह कैसे होगा—कहकर रामा वहाँ से चली आई। उसी समय रमेश को चन्द्रा भोजन के लिये नीचे लिवा गई।

१४

रमेश को रामनगर से लौटे हुए डेढ मास के ऊपर हो चुका है। अभी तक उनके हृदय मे किसी प्रकार का कोई सांसारिक बन्धन और भ्रम-जाल नहीं थे, किन्तु अब उनके सम्मुख जीवन-निर्वाह का प्रश्न आने से एक भीषण समस्या उत्पन्न हो गई है।

भाई से पृथक होने पर रमेश के हाथो में अस्थि-पंजर के अतिरिक्त और कुछ न आया था। किन्तु उस समय उनके मन मे इस बात का किंचित् क्षोभ भी न हुआ था। इसका कारण यह था कि उनका हृदय उस समय एक यौवनोन्मत्त युवक का हृदय था। उन्हे क्या पता था कि जीवन-यात्रा के लिए क्या-क्या आवश्यक हुआ करते है? वह जानते थे कि जब रामा मेरे समीप होगी और मै रामा के समीप होऊँगा, उस समय फिर मेरे लिए और क्या आवश्यक हो सकता है?

रामा को रामनगर में छोड़कर आने के पश्चात् रमेश का हृदय न केवल रामा के वियोग से चिन्तित और व्यथित हो रहा है, प्रत्युत उसका एक प्रधान कारण भावी जीवन के सम्बन्ध की चिन्तना भी है। अभी तक जैसे हो सका था, सुख और स्वाधीनता के साथ उन्होंने अपने दिन बिताये थे, किन्तु अब प्रश्न था कि आगे के लिए क्या होना चाहिए? इसी चिन्तना में उनके अनेक दिन बीत गये।

एक दिन अकेले अपने घर में बैठे हुए रमेश मन-ही-मन सोचने लगे—मुझे अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में कुछ अवश्य निश्चित कर लेना चाहिये। ऐसा न होने से अव्यवस्थित जीवन बिताना ठीक न होगा। कुछ-न-कुछ उद्योग मुझे अवश्य करना होगा। मुझे क्या करना चाहिये? यह प्रश्न मेरे सन्मुख है। इतनी बड़ी आयु तक मै पढ़ता-लिखता रहा। जब पढ़ना समाप्त किया, तब भी घर में रहकर स्वतंत्र जीवन बिताया। अबतक किसी प्रकार बन्धन में नहीं रहा। अब यदि मै कुछ व्यवसाय करता हूँ,

तो उसके लिए पूँजी की आवश्यकता है। पूँजी मेरे पास है नहीं। किसी प्रयत्न से पूँजी जुटा नहीं सकता। ऐसी अवस्था में मुझे कहीं पर नौकरी की खोज करनी पड़ेगी। किन्तु मैं नौकरी कहाँ खोजूँगा, किसी से ऐसा परिचय भी नहीं है। कौन मुझे सहायता देगा—कौन मेरे लिए नौकरी की खोज करेगा? हाँ, यदि मैं बाबू राधामोहन को पत्र लिखूँ, उनसे मिलूँ, तो वह अवश्य मेरी सहायता करेंगे।

कानपुर में 'बान्धव सम्मेलन' नाम की एक नवयुवक-संस्था है। इस संस्था ने कानपुर की जनता में बहुत कुछ कार्य किया है। इस संस्था के व्यवस्थापक श्रीयुत अनाथ-नाथ थे। उन्होंने चालीस वर्ष की अवस्था में इसकी स्थापना की थी। बावन वर्ष की अवस्था में उनका देहावसान हो गया था। जीवन-पर्यन्त सन्तानहीन होने के कारण अपने अंतिम समय में उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति, जो लगभग सवा दो लाख की थी, इसी 'बान्धव-सम्मेलन' के नाम लिख दी थी। उस समय से यह संस्था और भी स्थायी तथा शक्ति-शालिनी हो गई है।

आज उस संस्था की ओर से एक बड़ा पुस्तकालय स्थापित है और 'समाज' नामक हिन्दी-भाषा का एक उच्च कोटि का मासिक-पत्र निकलता है। श्रीयुक्त राधामोहन इस 'समाज' मासिकपत्र के सम्पादक हैं।

रमेश और राधामोहन का अधिकांश अध्ययन एक साथ हुआ है। दोनों ने विद्यार्थी-जीवन एक साथ समाप्त किया है। अध्ययन समाप्त कर रमेश घर पर रहने लगे और राधामोहन राष्ट्रीय संस्थाओं में कार्य्य करने लगे।

बहुत कुछ सोच-समझ कर रमेश ने राधामोहन के नाम एक पत्र लिखा। उसमें अपना आशय समझाते हुए अंत में लिखा—जहाँ तक होगा, मैं आवलम्ब आपसे इसके सम्बन्ध में मिलूँगा। पत्र लिख कर भेज दिया।

रमेश घर से बाहर जाने वाले ही थे कि इतने में गंगा वहाँ आ गई। घर में प्रवेश कर उनको देखते ही उसने पूछा—बेटा रमेश, क्या कर रहे हो?

रमेश ने उत्तर दिया—कुछ नहीं, अभी एक पत्र लिखा है।

गंगा—पत्र कहाँ को, रामनगर को ?

रमेश—नहीं, रामनगर के लिए नहीं लिखा; कानपुर में मेरे मित्र श्रीयुक्त राधामोहन जी रहते है, उन्हीं को भेजा है।

गंगा—राधामोहन कौन ? उनको क्यों लिखा है ?

रमेश—वह मेरे बड़े मित्र हैं। वह मेरे ही साथ पढ़े लिखे है। जब से पढ़ना छोड़ा है, तब से वह कानपुर में और मै यहाँ पर अपने घर में रहने लगा हूँ।

गंगा—बेटा, अभी तुम रामनगर गये थे, सब कोई कहता था कि बहू को विदा कराने गये है। पर तुम बहू को लिवा नहीं लाये ?

रमेश—नहीं, मैं रामनगर बिदा के लिए तो नहीं गया था, यों ही चला गया था।

गंगा—वेटा, तुमको अब उसे लिवा लाना चाहिये। तुम अकेले ठहरे। अकेले में बहू का रहना अब वहाँ कैसे हो सकता है! उसका वहाँ पर पन्द्रह-बीस दिन रहना बहुत है।

रमेश ने कहा—हाँ, यह तो ठीक है। अभी यद्यपि मैं बिदा के लिए गया नहीं था, तथापि मैंने जो बातें की थीं, उससे जाना जाता है कि दो-एक कारणों से अभी बिदा नहीं हो सकती। यह जानकर मैंने भी किसी प्रकार का कोई दबाव नहीं डाला।

गंगा—चलो अच्छा ही किया। मैंने सुना था कि रमेश बहू की बिदा के लिए रामनगर गये हैं, पर तुम लौट आये और बहू को लिवा न लाये, तो मैने सोचा कि जाकर पूछ आऊँ, क्या बात है।

रमेश ने मुस्कुरा कर पूछा—मुझे तो आये कई दिन हो गये, इतने दिनों में पूछने आई हो ?

गंगा—हाँ, कई दिनों तक सोचती रही कि जब मिलोगे, तो पूछ लूँगी, पर जब तुम न मिले और इतने दिन हो गये, तब आई हूँ।

रमेश—यह कहो कि छुट्टी ही नहीं मिली, जिससे आना नहीं हुआ।

गंगा—हाँ बेटा, गृहस्थी का काम भला काहे को छूटने देता है। अच्छा बताओ, अब बहू को लिवाने कब जाओगे ?

रमेश ने कहा—आने वाला जब आना नहीं चाहता और भेजने वाले भी जब तक भेजना नहीं चाहते, तब तक मैं नहीं जाता। जब मैं समझूँगा कि समय आ चुका है और दोनों अड़चनें जाती रहीं, तब जाऊँगा।

कुछ देर तक चुपचाप बैठकर गंगा ने कहा—अच्छा अब जाती हूँ बेटा, घर का कुछ काम-काज देखूँ।

गंगा उठकर रमेश के घर से चली गई। उसके चले जाने पर रमेश बड़ी देर तक बैठे हुए कुछ सोचते रहे। फिर एक पुस्तक लेकर पढ़ने लगे।

कुछ देर पढ़ने के बाद पुस्तक बन्द करके सोचने लगे—मैं कानपुर जाकर नौकरी खोजूँगा, कहाँ खोजूँगा ? किससे पूछूँगा ? अभी तक तो मैं कभी किसी बन्धन में नहीं रहा, नौकरी करना और स्वाधीन जीवन बिताना—कितना कठिन प्रश्न है ? मेरे विचार पूर्ण रूप से राष्ट्रीय हो चुके हैं। राष्ट्रीय विचारों में स्वाधीनता भरी हुई है। इसी से तो मेरे लिए नौकरी की समस्या और भी कठिन हो गई है। यद्यपि मैं राष्ट्रीय संस्थाओं में ही कार्य करूँगा, फिर भी नौकरी करके कुछ-न-कुछ बन्धन में पड़ना पड़ता है। किन्तु यह तो पीछे की बात है। पहला प्रश्न तो नौकरी का मिलना है। कहाँ जाऊँगा ? किसके यहाँ जाकर नौकरी का पता लगाऊँगा ? हाँ, राधामोहन के द्वारा कुछ सुविधा हो सकती है। किन्तु वह बेचारे भी क्या करेंगे ? उन्हें सम्भवतः याद होगा, जो मैं उनके विद्यार्थी-जीवन में कहा करता था कि पराधिन न रहकर स्वाधीन व्यवसाय के लिए प्रयत्न करूँगा ? आज जब वह मुझ से पूछेंगे कि तुम्हारे वे विचार कहाँ गये, तब फिर मै क्या उत्तर दूँगा ? क्या मैं स्पष्ट कहूँगा कि मैं अपने भाई से पृथक हो गया हूँ और इसलिए मुझे नौकरी का मुँह ताकना पड़ रहा है ? किन्तु ऐसा कहने पर मेरी अवस्था उन पर प्रकट हो जायेगी और वह जान जायेंगे कि मेरे पास इस समय कुछ

नहीं है। पर इसमें दोष क्या है? स्पष्ट रूप से कहूँगा कि मै केवल अपने शरीर को लेकर पृथक हो गया हूँ, पूर्वजो की सम्पत्ति को मैं बिलकुल नहीं जानता। यह तो मेरे लिए गर्व की बात है कि मै स्वतंत्र हो कर अपने पैरों पर खड़ा हो रहा हूँ। इसमें फिकर किस बात की?

रमेश के हृदय में अनेक भाँति की बातें उठाने लगीं। संकोच और संकल्प-विकल्प में पड़ कर उनका हृदय कभी कुछ, और कभी कुछ सोचने लगा।

१५

कानपुर के राधामोहन के यहाँ आज रमेश आये हुए हैं। विद्यार्थी-जीवन समाप्त करके घर पर चले जाने के पश्चात् रमेश अपने को भूल-से गये थे। विद्यार्थी-जीवन की इच्छायें, आशायें और उत्तेजनायें, घर पर रह कर, रामा के सम्पर्क से, सब-की-सब छिन्न-भिन्न हो गई थीं। किन्तु घर पर रहते हुए भी रमेश का नागरिक सम्बन्ध विच्छेद नहीं हुआ था। वह प्रत्येक मास में एक-दो बार कानपुर आते थे। फिर भी वह नागरिक जीवन, जो उनको विद्यार्थी-जीबन में अधिकाधिक प्रिय हो रहा था, केवल दो-एक दिन के लिए आने पर भी नीरस और उजाड़ बोध होता था।

इस बार कानपुर आने पर रमेश की अवस्था कुछ और है। नगर के चमत्कार और वैभव को देख कर उनकी अवस्था उस बालक की भाँति हो गई है, जो स्मरणातीत काल से तिमिराच्छन्न स्थान में रहने के पश्चात् अकस्मात् प्रकाश-पूर्ण स्थान में आ जाने पर अपने पूर्व स्थान में अंधकार का विचित्र अनुभव करता है।

बाबू राधामोहन जिस मकान में रहते हैं, उस मकान मे तीन खंड हैं। पहिला खंड खाली पड़ा हुआ है। दूसरे खंड में राधामोहन सपरिवार रहते हैं और तीसरे खंड में एक ऐसा कमरा है, जो उनके लिखने-पढ़ने का

रूम है। उसी कमरे मे मेज के पास एक कुर्सी पर रमेश बाबू बैठे हुए कुछ सोच रहे है। यह कमरा ठीक सड़क के ऊपर है। उसमे बैठे हुए सड़क पर जनसमुदाय, साइकिल, मोटर, इक्को और गाड़ियो का आना-जाना भली-भाँति दिखाई देता है।

सड़क पर निकलने वालो को देख कर रमेश मन-ही-मन कहने लगे—सभी अपने-अपने कार्य से, कोई कहीं कोई कहीं, आ-जा रहे हैं। कोई भी मनुष्य मेरी भाँति निरुद्योग बैठा हुआ अकर्मण्य नहीं दिखाई देता। वास्तव में नागरिक जीवन कितना सुन्दर होता है? यहाँ किसी का समय व्यर्थ नहीं जाता। प्रत्येक कार्य के लिए समय निश्चित है। जिसके समय का इस प्रकार सदुपयोग होता है—जो इस प्रकार नागरिक जीवन बिता सकता है, उसका जीवन कितना सुन्दर है? मै अबतक कहाँ छिपा था? जबतक मै स्कूल और कालेज में शिक्षा प्राप्त करता रहा, छः-छः मास हो जाने पर नगर छोड़ कर घर जाने की याद कभी न आती थी। किन्तु जिस दिन से कालेज छोड़ा था, उस दिन से मेरा नागरिक प्रेम न जाने कहाँ खो गया था।

अकस्मात् राधामोहन के बोलने का स्वर सुनाई पड़ा। रमेश चौंक कर मेज पर रखे हुए 'माडर्न रिव्यू' को उठा कर उसके पृष्ट उलटने लगे। राधामोहन ने ऊपर आ कर रमेश के हाथ में 'माडर्न रिव्यू' देखकर पूछा—कहिये, क्या हो रहा है?

रमेश ने उत्तर दिया—देख रहा हूँ कि 'माडर्न रिव्यू' पर श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बहुत बड़ा अधिकार कर लिया है।

राधामोहन—बहुत बड़ा अधिकार कर लिया है, इसका क्या अर्थ? मैं नहीं समझा।

रमेश—इसका अर्थ यह है कि इसमें जितने लेख हैं, यदि वे दो भागों में विभाजित किये जाँय, तो एक ओर डा० रवीन्द्रनाथ के लेख होंगे और दूसरी ओर शेष सब लेख।

राधामोहन—आपके कहने का अर्थ यह है कि रवीन्द्र बाबू के लेख इतने अधिक पृष्ठों में है, क्यों?

रमेश—हाँ।

राधामोहन—नहीं, इतनी समता तो सम्भवतः न निकलेगी।

रमेश—इतनी समता का अर्थ यह है कि रवीन्द्र बाबू के कई लेख इतने अधिक पृष्ठों में हैं, कि उसके लिए यह बात कहना अनुचित न होगा।

राधामोहन—हाँ, रवीन्द्र बाबू के 'माडर्न रिव्यू' मे बड़े-बड़े लेख छपते हैं।

रमेश—होना और बात है, और साहित्यिक पत्र केवल एक व्यक्ति के लिए होना और बात है।

राधामोहन—रवीन्द्र बाबू संसार के एक महाकवि और प्रतिभासम्पन्न लेखक है। उनपर शिक्षित समुदाय की श्रद्धा है। इसी लिए आपको ऐसा देखने को मिल रहा है।

रमेश—मैं स्वयं उनकी प्रतिभा को मानता हूँ, किन्तु मेरे कहने का सारांश यह है कि एक साहित्यिक पत्र में......

राधामोहन ने बात काट कर कहा—हम-आप तो उसके लिए अपनी समझ के अनुसार केवल सोच करते है और उसकी समालोचना कर सकते है; किन्तु उसके लिए 'माडर्न रिव्यू' के सम्पादक को ही अधिकार है—वह जैसा चाहें कर सकते है?

मेज के पास बराबर दो कुर्सियो पर रमेश और राधामोहन बैठे हुए हैं। 'माडर्न रिव्यू' के सम्बन्ध में बात समाप्त हो जाने पर रमेश थोड़ी देर तक चुप बैठे रहे। उनको शान्त देख कर राधामोहन ने कहा—आपने अपने भावी जीवन के लिए क्या निर्णय किया?

अनेक क्षण पर्यन्त सोचने के पश्चात् रमेश ने उत्तर दिया—मेरे जीवन का साहित्य से जो सम्बन्ध है, उसे आप जानते ही हैं। मेरे जीवन का और दूसरा उद्देश्य क्या हो सकता है? हाँ, जीवन-निर्वाह का प्रश्न दूसरा है।

अभी तक मैंने इसका कुछ भी निर्णय नहीं किया। जहाँ तक मैं समझता हूँ, इसका निर्णय मै कर भी नहीं सकता।

राधामोहन ने पूछा—निर्णय क्यों नहीं कर सकते?

रमेश—बात यह है कि विद्यार्थी-जीवन से ही मैं स्वतंत्रता-प्रिय हूं। मुझे दासता के बन्धन में पड़ना होगा, कभी मैंने सपने में भी यह नहीं सोचा था। किन्तु कालेज छोड़ने के कुछ दिनों के पश्चात् मै अपने भाई से कोरे हाथों पृथक हुआ। घर की सम्पत्ति इस समय मेरे किसी काम की नहीं रही। इसी लिए मुझे इस समय इस प्रश्न मे उलझना पड़ा है। घर की सम्पत्ति जब तक मेरे हाथ में नहीं आती, तब तक मुझे इस प्रश्न की चिन्ता है किन्तु पता नहीं, कब तक मुझे इसमें चिन्तित रहना पड़ेगा। इस लिए मुझे अपनी आर्थिक स्थिति को देखकर, अवस्थानुसार, व्यवस्था करनी पड़ेगी।

राधामोहन—स्वतन्त्र व्यवसाय की कोई सुविधा नहीं हो सकती?

रमेश ने कहा—स्वतन्त्र व्यवसाय बिना पूँजी के असम्भव है। उसके साथ ही एक बात यह भी है कि मुझे व्यवसाय का अनुभव नहीं। व्यवसाय करना भी मेरे लिये जरा कठिन बात है।

राधामोहन—अच्छा, जब आप व्यवसायात्मक अनुभव नहीं रखते, तो यदि घर की सम्पत्ति कभी आपके हाथ में आई भी, तो आप क्या कर सकेंगे?

रमेश—उस समय ऐसा उद्योग सोचेंगे, जिसका अपनी रुचि से विशेष सम्बन्ध होगा।

राधामोहन—इस समय आपका विचार नौकरी करने का है?

रमेश—अभी तो यही विचार है। फिर जब जैसा समय आयेगा, तब तैसा देखा जायगा।

राधामोहन—जितने राष्ट्रीय संस्थाओं के कार्यालय हैं, यद्यपि उनमें सरकारी विभागों में कुछ अधिक स्वाधीनता है, तथापि बन्धन तो होता ही है।

रमेश—यह तो संसार का नियम है। जब जैसी अवस्था आती है, तब तैसी व्यवस्था करनी पड़ती है।

राधामोहन—सरकारी नौकरी का तो प्रश्न उठना ही व्यर्थ हैं। उन बातों में न कुछ रुचि है और न उनसे अपना कुछ सम्बन्ध है।

रमेश—यह तो मानी हुई बात है।

राधामोहन—यहाँ से जो दैनिक पत्र 'लोकमत' प्रकाशित होता है, मैं आज उसके व्यवस्थापक से मिला था। आपके सम्बन्ध में बातें की थीं। उनसे मिल कर मैंने आपके लिए कुछ निश्चय कर लिया है। आप उसी आफिस में, जब से चाहिए, काम कीजिये।

रमेश—'लोकमत' आफिस में मुझे क्या करना होगा?

राधामोहन—'लोकमत' के लिए आपको अंगरेजी-पेपरों से अनुवाद करना होगा।

रमेश—इसके अतिरिक्त आपने और क्या निश्चय किया है?

राधामोहन—मैंने सब कुछ निश्चय कर लिया है। मेरा तो अनुभव है कि कर्मवीर को निष्काम कर्म करना चाहिए। उसे तो केवल क्षेत्र में पैर रखने का अवसर खोजना चाहिये, अवसर मिलने पर करनेवाले न जाने क्या-से-क्या करके दिखा देते हैं।

राधामोहन की बातों को सुनकर, रमेश कुछ समय तक सोचते रहे। लोकमत-आफिस में कार्य के निश्चय हो जाने से रमेश के हृदय को सान्त्वना मिली। उनको चुप देखकर राधामोहन भी कुछ समय तक चुपचाप बैठे रहे। अंत में रमेश ने कहा—अच्छा, तो सब निश्चय है न?

राधामोहन—हाँ।

रमेश—अभी मैं घर जाऊँगा और वहाँ से तीन-चार दिनों में लौट कर फिर आऊँगा।

राधामोहन—घर क्यों जाइएगा? क्या श्रीमती जी से आज्ञा लेने?

रमेश—नहीं, आज्ञा लेने नही, घर पर तो वह है भी नहीं।

राधामोहन—तो फिर घर ही जायँगे, या रामनगर?

रमेश—रामनगर नहीं, घर जाऊँगा।

राधामोहन—जाना ही है, तो फिर रामनगर जाइये।

रमेश—रामनगर गये हुए अभी कुछ ही दिन बीते हैं, घर जा कर पुस्तकें और वस्त्रादि ले आना है।

राधामोहन—रामनगर गये थे, पर मुझे कुछ बताया नहीं। कुशल तो है? प्रतापनारायण प्रसन्न है?

रमेश—सब प्रसन्न हैं।

राधामोहन रमेश से इस प्रकार बातें कर रहे थे। तब-तक उनकी माँ ने पुकारा—बेटा, आज खाओगे नहीं, सन्ध्या होने चली है। न जाने कितनी बार सन्देशा भेज चुकी।

राधामोहन ने कहा—यहाँ तो तुम्हारा सन्देशा कोई नहीं लाया। अच्छा, चलो, आते है।

रमेश और राधामोहन भोजन करने चले गए।

१६

लोकमत-आफिस के कार्य करते हुए रमेश को दो मास से अधिक हो चुके हैं। वह प्रतिदिन आफिस जाते हैं और निश्चित समय पर वहाँ से लौट आते हैं। उनका समय अब बड़ी सुंदरता के साथ व्यतीत होता है। वह सन्धाकाल प्रायः नित्य बाबू राधामोहन के साथ फूलबाग घूमने जाते हैं। अपने समय का सदुपयोग देखकर उनके हृदय को अत्यन्त प्रसन्नता होती है।

रमेश कानपुर में रहकर और अपने समय को सार्थक बिताकर यद्यपि प्रसन्न रहा करते हैं, और राधामोहन के साथ मनोरंजन तथा मनोविनोद में भी पर्य्याप्त भाग लेते हैं; किन्तु इसके यह अर्थ नहीं होता, कि वह कानपुर आकर रामा को भूल बैठे हैं। उठते-बैठते, खाते-पीते, चाहे उनको रामा की

याद कभी न आती हो, किन्तु प्रायः उठकर अन्यान्य बातो से निवृत्त होकर, आफिस जाने के पूर्व जब भोजन बनाने बैठते हैं तब, और भोजन अपने हाथ से बना कर खाने के पश्चात् आफिस जाने लगते है तब, ऐसा कोई दिन नहीं जाता, जिस दिन रामा की मधुर स्मृति न हो आती हो। इसके अतिरिक्त पढ़ते-लिखते समय और विशेष कर उपन्यास तथा गल्पें पढ़ते समय तो अवश्य ही रामा की याद आती है।

रामा उपन्यास लेकर बैठे-बैठे पढ़ती थी, रमेश लेट कर उसे सुनते थे। कानपुर आने पर रमेश को यह स्मृति रामा की याद विशेष कर दिलाया करती है। कभी-कभी जब कोई उत्तम उपन्यास मिल जाता है, और उसे पढ़कर रमेश जब अधिक प्रसन्न होते हैं, तो मन-ही-मन कह उठते है—यह उपन्यास तो रामा के पढ़ने योग्य था।

इस प्रकार की एक दो नहीं, अनेक पातें है, जिनसे रमेश को रामा की याद आया करती है।

प्रातःकाल के साढ़े आठ बजे होंगे। रमेश भोजन बना रहे हैं। अकस्मात् बाबू राधामोहन ने रमेश के घर में प्रमेश किया। वह रमेश के पास आ कर खड़े हो गए और देखकर मुस्कुराने लगे। रमेश के निहारते ही राधामोहन ने हँस कर कहा—रमेश बाबू को बन्दे०।

धुएँ के कारण रमेश की नाक में दम हो रहा था। लाल-लाल नेत्रों से रमेश ने राधामोहन की ओर देखकर कहा—वन्दे! आइये, बैठिये।

राधामोहन ने कहा—भोजन बनाने का आप व्यर्थ कष्ट उठाते है।

रमेश ने उत्तर दिया—आपके यहाँ भोजन न खा कर अपने हाथों से स्वयं भोजन बनाता हूँ और कष्ट उठाता हूँ, इसका आशय कुछ और है।

राधामोहन—क्या मै भी उसे जान सकता हूं?

रमेश—स्वयं सोचकर!

राधामोहन ने हँस कर कहा—मैं तो यह सोचता हूं कि यदि आप अपने

हाथों से भोजन बनाना बन्द कर देंगे, तो श्रीमती के बुलाने के लिए कदाचित् कोई दूसरा कारण न रख सकेंगे ।

रमेश ने कहा—यह तो आपका केवल विनोद है। किन्तु सच्ची बात तो यह है कि स्त्री-जाति के कामों का मूल्य पुरुष-जाति तबतक नहीं समझती, जबतक वह स्त्री के कामों को उसके न होने पर अपने हाथो से स्वयं करके कष्ट नहीं उठाता ।

राधामोहन—प्रत्येक काम का कुछ-न-कुछ मूल्य होता है, और जब किसी कार्य का कर्त्ता नहीं रहता, तो उस कार्य की हानि होती है। ऐसी अवस्था में जिससे उस काम का सम्बन्ध होता है, उसे कष्ट होता ही है ।

रमेश—यह ठीक है। पर मैं जो-कुछ सोचता हूँ, उस ओर ध्यान दीजिये । संसार मे श्रमजीवी धनी-समाज के सम्मुख कितनी पतित अवस्था में है; किन्तु जिस दिन संसार में श्रमजीवी न होंगे, उस दिन धनी-समाज क्या अपना अस्तित्व संसार में रख सकेगा? वास्तव में श्रमजीवी धनी-समाज के रक्षक और पोषक हैं। किन्तु क्या धनी-समाज श्रमजीवी जनता की कुछ भी कृतज्ञ है? यही अवस्था आपके देश में पुरुष-जाति के सम्मुख स्त्री-जाति की है ।

राधामोहन ने फिर भी हँसकर कहा—मैं नहीं जानता था कि इस प्रकार भोजन बनाकर आप स्त्री-जाति के महत्त्व का अनुभव करने बैठे हैं। नहीं तो कभी नहीं कहता। मुझसे भूल हुई, मैं क्षमा चाहता हूँ। रमेश ने मुस्करा कर उत्तर दिया—आपकी भूल को क्षमा कर सकता हूँ, किन्तु इस प्रकार नहीं ।

राधामोहन ने पूछा—तो फिर किस प्रकार?

रमेश ने कहा—'लोकमत' मे आज एक लेख प्रकाशित करूँगा, उसका हेडिंग लिखूँगा—सम्पादक की भूल। उसे लिखकर उसके अंत मे आपकी भूल की क्षमा हो सकती है ।

राधामोहन ने शीघ्रता के साथ उत्तर दिया—तो फिर आप यह भी

जान लें कि पत्र केवल आप के ही हाथ में नहीं है। दूसरे के हाथ में भी पत्र है।

रमेश ने हँसते हुए कहा—साथ-ही-साथ आप को यह भी स्मरण रखना चाहिये कि आप जितने दिनों में एक बार लिख सकेंगे, मैं अनेक बार लिख सकता हूँ।

राधामोहन—उसके साथ ही आप को यह भी भूलना न चाहिये कि उस एक बार में ही इतना अधिक लिखा जा सकता है, जितना आप अनेक बार में भी न लिख सकेंगे।

राधामोहन की बात सुनकर रमेश हँस पड़े। राधामोहन भी हँसने लगे। इसके पश्चात् राधामोहन अपने हाथ में लिये हुए बँगला भाषा का मासिकपत्र 'भारतवर्ष' पढ़ने लगे। भोजन प्रस्तुत हो जाने पर रमेश ने भोजन करना आरम्भ किया। भोजन करके रमेश अपने वस्त्र पहनते और घड़ी देखते हुए राधामोहन से कहने लगे—चलिये, आज मैं आफिस देर को पहुँचूँगा।

राधामोहन और रमेश साथ-साथ घर से बाहर निकले। दोनो अपने-अपने आफिस चले गये।

राधामोहन से विलग होकर रमेश लोकमत-आफिस पहुँचे और नित्य की भाँति अपना काम करने लगे। सन्ध्या के साढ़े चार बजते रमेश नित्य आफिस छोड़कर घर चले जाया करते थे। किन्तु आज उस समय के बाद आफिस में बैठे है। इसका कारण यह नहीं है कि वह आज कुछ देर करके आये थे और इसलिए अभी तक बैठे हुए हैं; किन्तु उनके अभी तक बैठे रहने का कारण यह है कि आज कई दिनों से उनके हृदय में रामा के प्रति एक विशेष व्याकुलता-सी हो रही है। आफिस में नित्य साढ़े पाँच बजे के लगभग डाक आती है, आज रमेश का हृदय उनको विश्वास दिला रहा है कि रामा का पत्र अवश्य आवेगा। इसी कारण वह पोस्टमैन की प्रतीक्षा में बैठे हुए लोकमत की पिछली फ़ाइल देख रहे हैं। साढ़े चार बज जाने के

पश्चात् वह बार-बार घड़ी की ओर देखते हैं किन्तु पोस्टमैन के आने का जो समय है, उसे दूर जान कर कभी कुछ और कभी कुछ पढ़ने लगते हैं।

बार-बार देखने पर भी पोस्टमैन के आने का समय नहीं हुआ। बड़ी देर तक पढ़ते रहे। तदनन्तर मन-ही-मन कहने लगे—देखें, कबतक पोस्टमैन नहीं आता। इस बार बड़ी देर के पश्चात् उन्होंने घड़ी की ओर देखा, तो मालूम हुआ कि पौने छः बजने पर आ रहे हैं। किन्तु पोस्टमैन का अभी तक कहीं पता नहीं। अधिक देर हो जाने पर वह मन-ही-मन कहने लगे—आज सम्भवतः आफिस की भी कुछ डाक नहीं है। इसीलिए पोस्टमैन नहीं आया। अब बैठना व्यर्थ है। उन्होंने उठ कर जूते पहने। चलने को ही थे कि तबतक पोस्टमैन ने उस कमरे में प्रवेश किया, जिसमें वह खड़े हुए थे। पोस्टमैन को देख कर वह उत्सुक नेत्रों से उसकी ओर निहारने लगे। पोस्टमैन ने आफिस की डाक निकाल कर मेज पर रख दी और एक लिफाफा रमेश बाबू के नाम का उनके हाथों में रख दिया। लिफाफे पर लिखे हुए अक्षरों की लिखावट को देख कर भलीभाँति प्रगट हो गया कि पत्र रामा का है।

पत्र देकर पोस्टमैन चला गया। रमेश कुर्सी पर बैठ गये और लिफाफा खोल कर पढ़ने लगे। पत्र में लिखी हुई पंक्तियाँ बात-की-बात में पढ़ कर वह पत्र को उलट-पलट- कर इधर-से-उधर बार-बार देखने लगे। पत्र के अंत में प्रतापनारायण का नाम है किन्तु यह अक्षर प्रताप के किसी प्रकार भी नहीं हो सकते। उनको भ्रम होने लगा।

रमेश सोचने लगे—यह तो रामा का लिखा हुआ पत्र है। जान पड़ता है, निमंत्रण के लिए जो पत्र भेजे गये हैं, उन्हें रामा ने ही अपने हाथ से लिखा है। लिफाफे पर पते की लिखावट को देख कर विश्वास हो गया था कि यह पत्र रामा का ही है। किन्तु यह न जाना था कि रामा ने अपनी ओर से ही तारा के विवाह का निमंत्रण-पत्र लिख भेजा है।

पत्र को हाथ में लिये रमेश घर को चले। मार्ग में तारा के विवाह की

बात सोचने लगे। पत्र में यह तो लिखा नहीं कि कहाँ विवाह होना ठीक हुआ है। कहाँ से बारात आवेगी। यह तो अवश्य ही लिखना चाहिये था। किन्तु जहाँ तक मै जानता हूँ, कदाचित् इसलिए यह बात नहीं लिखी गई कि मैं जब गया था, जो मुझ से धीरजपुर की बात कही गई थी। इससे पता चलता है कि तारा का विवाह धीरजपुर में होना ठीक हुआ।

धीरे-धीरे रमेश घर आ पहुँचे। घर पहुँच कर कोट उतार कर टाँग दिया, कुछ मीठा निकाल कर खाया और पानी पीकर, कमीज पहने हुए, आधी धोती देह पर डाले, राधामोहन के घर की ओर चल पड़े।

१७

तारा के विवाह के अब अधिक दिन नहीं रहे। उसके विवाह का समय जितना ही निकट आता जाता है, रमेश के हृदय में रामनगर जाने के लिए उतना ही उत्साह और हर्ष बढ़ता जाता है।

कानपुर में रहते हुए बाबू राधामोहन के सहवास से रमेश का जीवन एक नवीन प्रकार से व्यतीत हो रहा है। फिर भी जब से तारा के विवाह का निमंत्रण मिला है, रामनगर जाने और वहाँ पर रामा तथा तारा से मिलने के लिए उनके अन्तःकरण में उतावली सी होने लगी है। वह मन-ही-मन सोचने लगते हैं—तारा के विवाह में रामनगर पहुँचूँगा। इस शुभ अवसर पर प्रतापनारायण के सभी सम्बन्धी और बन्धु-बान्धव एकत्र होंगे। मैं भी ऐसे समय पर उपस्थित होऊँगा। कितना आनन्द आवेगा! यह पहला अवसर होगा, जब कि प्रतापनारायण के यहाँ मैं ऐसे समय पर जाऊँगा। यद्यपि ऐसे समय सभी के एकत्रित होने पर विशेष आनन्द का अनुभव होगा, किन्तु साथ ही यह भी मानी हुई बात है कि इस बार जो आनन्द और मनोविनोद होगा, वह उस बार के आनन्द और मनोरंजन से भिन्न होगा, जो अतीत

काल में जाने पर हो चुका है। चन्द्रा को काम-काज से छुट्टी न मिलेगी, रामा के दर्शन होना ही कठिन है। तारा की तो इस बार बात ही और होगी। उसका आत्म-सम्मान और उसकी आशा-अभिलाषा इस बार एक अप्रकट पथ की ओर प्रत्याशित होगी। मै इस बार जाऊँगा और चन्द्रा आदि के समीप बैठ कर उसके दर्शन करूँगा, तो क्या जानूँगा कि उसके जीवनप्रवाह की गति आज किस ओर है? क्या वह भी मेरे समीप उस बार की भाँति बैठेगी और मुझसे बातें करेगी? जो कुछ हो, वह जितनी सुन्दर है, उसका अन्तःकरण उतना ही निर्मल है। उसका व्यावहारिक जीवन और चारु चरित्र लोकप्रिय एवं मनोमोहक है। इस बार उसके भाग्य का निपटारा होगा। परमात्मा करे, उसका भविष्य जीवन सुखी और आनन्दपूर्ण हो।

प्रत्येक बार रामनगर जाने की बात सोचने पर भी रमेश को यह बात न भूलती कि तारा के हृदय का आकर्षण इस बार दूसरी ओर होगा। मेरा पहुँचना भी उसकी आँखों में कुछ मूल्य रखेगा—रमेश को इस बात पर किसी प्रकार विश्वास न होता।

आज दो-तीन दिनों से स्वास्थ्य कुछ बिगड़ा हुआ होने के कारण रमेश आफिस नहीं गये। दोपहर के लगभग डेढ़ बजा होगा। वह अपने घर पर बाबू राधामोहन के साथ बैठे हुए बातें कर रहे है। अचानक उन्होंने 'लोकमत'-आफिस के चपरासी को आते देखा। उनको सहसा बोध हुआ कि आफिस मे कोई आवश्यक कार्य आ पड़ने के कारण मुझे बुलाने आ रहा है। वह यही अनुमान लगा रहे थे, तबतक चपरासी ने आ कर एक पत्र दिया। चपरासी के पत्र देते समय उन्होंने समझा—लोकमत-आफिस के व्यवस्थापक का पत्र है किन्तु पत्र लेकर उस पर लिखे हुए पते को देखने से ज्ञात हुआ कि वह बाहर से आया हुआ पत्र है। झटपट लिफाफा खोल कर उन्होंने उसे पढ़ना आरम्भ किया। उसमें लिखा था—

रमेश बाबू

प्रणाम

रामनगर से चले आने के पश्चात् आज तक आपका कोई समाचार नहीं मिला। किसी समय मैंने जो प्रणाम भेजा था और उसका आपने जो उत्तर लिखा था, उससे उत्पन्न हुआ क्षोभ मेरे हृदय से आजतक नही मिटा। इसी कारण यह पत्र आपके पास अपने हाथ से स्वयं लिखकर भेजती हूँ और अनुरोध करती हूँ, पधारने की दया करें। आशा है, आप समय पर आकर मुझे अपना कर अपने हार्दिक प्रेम का परिचय देंगे।

विनीत—तारा

पत्र पढ़कर रमेश का हृदय अवसन्न हो उठा। तारा के साहस को देखकर वह मन-ही-मन कुछ सोचने लगे। पत्र पढ़ने के पश्चात् कुछ न बोलने पर राधामोहन ने पूछा—क्यो, कहाँ का पत्र है?

रमेश ने उत्तर दिया—रामनगर से आया है।

राधामोहन—क्या मै यह जान सकता हूँ किसका पत्र है?

रमेश—केवल इतना कि जिस किशोरी सुन्दरी का विवाह है; उसीने अपने विवाह का निमंत्रण-पत्र भेजा है।

राधामोहन—जब उसके सम्बन्ध में अधिक जान नहीं सकते, तब फिर अधिक बातें करना भी व्यर्थ है।

रमेश—अधिक बातें क्या करेंगे?

राधामोहन—यह जानने की ही क्या आवश्यकता है?

रमेश—यह जानकर मै सोचूंगा कि अधिक बातें आप कर सकते है या नहीं।

राधामोहन—क्षमा करें, मै बातें नहीं करना चाहता।

रमेश—क्यों?

राधामोहन—जब मैं अपनी बातें बता दूँगा तो फिर आप सोचेंगे कि मैं बातें कर सकता हूँ या नहीं। फिर मेरी बातों का मूल्य क्या रह जायगा?

यह सुनकर रमेश हँसने लगे। कुछ देर ठहर कर हँसते हुए उन्होंने कहा—मै केवल आपकी परीक्षा ले रहा था कि आप मेरे पत्र के देख सकने के कहाँ तक अधिकारी हैं। मेरे पत्र से तो आप परिचित होना चाहते हैं, किन्तु अपनी बातों का इतना अधिक मूल्य समझते है, जो मुझ पर प्रकट भी नहीं की जा सकतीं।

राधामोहन ने कहा—यदि आप अपने पत्र के सम्बन्ध में केवल एक-आध वाक्य कहकर पत्र के न दिखाने का अधिकार रखते हैं, तो मुझे भी अपनी बातों के अप्रकट रखने का अधिकार है।

रमेश ने कुछ आवेश में कहा—मैत्री की जितनी गम्भीरता तक आप पहुँचते है, मै उससे बहुत दूर आगे के लिए आपको संकेत कर रहा हूँ। मैं ऐसी अवस्था में लज्जित हो जाता, जब मै परोक्ष में रहने की चेष्टा करता और आपको प्रत्यक्ष देखता।

रमेश की आलोचना को सुनकर राधामोहन ने उनकी ओर देखा और मुस्कुरा दिया। थोड़ी देर में राधामोहन ने उनके हाथ से बलात्कार बह पत्र ले लिया और कहने लगे—आपने मेरे लिए मार्ग साफ कर दिया।

रमेश पत्र देकर मुस्कुराने लगे। बात-की-बात में पत्र पढ़कर राधामोहन ने कहा—भारतीय स्त्री-समाज का एक अंग होने के कारण पत्र-लेखिका में नवीनता दिखाई दे रही है।

रमेश ने ध्यानपूर्वक राधामोहन की बात सुनी। बात समाप्त हो जाने पर वह राधामोहन की ओर निहारते हुए आगे और कुछ सुनने की प्रत्याशा करने लगे। किन्तु राधामोहन के आगे कुछ न कहने पर उन्होंने उत्तर दिया—अपने विवाह का अपने आप निमन्त्रण-पत्र भेजा है, यही न ?

राधामोहन—मेरे कहने का आशय कुछ और है। मैं कहता हूँ कि पत्र की पंक्तियाँ और पत्र के भाव—लेखिका के स्वतंत्र-हृदय होने का परिचय दे रहे है।

राधामोहन की बात सुनकर रमेश के नेत्रों में तारा की बातें घूमने लगीं। उनकी आँखों के सम्मुख तारा का मोहन चित्र स्पष्ट दिखाई देने लगा। उनको चुप देखकर राधामोहन ने फिर कहा—देश में स्त्री-जाति की स्वाधीनता का स्वर उठा हुआ है, किन्तु स्त्री-समाज की स्वाधीनता के सम्बन्ध में मैं जो कुछ सोचता हूँ, वह कुछ और बात है।

रमेश ने कहा—आप क्या उसके विरुद्ध आन्दोलन करेंगे?

राधामोहन—मेरे कहने का सारांश यह है कि मैं स्त्री-जाति के पतितोद्धार का पक्षपाती हूँ, किन्तु जिस स्वतंत्र वायु की ओर उन्मत्त होकर संसार चल पड़ा है, उसे हम कदापि नहीं चाहते।

रमेश और राधामोहन के बीच, इसी सिलसिले में, स्त्री-जाति की स्वाधीनता पर बड़ी देर तक तर्क-वितर्क होता रहा। इसके पश्चात् रमेश उठकर अपने घर चले गये, और तारा का पत्र बार-बार पढ़ने तथा उस पर विचार करने लगे।

१८

राधामोहन और रमेश में प्रगाढ़ मैत्री है। यह मित्र-भाव, विद्यार्थी-जीवन से प्रारम्भ हुआ था। जब तक कालेज में पढ़ते रहे, दोनों मित्र एक ही स्थान पर रहते, एक ही स्थान पर सोते और खाते-पीते। उस अवस्था में ही दोनों मित्रों में ऐसा बन्धुत्व-भाव उत्पन्न हो गया था, जो कभी विशृङ्खलित नहीं हो सकता था। कालेज छोड़ने के पश्चात् साहित्य-क्षेत्र में आ जाने के कारण दोनों मित्रों में परस्पर और भी अधिक प्रीति उत्पन्न हो गई है। जितने समय तक कानपुर में राधामोहन को रमेश से विलग होकर रहना पड़ा है; उतने समय तक राधामोहन के पत्र रमेश के यहाँ और रमेश के पत्र राधामोहन के यहाँ लगातार आते-जाते रहे हैं। यहाँ तक कि घर पर रहकर भी राधामोहन के कारण रमेश प्रायः कानपुर आते हैं।

इस बार रमेश जब से कानपुर आये है, राधामोहन के साथ उठने-बैठने से परस्पर-प्रीति और सहवास की मात्रा यहाँ तक बढ़ गयी है कि अब जिस समय रमेश राधामोहन को नहीं देखते, तो वे विकल हो जाते है और जिस समय राधामोहन रमेश को नहीं देखते, अधीर से हो उठते हैं। दोनो की प्रकृति में इतनी समानता है कि उनके हृदयों में कभी परस्पर एक दूसरे के प्रतिकूल कोई भावना नहीं उठती। दोनों के स्वाभाविक गति, जीवनोद्देश और विचार-प्रणाली में कोई भी अन्तर न होने के कारण प्रत्येक एक दूसरे के नेत्रों के प्रकाश है।

रामनगर जाने के लिये क्या प्रबन्ध करना चाहिए—यह प्रश्न आजकल रमेश के सामने है। इसलिए कि तारा के विवाह का समय अब अधिक दूर नहीं है।

रमेश घर पर बैठे हुए है। रामनगर जाने के लिये अपने आफिस में छुट्टी ले चुके हैं। बैठे-बैठे उनके हृदय में ये भावनायें उठने लगीं —रामनगर जाकर जब तारा से मिलूँगा, तो उस समय उसकी उस स्वाधीनता प्रियता और आत्म-गुरुता का प्रत्यक्ष अनुभव करूँगा, जिसके बल पर उसने निमंत्रण-पत्र भेजने का साहस किया है। जिस तारा ने अपना प्रेम-परिचय देकर मुझे अपनी ओर आकर्षित किया है, उस तारा को आँखो से देखूँगा।

रमेश बैठे हुए थे, एक मनुष्य ने आकर एक पत्र दिया। पत्र में लिखा था—

प्रिय रमेश बाबू

ज्वर में पड़ा हुआ हूँ। शरीर में पीड़ा अधिक है। माँ घबरा रही है। पत्र पाकर इस मनुष्य के साथ ही चले आवें।

—मोहन

राधामोहन का पत्र पढ़कर रमेश उठे और उसी मनुष्य के साथ उनके घर पहुँचे। राधामोहन एक चारपाई पर लेटे हुए थे। सिरहाने उनकी माँ बैठी हुई थीं। रमेश ने राधामोहन से पूछा—

कहो, राधामोहन, क्या हाल है?

रमेश को देखकर राधामोहन की माँ ने कहा—आओ बेटा, देखो; मोहन को ज्वर आ गया है।

रमेश ने पास जाकर राधामोहन का हाथ पकड़ कर देखा, ज्वर चढ़ा हुआ था। आँखें लाल-लाल हो गई थीं। रमेश ने कहा—ज्वर है, घबराने की बात नहीं है। अच्छा हो जायगा।

राधामोहन ने कहा—शरीर में पीड़ा बहुत होती है।

रमेश—कहाँ पर बहुत पीड़ा हो रही है?

राधामोहन—यों तो समस्त शरीर मे पीड़ा है, किन्तु पैरों में और मस्तक में पीड़ा अधिक हो रही है।

रमेश—यह पीड़ा ज्वर के कारण है। ज्वर कम होने पर पीड़ा शान्त हो जायगी।

रमेश राधामोहन की ओर देख रहे थे। राधामोहन की माँ ने उनके मस्तक पर हाथ रखते हुए कहा—रमेश, किसी वैद्य या डाक्टर को लाकर दिखा देते, तो अच्छा होता।

रमेश—मेरी समझ में आज किसी को बुलाने की आवश्यकता नहीं है। कल तक यदि ज्वर न उतरेगा, तो किसी अच्छे वैद्य को लाकर दिखा देंगे।

बड़ी देर तक रमेश राधामोहन के घर पर बैठे रहे और उनकी माँ से बातें करते रहे। तदुपरान्त अपने घर चले आये।

रात समाप्त करके प्रातः लगभग आठ बजे वह फिर राधामोहन के घर गये। देखा, उनको उसी प्रकार ज्वर चढ़ा हुआ है, जैसा कल चढ़ा था। वह उनकी माँ की सम्मति से एक अच्छे वैद्य को लिवा लाये। वैद्यजी ने आकर देखा और कहा—

ज्वर बहुत तेज है। आज तो दिन नहीं अच्छा है। कल इसी समय हम औषध देंगे।

वैद्यजी की बात को राधामोहन की माँ ने स्वीकार कर लिया। वैद्यजी

चले गये। किसी प्रकार दिन समाप्त हुआ और रात आई। रात को शारीरिक पीड़ा से राधामोहन को बड़ा कष्ट हुआ। प्रातः वैद्यजी ने आकर औषध दिया। आफिस जाने के अतिरिक्त रमेश का सारा समय राधामोहन की बीमारी में लग जाने लगा।

चिकित्सा करते हुए वैद्यजी को दो-तीन दिन हो गये, परन्तु किसी प्रकार कुछ स्वास्थ्य न मिला। राधामोहन की बीमारी देख उनकी माँ घबराने लगी। माँ की घबराहट देखकर रमेश ने कई-एक वैद्यो और डाक्टरों को ला ला कर दिखाया। बीमारी बढ़ते देखकर वैद्यजी की चिकित्सा बंद करके डाक्टरी दवा शुरू हुई। किन्तु अनेक प्रयत्न करने पर भी राधामोहन की बीमारी कुछ कम न हुई। बीमारी की यह अवस्था देख कर उनकी माँ का जी अस्थिर होने लगा।

कानपुर में राधामोहन के एक दो नहीं, अनेक मित्र हैं। जिस दिन से वह बीमार पड़े हैं, कितने ही मित्र नित्य उनको देखने आते हैं। कई ऐसे भी हैं, जो उनसे बड़ी प्रीति रखते हैं। बीमारी के समय वे सब अधिक समय राधामोहन के घर पर रहकर औषध आदि का प्रबन्ध करते हैं। फिर भी राधामोहन का भरोसा, जितना रमेश पर है, उतना दूसरे पर नहीं। रमेश भी अपने इस उत्तरदायित्व को भलीभाँति समझते हैं।

तारा के विवाह का समय आ गया। किन्तु राधामोहन की बीमारी किसी प्रकार कम न हुई। रमेश यह देख कर बार-बार सोचने लगे, किन्तु कुछ निर्णय न कर सके। उनको जिस समय तारा का स्मरण होता, रामनगर जाने के लिए विह्वल होने लगते; और जिस समय राधामोहन की बीमारी देखते, उस समय कर्त्तव्य के आगे तारा के विवाह में जाने की बात भूल जाते।

बहुत कुछ परिश्रम करने पर भी राधामोहन की बीमारी में किसी प्रकार का लाभ होता हुआ न देख पड़ा। यह अवस्था देख कर उनकी माँ बहुत अधीर होने लगीं। बीमारी से वह भी बहुत शिथिल होते गये।

ऐसे समय पर उनको और उनकी माँ को धीरज देने वाला रमेश के अतिरिक्त कोई नहीं था।

रमेश सोचने लगे—रामनगर जाना आवश्यक है। तारा के विवाह में न पहुँचने से प्रतापनारायण क्या कहेंगे? तारा से मिलने का यह अंतिम समय है। इस बार न मिलने से पता नहीं, फिर कब उसके दर्शन होंगे। इधर डाक्टरों की बातों से पता चलता है, कि राधामोहन की बीमरी असाध्य होती जाती है। ऐसे समय पर किसी प्रकार साहस नहीं होता, कि राधामोहन को छोड़ कर रामनगर चला जाऊँ। ऐसी बीमारी के समय छोड़ कर रामनगर चले जाने से वह अपने मन में क्या कहेंगे?

अंत में रमेश ने निश्चय कर लिया, वह रामनगर न जावेंगे। रामनगर जाने की आशा छोड़ कर वह राधामोहन की चिकित्सा का आवश्यक प्रबन्ध करने लगे।

एक दिन रमेश दोपहर को बैठे हुए थे, अकस्मात् तारा की याद आ गई। उनके हृदय में उलझनें उठने लगीं। सोचने लगे—लोक-लाज का त्याग कर तारा ने अपने विवाह का निमंत्रण दिया था। न जाने उसके हृदय की क्या अवस्था होगी। मैं रामनगर न जाऊँगा और अपने कर्त्तव्य का पालन करूँगा, किन्तु जिसने लोक-रीति के बन्धनों को तोड़कर—अपना समझ कर—बुलाया और अपने हृदय के निर्मल प्रेम का परिचय दिया, वह न जाने से क्या सोचेगी? मैं जिस कर्त्तव्य के बन्धन में पड़ कर न जाऊँगा, उस बन्धन को तारा बेचारी क्या समझेगी? वह तो समझेगी कि उन्होंने मेरी उपेक्षा की—मेरे बुलाने का उपहास किया।

रमेश की अवस्था असमंजस-पूर्ण हो गई। उभय पक्षों में बहुत कुछ सोच-समझ कर उन्होंने राधामोहन की बीमारी में रहने और उनका साथ देना ही आवश्यक समझा। इसी निर्णय पर वह तारा के विवाह में नहीं पहुँच सके।

१९

तारा को धीरजपुर आये तीन मास से अधिक हो रहे हैं। विवाह के दिन से लेकर आज तक किसी दिन उसको रमेश की अनुपस्थिति न भूली। अनेक प्रकार के आनन्द के समय भी उनकी याद आ जाने पर उसको अपना आत्म-अपमान बोध होने लगता। रात दिन वह सोचा करती—रमेश बाबू के न आने का क्या कारण हो सकता है? मेरे पत्र न भेजने पर भी तो उनको आना चाहिये था, फिर भी मैंने पत्र भेज कर अपनी आत्म-मर्यादा क्यो मिट्टी मे मिला दी? मुझे पत्र न भेजना चाहिये था। मुझसे भूल हुई। क्या वह इसी लिए मेरे विवाह में नहीं आये? क्या मेरा पत्र मेरे हृदय को निर्बलता और पतित अवस्था का परिचायक हुआ? यदि ऐसी ही बात हुई तो मुझसे बड़ा अनर्थ हुआ। मैने अपने हाथों अपना मूल्य कम किया।

अनेक प्रकार की बातें सोच कर तारा दु:ख और आत्म-ग्लानि में डूबने लगती। उसको बहुत-कुछ सोचने पर भी रमेश के न आने का कोई कारण सूझ न पड़ता। उसको स्पष्ट बोध होने लगा कि मेरा पत्र पाने से रमेश ने मुझे पतित और तुच्छ समझा है। इसी लिए वह नहीं आये। उसका हृदय इस अपमान से जब बहुत भारी होने लगता, तब वह फिर मन-ही-मन सोचने लगती—पत्र भेजा था, किन्तु क्या अपराध किया था? पत्र भेजना ही यदि अपराध हो सकता है, तो इसका उत्तरदाता भी मैं नहीं—वही होंगे। मैं कभी पत्र न भेजती, यदि रामनगर में बातें करके उन्होंने मुझ में यह साहस न पैदा कर दिया होता।

रामनगर में रमेश के साथ बातें करने की स्मृति होने पर तारा का हृदय उद्विग्न हो उठता। रमेश का हृदय क्या इतना नीरस और निष्ठुर हो सकता है?—इस पर तारा के हृदय को किसी प्रकार विश्वास न होता। उसका नीरव हृदय एक बार नहीं, सहस्र बार कह उठता—रमेश, तुम नीरस नहीं हो, तुम्हारे हृदय में शील का गम्भीर स्रोत है। तुम्हारे

अन्तःकरण में निष्ठुरता नहीं है, तुम्हारे अन्तरात्मा में प्रेम और सहानुभूति की ऐसी भावनायें छिपी हैं, जिनके मूल्य में यह हृदय तुम्हारा हो चुका है।

तारा के निस्तब्ध स्वर, चंचल नेत्र और उद्विग्न हृदय से श्वास-प्रश्वास के साथ जो भाव निकलते, उनमें रमेश की ओर उसके हृदय का एक विचित्र आकर्षण होता ।

ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, तारा के हृदस में रमेश की स्मृति उत्तरोत्तर तीव्र होने लगी। किसी भी परिचित व्यक्तिके कानपुर जाने पर उसका एक ही काम—और वह उनके बुलाने का सन्देश—होता। कोई भी कानपुर से लौट कर आता, वह बिना किसी संकोच के उनके मिलने का प्रश्न करती, परन्तु किसी प्रकार उसे उनका कोई समाचार न मिलता।

एक दिन बैठ कर तारा सोचने लगी—रमेश बाबू का कोई समाचार क्यों नही मिलता। इतने सन्देश भेजे, क्या सन्देश ले जाने वाले सन्देश पहुँचाते नहीं हैं, अथवा सन्देश पाकर भी रमेश किसी प्रकार का उत्तर नहीं देते? इन दो बातो मे कौन बात ठीक हो सकती है, इसका निर्णय कैसे होगा?

तारा कुछ भी निर्णय न कर सकी। उसका हृदय अधीर हो उठा। फिर मन-ही-मन कहने लगी—जिनसे मै सन्देश कहती हूँ, क्या वे सन्देश कहते नहीं? उनके सन्देश न कहने का क्या कारण हो सकता है? सम्भव है, रमेश से भेंट न होती हो और वे मुझ से झूठ-मूठ कह देते हो कि तुम्हारा सन्देश पहुँचा दिया है। किन्तु, यदि ऐसी बात है, तो क्या सभी इस प्रकार झूठ बोलेंगे? इस पर तो विश्वास नहीं होता तो फिर क्या सन्देश पाकर भी रमेश को मेरी याद नही आती? क्या वास्तव में उन्होंने मुझे इतना भुला दिया है?

एक दिन मानसिक चिन्तना से व्यथित होकर तारा चारपाई पर जाकर लेठ रही। बड़ी देर तक लेटे रहने पर भी उसको शान्ति न मिली। उसके हृदय में फिर वही बातें उठने लगीं—रमेश नहीं आते, कब तक न आवेंगे।

क्या मै उन्हें बुला नहीं सकती--उनके बुलाने का क्या मुझे अधिकार नहीं है? मैं बुला सकती हूँ और बुलाऊँगी। देखती हूँ, कब तक नहीं आते। क्या कभी मिलेंगे नही, और मिलने पर क्या कभी बातें न होंगी? मिलेंगे भी और बातें भी होंगी। मुझे विश्वास है, एक दिन वह अवश्य मिलेंगे। गोस्वामी तुलसीदास ने बहुत ठीक लिखा है—

जापर जाकर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलै न कछु सन्देहू॥

यदि महात्मा तुलसीदास का यह अनुभव असत्य नहीं है, और मेरे स्नेह मे कुछ अन्तर नहीं है तो उनसे मेरी भेंट होगी, इसमे सन्देह नहीं।

२०

रामा आजकल कानपुर मे है। जब से वह कानपुर में आई है, रमेश के साथ प्रायः रामनगर और तारा की बातें हुआ करती हैं।

एक दिन रमेश उससे बातें कर रहे थे। वह पास ही बैठी हुई थी। वह जो कुछ कहते थे, ध्यान-पूर्वक सुन कर उसका उत्तर देती थी। अनेक प्रकार की बातो के पश्चात् रामनगर की बातें होने लगीं। रामा ने कहा—तारा के विवाह में तुम्हारे आने की बड़ी आशा थी, पर जब तुम नहीं गये, तो सबका मन छोटा हो गया।

रमेश ने पूछा--सब को बड़ी आशा क्यो थी?

रामा--विवाह से अधिक और कौन-सा अवसर होता है, जिसमें कोई किसी के यहाँ जाता है। ऐसे समय सभी हितू, स्नेही, बन्धु-बान्धव, जितने अपने होते है, निमंत्रण पाकर एक होते है। यह एक अवसर था, जिसमे सभी उपस्थित हुए थे। पर न जाने तुम ने क्या सोचा था!

रमेश—बता दूँ क्या सोचा था?

रामा—बताओ, क्या सोचा था?

रमेश—ऐसे समय पर पहुँचना अवश्य चाहिये, किन्तु मैंने सोचा था कि तुम वहाँ पर हो, इसलिए यदि हम न भी पहुँचेंगे, तो कुछ हानि नहीं।

रामा ने मुस्कुरा कर कहा—यह तो केवल हँसी की बात है। तुमको वहाँ पहुँचना चाहिये था। मालूम होता है, तुम वहाँ जान-बूझ कर नहीं गये।

रमेश—जान-बूझ कर नहीं गये, यह बात नहीं। सुनो हम जा कैसे सकते थे? विवाह का दिन समीप आ गया था। मैं वहाँ जाने के लिए छुट्टी भी ले चुका था। उसी बीच में बाबू राधामोहन बीमार हो गये और ऐसे बीमार हुए कि उन्हें छोड़ कर मैं किसी प्रकार न जा सकता था। तुम्हीं सोचो मै कैसे जाता?

रामा—जा क्यों नहीं सकते थे? किन्तु जब जाना होता, तब न? विवाह जैसे काम-काज भी कभी रुके रहते है?

रमेश—विवाह जैसे काम-काज तो नहीं रुके रहते। पर मेरे कहने का सारांश यह है कि मेरे सम्मुख उस समय दो प्रश्न थे। एक तो तारा के विवाह में रामनगर जाना और दूसरा बाबू राधामोहन की बीमारी में उनके पास रह कर उनका साथ देना। इन दो प्रश्नों में कौन-सा प्रश्न अधिक आवश्यक था, इस पर यदि विचार करो, तो तुम्हारी समझ में सहज ही यह आ सकता है कि मैं कैसे जा सकता था।

रामा ने विरक्त भाव से उत्तर दिया—मै क्या सोचूँ? -

रमेश—मै यह मानता हूँ कि विवाह में जाना आवश्यक था; किन्तु साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि आपद काल में मित्र का साथ देना भी आवश्यक था। अब प्रश्न यह है कि दोनों में अधिक आवश्यक कौन-सा था? इसका निर्णय इस प्रकार हो सकता है कि दोनो सम्बन्ध यदि समान मान लेवें, तो भी मानना पड़ेगा कि आनंद की ओर न झुक कर विपद् की ओर झुकना हमारा कर्त्तव्य था। मुझसे किसी प्रकार यह नहीं हो सकता था कि ऐसे समय पर बाबू राधामोहन को छोड़ कर कहीं जाता।

रमेश की बात सुनकर रामा चुप हो रही। वह भी बड़ी देर तक

चुपचाप बैठे रहे। उसको चुप देखकर उन्होंने फिर पूछा—तारा के विवाह का निमन्त्रण किसने लिखा था?

रामा ने हँस कर कहा—भैया ने लिखकर भेजा था।

रमेश—कभी नहीं।

रामा—तो फिर किसने लिखा था?

रमेश—मुझे जो पत्र मिला था, वह तुम्हारा लिखा हुआ था।

रामा ने कुछ भी उत्तर न दिया। थोड़ी देर के पश्चात् रमेश ने पूछा—तुम्हारी जानकारी में तुम्हारे लिए पत्र के पश्चात् और भी कोई पत्र मेरे यहाँ भेजा गया था?

रामा ने विस्मय के साथ उत्तर दिया—नहीं, मुझे तो और किसी पत्र की जानकारी नहीं है।

रमेश चुप हो रहे। रामा का विस्मय बढ़ने लगा। उनके अधिक कुछ न कहने पर उसने पूछा—और कैसा पत्र?

रमेश—तारा देवी ने कोई पत्र भेजा था?

रामा—मैं नहीं जानती।

रमेश ने गम्भीरता-पूर्वक कहा—भेजा था।

रामा यह सुनकर मुस्कुराने लगी। बड़ी देर तक उनकी ओर ध्यान से देख कर बोली—फिर भी तुम नही गए।

रमेश—खेद है कि मै तारा के विवाह में न पहुँच सका।

रामा कुछ न बोली—उसको अस्तव्यस्त जान कर उन्होंने फिर कहा—कल तारा का एक पत्र आया था। उसमें तारा ने मुझे बुलाया है, किन्तु यहाँ तो घड़ी भर को भी आफिस से छुट्टी नहीं।

रामा सोचने लगी—पत्र आया था, उसने बुलाया है; किन्तु उस पत्र और उसकी बातों की ओर इतनी उपेक्षा! आज जब इतनी बातें हुई हैं

तो यह भी प्रकट हुआ है कि पत्र आया था; नहीं तो इसका पता भी न मिलता।

रामा ने यह तो चाहा कि मैं कुछ न कहूं, किन्तु फिर जी न माना और अकस्मात् उसके मुख से निकल पड़ा—एक दिन जाकर हो आते।

रमेश ने कुछ उलझह के साथ उत्तर दिया—हाँ, हो आऊँगा। छुट्टी मिलने पर जाने का विचार है।

रामा ने पूछा—पत्र का उत्तर भेज दिया है?

रमेश—नहीं, अभी तो नही भेजा।

रामा—अच्छा तो उसका उत्तर अभी लिखिये। उसमे निश्चित रूप से यह लिख दीजिए कि हम अमुक तारीख को आवेंगे।

रामा की बात सुनकर रमेश हँस पड़े और कहने लगे—यह तो निश्चय करना कठिन है। इतनी उतावली की आवश्यकता क्या है?

रामा—उतावली इसमे क्या है? आज नहीं, कल नहीं, जब समय मिले, चार दिनों मे, तब के लिए लिख दीजिये और पत्र का उत्तर दे दीजिये।

रमेश ने रामा की बात मान ली। यह निश्चय कर लिया कि धीरजपुर आज के ठीक दसवें दिन पहुँच जाऊँगा। इसी आशय का एक पत्र भी उन्होंने तारा के नाम लिख कर धीरजपुर भेज दिया।

पत्र भेज देने पर रमेश के हृदय में अनेक उथल-पुथल मचने लगी। धीरजपुर के नवीन दर्शन होंगे। वहाँ का कोई भी व्यक्ति मुझसे परिचित नहीं है। ऐसी अवस्था में जाकर मै किसी से क्या कहूंगा?

अनेक प्रकार की बातें सोच कर रमेश के जी मे उलझनें उठने लगीं। थोड़ी देर में वह फिर सोचने लगे—अब तो लिख ही दिया है। पहुँचूँगा, देखूँगा कैसे पहुँचता हूं, कैसे क्या होता है? तारा के कारण एक बार यह भी सही।

२१

जिस दिन से तारा को रमेश का पत्र मिला है, तारा उत्सुक नेत्रों से उस दिन की ओर निहार रही है। जिस दिन पत्र मिला था, उस दिन से उनके आने में सात-दिन शेष थे, किन्तु आज से केवल चार दिन और रह गये है। उन्होंने अपने पहुँचने का जो दिन लिखा है, वह दिन शनिवार होता है।

तारा घर में बैठी हुई सोच रही है—रमेश ने आने को लिखा है, किन्तु कौन जानता है कि आवेंगे ही। पत्र तो उन्हीं का ही लिखा हुआ है, पर जबतक आ नहीं जाते, तबतक कैसे विश्वास किया जाय। हाँ, यह तो ठीक है कि यदि उन्हें आना न होता तो पत्र लिख कर क्यों भेजते? इससे जान पड़ता है कि वह आवेंगे। किन्तु ऐसा न हो कि मेरे पत्र के उत्तर में केवल संतोष देने के लिए उन्होंने मुझे ऐसा लिख दिया हो। इस बार, जैसा कि उन्होंने लिखा है—यदि आ गये तो फिर खूब बातें होंगी। देखूँगी, वह रमेश बाबू—जो इतने सरल और मधुर प्रकृति के थे—आज इस प्रकार पाषाण-हृदय कसे हो रहे है? एक बार उस मूर्ति को देखूँगी, जिसकी बातों में अमृत टपकता था—उनका हृदय इस प्रकार निष्ठुर और उदासीन कैसे हो रहा है? एक बार उस मूर्ति को देखूँगी, जिसके बुलाने के लिए इतने दिनों से मैंने इस प्रकार अथक परिश्रम किया है। किन्तु, यदि न आ गये तो, और यदि आये तो . .

एक प्रकार तारा का हृदय नाना प्रकार की बातें सोच-सोच कर विविध चिन्तनाओं मे भरने लगा। रमेश के आने के दो दिन और शेष रह गये। एक दिन दोपहर को सोते से जाग कर वह मन-ही-मन कहने लगी—रमेश बाबू आवेंगे, तो मैं किस प्रकार उनका स्वागत करूँगी? वह बड़े आदमी हैं। मेरे पास क्या रखा है, जिससे मैं उनका सत्कार करूँगी। संसार जब किसी का सम्मान करता है, तो केवल धन-सम्पत्ति से, मूल्यवान पदार्थों

से। किन्तु मैं किससे करूँगी? सम्पत्ति देकर—मूल्यवान पदार्थ देकर—मैं भी सम्मान कर सकती हूँ, किन्तु सम्पत्ति और मूल्यवान पदार्थों से किया हुआ सम्मान क्या सब से उत्तम सम्मान हो सकता है? सम्मान करके सम्मानित हृदय को आकर्षित करना ही सम्मान करने का अर्थ होता है। तो फिर मैं किस प्रकार सम्मान करूँगी।

सोचते-सोचते तारा को चन्द्रा की यह बात याद आ गई, जो रमेश के प्रथम बार रामनगर पहुँचने के पूर्व, उसने, राधारानी से उनका सम्मान करने के लिए कही थी।

इस प्रकार अनेक प्रकार की चिन्तना और तर्कना करती, तारा ने रमेश के आने की आशा में शेष दिन व्यतीत किये।

आज शनिवार है। आज ही रमेश के आने का दिन है! प्रातः-काल से ही तारा उठ कर घर के काम सम्हालने लगी। जितना ही दिन अधिक होता जाता, वह सोचती—रमेश के आने का समय निकट आता जाता है। द्वार से घर आने वालों को देख कर तारा उत्सुक होती और सोचती—कोई कहने वाला है कि रमेश बाबू आ गये। किन्तु किसी को कहते न देख कर बेचारी निराश हो जाती।

दोपहर का समय हो गया। रमेश के आने का कोई समाचार नहीं। तारा के हृदय में उद्विग्नता के कारण मानसिक व्यथा-सी होने लगी। घर के सभी व्यक्तियों ने भोजन किया; पर उसको भूख कहाँ?

दोपहर को सभी के भोजन कर चुकने पर तारा घर में चारपाई बिछा कर लेट रही। उसे लेटे अधिक विलम्ब नहीं हुआ था, कि एक बालक ने घर में आकर कहा—कानपुर से कोई आया है? तारा चौंक कर उठ बैठी। उसके हृदय में धड़कन-सी होने लगी। बालक घर में यह सम्वाद कह कर स्वभावतः फिर तुरत बाहर लौट गया।

तारा ने घर से एक लड़की को भेजा और कहा कि देखो, द्वार पर कोई

कहीं से आया है। लड़की ने लौट कर कहा—हाँ, कोई कोट और काली टोपी पहने हुए बैठा है।

तारा को कुछ विश्वास हुआ। थोड़ी ही देर में रमेश के आने का स्पष्ट समाचार भी आ गया। उसकी प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा। कुछ समय और बीता। एक नौकर ने आकर कहा—रमेश बाबू घर आते हैं।

तारा ने गम्भीरता के साथ उत्तर दिया—अच्छा।

रमेश ने घर में प्रवेश किया—बहुत धीरे-धीरे और संकोच के साथ! वह घर में पहुँचे ही थे कि तारा उनको देखते रो पड़ी।

रमेश ने उसे रोते देख कर शान्त किया। तब उसने चारपाई पर बैठने के लिए उनको संकेत किया, वह चारपाई पर बैठ गये। तारा चारपाई के निकट भूमि पर बैठ गई। उनकी ओर निहार कर बोली—मुझे तो भरोसा नहीं था कि आप आवेंगे।

रमेश ने पूछा—क्यों, तुम्हें भरोसा क्यों नहीं था?

तारा ने उत्तर दिया—जिस दिन से आई हूँ, मैं नहीं जानती, कितने सन्देशे भेजे है। पर कभी किसी सन्देशे के उत्तर में मुझे आपकी कोई बात नहीं मिली। न जाने किस सौभाग्य से आपका यह पत्र मिला और उसमें मैंने आपके आने की बात पढ़ी, फिर भी ऐसा जान पड़ता था कि आपने लिख तो दिया है, आवेंगे नहीं।

तारा की बात ध्यानपूर्वक सुन चुकने पर रमेश ने कहा—नहीं, यह बात तो नहीं है कि मैं तुमको आने के लिए लिखता और फिर भी न आता। अच्छा, यह बताओ, प्रसन्न तो हो?

सिर नीचा करके तारा ने उत्तर दिया—क्यों, आपको इससे क्या? आपको यदि मेरा इतना ध्यान होता, तो इतने दिन हुए, कभी सुधि न लेते?

रमेश ने हँस कर कहा—सुधि नहीं ली, तो आज आये कैसे?

तारा ने सिर हिलाते हुए कहा—ठीक है। सुधि लेना इसी को कहते हैं। न जाने कितने सन्देशों और पत्रों के भेजने पर आज दर्शन हुए हैं।

रमेश को उत्तर देने का अवसर न देकर तारा झट उठ कर चली गई और एक कटोरे में मीठा तथा गिलास में पानी लाकर कहने लगी—अच्छा, पानी पी लीजिये ; फिर बातें कीजिये ।

तारा के बार-बार अनुरोध करने पर रमेश ने जलपान किया। तदुपरान्त बैठ कर उससे बातें करने लगे ।

तारा से रमेश की यह दूसरी बार की भेंट है । पहली बार रामनगर में भेंट हुई थी, दूसरी बार यह धीरजपुर में हुई है। रामनगर जब उन्होंने उसको देखा था, उस समय उसकी वेष-भूषा, रहन-सहन, स्वाभाविक गम्भीरता, व्यावहारिक कुशलता और लज्जा-भावना कुछ और थी। पहले वह पूछने पर और बिवश करने पर बात का उत्तर देती थी, अब बिना पूछे और बिना बात किये भी वह अनेकप्रकार की बातें करती है।

रविवार का दिन समाप्त करके सोमवार को प्रातः उठ कर रमेश कानपुर जाने के लिए प्रस्तुत होने लगे। जिस समय तारा को यह ज्ञात हुआ कि वह कानपुर जा रहे है, उस समय वह विकल हो उठी। रमेश जिस समय उससे मिलने के लिए भीतर आये उस समय उसने आग्रह-पूर्वक कहा—आज मैं किसी प्रकार न जाने दूँगी ; इतने दिनों में आये है, केवल एक दिन रह कर कैसे जा सकते हैं ?

रमेश ने हँस कर कहा—मुझे रोको नहीं, मैं केवल रविवार के लिए आया था, आफिस में आज के लिए मैने कोई प्रबन्ध नहीं किया है, इस लिए मुझे जाने दो, मैं फिर कभी आऊँगा।

एक ओर तारा का साहस-पूर्ण आग्रह और दूसरी ओर जाने के लिए रमेश का निष्फल प्रयत्न ! किसी प्रकार जब कोई फल निकलता हुआ न दिखाई पड़ा, तो रमेश ने समझा कि तारा से छूटना कठिन है। उन्होंने उसको समझाते हुए कहा—मुझे जाने दो, मैं, वचन देता हूँ कि जब तुम बुलाओगी, मैं आऊँगा।

तारा ने कुछ मुस्कुरा कर कहा—कौन ? आप आवेंगे और मैं इस

आशय पर जाने दूँगी ? ठीक है। मैं बुला चुकी और आप आ चुके।

रमेश—एक बार मेरे ऊपर विश्वास करो, अविश्वास करने के लिए अभी तक मैंने अपनी समझ में कोई कारण नहीं पैदा किया।

रमेश के इस प्रकार समझाने और प्रतिज्ञा करने पर तारा ने कहा—मैं कैसे विश्वास करूँ, जब आपने अपनी ओर से मेरे पास एक पत्र भी नहीं भेजा ?

रमेश—मैं विश्वास दिलाता हूँ, जब तुम बुलाओगी, मैं आऊँगा।

विदा होते समय तारा का करुण-क्रन्दन सुन कर रमेश का हृदय टुकड़े-टुकड़े होने लगा। पाषाण-हृदय को लेकर वह धीरजपुर से विदा हुए।

२२

धीरजपुर से लौटते समय रमेश को मार्ग में तारा की बातें न भूलीं। वहाँ उनके साथ की हुई बातों की बार-बार स्मृति आने पर उनके अन्तःकरण में अनेक भावनायें उठने लगीं। तारा को यहाँ पर किसी प्रकार कोई कष्ट नहीं, कोई दुःख नही; फिर मेरे बुलाने का क्या कारण हो सकता है ? अच्छा, इसे यदि साधारण बात मान ली जाय, तो फिर उसके रोने का क्या कारण होता है ? उसका शारीरिक स्वास्थ्य और उज्वल वेश-भूषा उसके सुखी होने के स्पष्ट प्रमाण है। फिर वह मुझसे मिलने और बातें करने के लिए अधीर हो रही थी। उसके रोने का क्या अर्थ होता है ?

सोचते-विचारते रमेश कानपुर पहुँचे। यहाँ आकर नित्य समय पर आफिस जाने और शेष समय में मित्रो से मिलने में उनला समय व्यतीत होने लगा। कुछ दिनों तक तारा का कोई भी समाचार न मिला। उनके पास इतना समय कहाँ कि वह सिसी को पत्र लिखने बैठें। आफिस के अतिरिक्त वह मित्रों के साथ घूमने, पुस्तकें और समाचार पत्र पढ़ने में निमग्न रहने लगे।

एक दिन वह आफिस में बैठे हुए थे। पोस्टमैन ने आकर एक पत्र दिया। पत्र खोल कर देखा। उसमें लिखा था—

रमेश बाबू,

आपको गये हुए इतना समय हो गया। परन्तु आजतक आपका कोई समाचार नही मिला। जिस दिन से आप चले गये हैं, किसी घड़ी आप की याद नहीं भूली। आजतक आपके पत्र की प्रतीक्षा करके जब निराश हो गई, तो फिर आज पत्र लिखने बैठी हूँ। आपने वचन दिया था, पता नहीं, वह वचन आपको दो-चार दिन भी याद रहा या नही। क्योंकि यदि ऐसा न होता, तो क्या पत्र भी न भेज सकते? एक दिन आकर दर्शन देने की दया करें।

विनीत—तारा

पत्र को पढ़कर रमेश ने पाकेट में डाल लिया और आफिस के कार्य करते रहे। आफिस का समय समाप्त हो जाने पर घर चले गये।

वह नित्य आफिस के समय में आफिस आते और उसके पश्चात् घर चले जाते। तारा का पत्र मिले, कई दिन हो चुके, पर उत्तर न दे सके। पत्र पढ़ कर पाकेट में डालने के पश्चात् उनको न तो पत्र की याद रही और न पत्रोत्तर देने की।

एक दिन आफिस में बैठे हुए पाकेट के पत्रों को निकाल कर देख रहे थे। अनेक पत्र के साथ तारा का वह पत्र भी मिला। उसको देख कर उन्हें उसके उत्तर देने की याद आई। उसी समय उन्होंने तारा को निम्नलिखित पत्र लिखना आरम्भ किया—

प्रिय तारा,

पत्र मिला। तुम्हारे यहाँ से लौट कर मै पत्र नही भेज सका; किन्तु इसका यह अर्थ नहीं होता कि मैं तुम्हें भूल गया। पत्र अबतक न दे सकने का कारण तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा थी। मैंने जो बचन दिया था, याद है और याद रहेगा। तुमने एक दिन के लिए बुलाया है; किन्तु खेद के साथ

लिख रहा हूँ कि मैं शीघ्र तुम्हारी आज्ञा का पालन न कर सकूँगा। इसलिए कि इस समय छुट्टी नहीं है। इसके अतिरिक्त धीरजपुर आने में कई-एक कठिनाइयाँ हैं। मैं चाहता हूँ कि तुम उतावली न करो। जिस दिन रामनगर जाओगी, मैं अवश्य तुमसे वहाँ आकर मिलूंगा।

तुम्हारा—रमेश

पत्र भेज देने के पश्चात् एक सप्ताह बीता, दो सप्ताह बीते, धीरे-धीरे एक मास समाप्त हो गया। तारा का कोई समाचार न मिला। इतने दिनों तक उसका कोई समाचार न मिलने से रमेश के हृदय में कई प्रकार की चिन्तनायें उठने लगी। तारा ने मुझे बुलाया था, मेरे न जाने से, जान पड़ता है, वह रुष्ट हो गई। यदि ऐसा न होता तो क्या वह पत्र का उत्तर और कुशल-समाचार भी न भेजती।

पत्र न आने के दिन जैसे ही और अधिक बीतने लगे, रमेश को प्रायः तारा की स्मृति आने लगी। वह सोचने लगे—तारा का पत्र यदि और कुछ समय तक न मिला; तो फिर एक पत्र लिख कर मैं उसके पास भेजूंगा। किन्तु यदि पत्र का उत्तर भी न दिया, तो फिर? अच्छा, उसके पत्र की बाट बहुत दिनों तक देख चुका। यदि मुझे कुछ समय मे पत्र भेजना ही है, तो फिर अभी क्यो न भेज दूँ।

यह निर्णय अभी हो भी न पाया था कि रमेश फिर सोचने लगे—मुझे क्या आवश्यकता पड़ी है, जो मैं पत्र भेजूँ। तारा ने पत्रों का सम्बन्ध प्रारम्भ किया था, मैं भी उत्तर देने लगा था। वह यदि पत्र न भेजेगी, तो फिर मुझे ही पत्र क्यों भेजना चाहिये?

प्रातःकाल के नौ बजे होंगे। रमेश एक दिन खा-पी कर चारपाई पर बैठे हुए थे। आफिस जाने के लिए अभी समय नहीं हुआ था। इसलिए उन्होंने रामा से बातें करके समय बिताना चाहा। वह पास ही बैठी हुई पान लगा रही थी। उन्होंने पूछा—बहुत दिनों से प्रताप का पत्र नहीं मिला। अप्रसन्न तो नहीं हो गये?

रामा—अप्रसन्न क्यों होंगे? पत्र लिखने के लिए भैया कहा करते हैं—जब कोई नई बात हो तो पत्र लिखें। जब तक कोई नई बात नहीं, तो फिर पत्र किस बात का?

रमेश—फिर भी जब अधिक दिन हो जायँ, तो एक पत्र कुशल समाचारों का भेज देना चाहिये।

रामा—आपने कोई पत्र भैया को भेजा है?

रमेश ने हँस कर कहा—जब मैं उनको पत्र लिखूँ, तभी वह मेरे पत्र का उत्तर भेजेंगे?

रामा—मेरे कहने का भाव यह नहीं है, मैं कहती हूँ कि जब आप पत्र भेजना इतना आवश्यक समझते हैं, तब तो आपने निस्सन्देह उनको पत्र भेजा होगा।

रामा की बात सुन कर रमेश सोचने लगे—स्त्रियाँ अपने स्वामी को सर्वस्व मानती हुई भी अपने भाई-बाप का कितना पक्ष लेती है—उनको अपने भाई-बाप पर कितनी प्रीति होती है, रामा की बातों से यह स्पष्ट प्रकट होता है।

रमेश को चुप देखकर रामा भी चुप हो गयी। अचानक उसको तारा के विवाह की याद आ गई। बोली—तारा के विवाह में भैया ने तुम्हारी बड़ी आशा की थी। न पहुँचने पर तारा तो बहुत उदास हो गई थी।

रमेज—तारा बहुत उदास हो गई थी, यह तुमने कैसे जाना?

रामा—जबतक आने की आशा रही, वह बार-बार कभी किसी से, कभी किसी से, पूछती रही। किन्तु किसी ने भी जब आने का सन्देश न दिया, तो वह मुझ से यह पूछने लगी कि वह आवेंगे या नहीं? मैंने कहा—जहाँ तक होगा आवेंगे तो अवश्य। किन्तु जब समय हो गया और भैया ने घर में आकर कहा कि अब वह न आवेंगे, तो फिर तारा ने किसी से कुछ नहीं पूछा, मुझ से भी उसने फिर कुछ बातचीत नहीं की।

रामा की बात सुनकर रमेश मन में सोचने लगे—जिसने इतनी आशा की, जिसने बुलाने के लिए पत्र भेज कर भर-सक स्वेच्छाचारिता से काम

लिया, फिर भी जब मैं न पहुँचा, उसे कितना कष्ट हुआ होगा, इसका अनुभव उसके अतिरिक्त और कौन कर सकता है ?

रमेश ने तारा के हृदय की व्यथा का अनुभव करते हुए कहा—यद्यपि तारा के विवाह में न पहुँच कर मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया था, फिर भी तारा के विवाह में न पहुँचने का मुझे दुख है। किन्तु वास्तव में मेरा कोई अपराध नहीं। उस समय मैं बड़े संकट में था। मेरा हृदय दो विभिन्न दिशाओं की ओर आकर्षित हो रहा था। एक ओर था प्रेम, जो तारा की ओर खींच रहा था और दूसरी ओर था कर्त्तव्य, जो बाबू राधामोहन की ओर खीच रहा था। जहाँ तक सोच सका, कर्त्तव्य का पालन करना मैंने उचित समझा।

रामा बैठे-बैठे रमेश की बात सुनती रही। उनके कह चुकने पर भी उसके मुख से कोई बात न निकली। उन्होंने देखा कि अब आफिस को देरी होती है। उठ कर खड़े हो गये और वस्त्र पहन कर आफिस को चल दिये। मार्ग में सोचने लगे—तारा ने मुझे इतना अपनाया था; किन्तु फिर भी मेरे न पहुँचने पर उसको बड़ा दुःख हुआ होगा। अच्छा, अभी आफिस चल कर उसको एक पत्र लिखूँगा।

आफिस पहुँच कर रमेश ने अपने बैठने की कुर्सी के सम्मुख टेबुल पर एक लिफाफा रखा हुआ देखा। झट उसे उठाकर खोल डाला और पढ़ना आरम्भ किया—

रमेश बाबू,

आपका पत्र मिला था। इतने समय तक मै आपको पत्र नही भेज सकी, यद्यपि मेरा हृदय बार-बार अधीर हो रहा था। आपने लिखा था कि उतावली न करो। अतएव अधीर और व्यथित होते हुए भी मैंने पत्र लिखने का साहस नही किया। आपने लिखा था, जिस समय रामनगर जाओगी, वहाँ आकर तुम से मिलूँगा। रामनगर आये हुए आज तीसरा दिन है, पत्र पाते ही आप अपनी प्रतिज्ञा का पालन करेंगे।

विनीत—तारा

पत्र पढ़कर रमेश को बड़ी प्रसन्नता हुई। आफिस के कार्यों की देखभाल करते हुए मन-ही-मन तारा के पत्र की बातो को याद करके कहने लगे—आज तारा का पत्र यदि न आ जाता, तो मैं आज उसको अवश्य पत्र लिखता। यह अच्छा हुआ कि उसका पत्र मिल गया, नहीं तो मेरा पत्र धीरजपुर पहुँचता और उसके रामनगर चले जाने के कारण न जाने किसके हाथ में पड़ता।

आफिस के कार्य करते हुए, रमेश ने निश्चय किया कि मै रामनगर अवश्य जाऊँगा। आफिस का समय समाप्त होने पर जब घर जाने लगे, तो व्यवस्थापक के पास जाकर बोले—मैं दो-तीन दिनो के लिए बाहर जाऊँगा।

व्यवस्थापक—कब जायँगे ?

रमेश—कल।

व्यवस्थापक—अच्छा।

रमेश आफिस से घर चले आये और रामनगर जाने के लिए तैयारी करने लगे।

२३

आज फाल्गुन शुक्ल अष्टमी है। शीत-काल यद्यपि समाप्त होने पर आ गया है, फिर भी कभी-कभी अपना प्रकोप दिखाकर जाड़े से नाक में दम कर देता है। आज प्रातःकाल से ही तीव्र वायु चलने के कारण, जाड़ा अधिक था। उस पर भी बादलो के द्वारा ढक जाने से सूर्य्य-भगवान की उष्णता न मिलने के कारण उसका प्रकोप और भी अधिक हो गया है।

सायंकाल के सात बजे होंगे। रमेश प्रतापनारायण के घर में बैठे हुए हैं। पास ही राधारानी, चन्द्रा और तारा बैठी हुई हैं। चन्द्रा कुछ समय तक रमेश से कुशल-समाचार पूछती रही। उसके बातें कर चुकने पर थोड़ी देर

के लिए किसी के मुख से कोई बात नहीं निकली। रमेश भी चुपके बैठे हुए थे।

सबको चुप देख कर राधारानी ने कहा—बेटा, तारा के विवाह में तुम्हारी बड़ी बाट देखी गई। अंतिम दिन जब समाप्त हो रहा था, और उस दिन भी जब तुम न आये, तो जिसके मुख से सुनो, उसके मुख से यही निकलता था—रमेश बाबू क्यों नहीं आये? प्रताप तो यही कहता था—आवेंगे अवश्य। पर जब तुम न आये, तो उसका जी बहुत छोटा हो गया। उसी का क्यों, सब का जी छोटा हो गया था।

राधारानी के इस कारुणिक उलहने से तारा के सम्मुख रमेश को बड़ा संकोच मालूम हुआ। फिर राधारानी की बात समाप्त होते ही चन्द्रा ने भी कहा—घर मे जितने छोटे-बड़े थे, आपके न आने से, सब के जी फीके हो गये थे, क्योंकि सबको विश्वास था कि आप आवेंगे अवश्य!

रमेश ने चन्द्रा की बात सुन कर तारा की ओर देखा। तारा निर्निमेष नेत्रों से, अन्यमनस्क कठपुतली की भाँति बैठी हुई, चारपाई के एक पाये की ओर निहार रही थी। अचानक उसने रमेश की ओर देखा। रमेश की दृष्टि तारा के मुख पर और तारा की दृष्टि रमेश के मुख पर पड़ी। तारा ने रमेश को अपनी ओर निहारते हुए देख कर लज्जा और संकोच के साथ एक बार गम्भीर श्वास खींचा। रमेश ने देखा, वह अपनी ठुड्डी को बायें पैर के घुटने पर रख कर अपना मुख उनकी दृष्टि से छिपा लेने का प्रयत्न कर रही है।

रमेश ने राधारानी और चन्द्रा की बातों का उत्तर देते हुए कहा—तारा देवी के विवाह में न आ सकने का मुझे बड़ा दुःख है। मैं किसी प्रकार आने से रुक नहीं सकता था। विवाह के दिन जब निकट आ गये थे, तो मैंने अपने आफिस से छुट्टी भी ले ली थी और धीरे-धीरे अपने आने की तैयारी भी करने लगा था। होनहार की बात। मेरे परम मित्र बाबू राधामोहन उसी बीच मे बीमार हो गये। उनकी चिकित्सा का प्रबन्ध किया। मैंने सोचा कि दो-एक दिन में अच्छे हो जायँगे। किन्तु उनकी बीमारी बढ़ती चली गई। मैं

बड़े असमंजस में पड़ गया। मुझे इस बात का बड़ा दुःख हुआ कि अब मेरा हसनगर जाना किसी प्रकार नहीं हो सकता। राधामोहन की बीमारी देख कर मैं बारबार सोचने लगा कि अब क्या होना चाहिये! मैंने सोचा कि तारा देवी तो अपनी हैं, और विवाह तो आनन्द-मंगल का काम है, हर्ष-वर्द्धक उत्सव है। उसमें मैं यदि न पहुँचूँगा, तो कुछ हानि न होगी, किन्तु यदि राधामोहन बाबू को ऐसी विपत्ति में छोड़ कर चला जाऊँगा, तो फिर मेरी मित्रता का कुछ मूल्य न रह जायगा। इसी कारण मैं नहीं आ सका।

बड़ी देर तक चन्द्रा और राधारानी से रमेश की बातें होती रहीं। उन्होंने चन्द्रा की बातों का उत्तर देकर पूछा—तारा देवी की विदा के लिये कौन गया था?

चन्द्रा ने रमेश की बात का कुछ भी उत्तर न दिया। राधारानी ने कहा—प्रताप गया था, और कौन जायगा?

चन्द्रा ने कहा—बड़ी चेष्टा करने पर कहीं एक मास के लिए तारा देवी को भेजा है और कह दिया है कि ठीक एक मास में हम विदा के लिए आवेंगे।

रमेश ने हँस कर कहा—आपने हमारी पहली बात का उत्तर नहीं दिया, इसलिए आपकी यह बात हम सुनना नहीं चाहते।

चन्द्रा ने कहा—उत्तर तो आपको मिला।

रमेश—किन्तु आपका उसमें अहसान?

राधारानी—कुछ नहीं।

राधारानी का समर्थन सुन कर रमेश ने हँस दिया। राधारानी भी हँसने लगीं। इतनी देर से बातें होने पर भी तारा ने उन बातों मे कुछ भी भाग नहीं लिया। उसको कुछ न बोलते हुए देख कर रमेश ने बीच में कई बार उसका नाम भी लेकर पुकारा, किन्तु उसने किसी बार उनको उत्तर न दिया। उसको उदासीन देख कर वह सोचने लगे—तारा बोलती क्यों नहीं? उसी ने मुझे बुलाया है और वही मुझसे बोलती नहीं! इसका क्या कारण हो सकता है?

रमेश ने फिर कहा—तारा, बोलोगी नहीं ?

तारा ने कुछ भी उत्तर न दिया। रमेश फिर चन्द्रा से बातें करने लगे। थोड़ी देर बाद बातें करते हुए रमेश ने फिर चन्द्रा से कहा-तारा, तुम बोलती क्यों नहीं हो ? तुम्हारे न बोलने का कारण क्या है ? मैं जानता नहीं, बतादो।

तारा ने फिर भी कुछ उत्तर न दिया। चन्द्रा ने मुस्कुराकर कहा—तारा देवी के विवाह में आप आये नहीं, फिर भला वह आपसे क्यों बोलने लगीं।

चन्द्रा की बात सुन कर तारा ने एक बार चन्द्रा की ओर घूर कर देखा और फिर सामने देखने लगी। रमेश ने फिर कहा—हम अपराध स्वीकार करते है। अच्छा, अब यही बता दो, कि कौन-सा प्रायश्चित्त करने से मैं अपने अपराध से मुक्त हो सकता हूँ ?

राधारानी ने कहा—बेटी, बोलो ना, देखो कितनी देर से तुमको मना रहे हैं। जब तक नहीं आये थे, तब तो दिन भर इनकी बातें करती रही हो, और जब आये है, तब बोलती नहीं।

रमेश के अनेक प्रयत्न करने पर भी तारा ने कुछ उत्तर न दिया। अधिक रात हो जाने के कारण चन्द्रा ने राधारानी से कहा—माँ जाओ, ब्यालू करने के लिए ले आओ, देखो न, कितनी रात बीत गई ?

राधारानी गईं और ब्यालू करने के लिये भोजन लाकर थाली को उसी चारपाई पर रख दिया, जिस पर रमेश बैठे हुए थे। थाली रखकर बोली—खाओ बेटा !

चन्द्रा ने भी कहा—खा लीजिये। बड़ी देर हो गई, बातों में कुछ जान नहीं पड़ा।

रमेश ने थाली को खिसका कर एक ओर रख दिया। चन्द्रा ने फिर कहा—अब उसे रखिये नहीं, खा लीजिये।

रमेश ने उत्तर दिया—खाऊँगा नहीं।

राधारानी ने रमेश का भाव समझ कर कहा—बेटी, देखो, तुम्हारे न बोलने से रमेश बाबू भोजन नहीं करते।

तारा ने कुछ भी उत्तर न दिया। वह प्रस्तर-मूर्ति के समान स्थिर बैठी रही। चन्द्रा ने भी कई बार कहा, किन्तु तारा कुछ न बोली।

भोजन रखे हुए बड़ी देर हो गई। रमेश ने भोजन नहीं किया। राधारानी कुछ काम करने चली गई थी और चन्द्रा भी रमेश के पास नहीं थी। तारा ने सिर उठा कर रमेश की ओर देखा और कहा—भोजन कर लीजिये।

रमेश ने तारा की बात सुनकर आश्चर्य के साथ बड़ी देर तक उसकी ओर देखा और अस्वीकार करते हुए कहा—न तुम बोलती हो, और न कुछ बातें करती हो, यह क्या बात है?

तारा ने कहा—आपने लिखा था कि उतावली न करो, इसलिए मैं उतावली नहीं करती।

तारा की बात सुनकर अपने पत्र के वाक्य का स्मरण होते ही रमेश ने हँस दिया। तारा ने फिर कहा—भोजन कर लीजिये, पीछे बातें करूँगी।

रमेश ने पूछा—कब?

तारा—सबको लेट जाने दीजिये?

तारा के मुख से 'सबको लेट जाने दीजिये' यह वाक्य निकलते ही उनका शरीर अवसन्न हो गया। वह उसके मुख की ओर देख कर रह गये। उसकी ओर देखते समय उनको अपना समस्त शरीर अचल पाषाण-सा प्रतीत हुआ। उनके कानों में बार-बार गूँजने लगा—सबको लेट जाने दीजिये।

तारा ने फिर कहा—भोजन तो कर लीजिये।

रमेश ने थाली खींच कर भोजन करना आरम्भ किया। भोजन करते समय उनको तारा का उक्त वाक्य न भूला। भोजन करते हुए सोचने लगे—तारा के ऐसा कहने का क्या अभिप्राय हो सकता है?

रमेश भोजन कर रहे थे। राधारानी ने दूध लाकर रख दिया और उसमें मीठा छोड़ दिया। वह जितनी देर भोजन करते रहे, राधारानी बैठी रहीं। उनके भोजन कर चुकने पर तारा पानदान लेकर पान लगाने लगी। राधारानी गृहस्थी के दो-चार काम-काज करके, रात अधिक बीती हुई जान कर,

अपने बिस्तर पर जाकर लेट रहीं। चन्द्रा तो पहले से ही जाकर सो रही थी।

२४

रमेश जहाँ बैठे हुए है, वहाँ लालटैन का सुन्दर प्रकाश हो रहा है। चारपाई के पास तारा बैठी हुई है। वह उसकी ओर देखते हुए उसके मुख से बातें सुनने की प्रतीक्षा कर रहे है। उसने उनकी इस अवस्था को अनुभव करके कहा—

विवाह के जब थोड़े दिन रह गये थे, उस समय यद्यपि मै जानती थी कि आप आवेंगे, तथापि सोचती थी कि यदि आप न आए और फिर मैंने कभी आप से पूछा कि आप क्यों नहीं आये थे, तो झट आप उत्तर देंगे कि तुमने बुलाया था ? ऐसी अवस्था मे मैं कुछ न कह सकूँगी। अपने भेजे हुए प्रणाम का उत्तर पाकर मुझे इस पर और भी विश्वास हो गया था। अतएव संकोच तथा लज्जा को त्याग कर मैंने आपको पत्र लिखा। इस पर भी जब आप नहीं आये, तो मुझे अपने इस आत्म-अपमान से बड़ा दुःख हुआ। इसके पश्चात विवाह में मेरी जब बिदा हो गई, और मैं वहाँ चली गई, तो जिस दिन से वहाँ गई, उसी दिन से आपको बुलाने की धुन लगी हुई थी। अनेक सन्देशों और पत्रो पर गये भी, तो केवल डेढ़ दिन के लिए। चलते समय मैंने बहुत रोका, पर आप नहीं रुके, कानपुर चले ही गये। आपके चले जाने पर मैं बहुत रोती रही। दो दिन तक मैंने कुछ नहीं खाया।

रमेश तारा की बातें सुनते रहे। तारा के कह चुकने पर भी उन्होंने कुछ न कहा। वह फिर कहने लगी—आपके चले आने पर मैंने पत्र भेजा! उत्तर की बाट देखते-देखते मैं थक गई। आशा-भरोसा का स्वरूप कुछ-से-कुछ हो गया। पर उत्तर का कहीं पता नहीं। सोचती थी, क्या बात है, जो पत्र का उत्तर भी नहीं आया ? जैसे-तैसे आपका पत्र मिला, उसमें जब मैंने

पड़ा कि आप अभी न आ सकेंगे, रामनगर में आकर मिलेंगे, तो फिर मैं निराश हो कर सोचने लगी, न जाने कब रामनगर जाऊँगी, कब भेंट होगी। फिर मैंने यहाँ आने का उपाय किया। बड़े उपाय और कठिनाई से मेरा यहाँ आना हुआ। तब कहीं मैंने आपके पास पत्र भेजा।

तारा की बात समाप्त होने पर रमेश ने मुस्कुरा कर कहा—और कुछ?

तारा ने कुछ भी उत्तर न दिया। बड़ी देर तक रमेश उसकी ओर देखते रहे। तदुपरान्त वह बोली—हाँ तो बताइये, मैं बुलाती हूँ, आप आते क्यों नहीं?

रमेश ने फिर मुस्कुराकर कहा—तुम्हारे बुलाने से मैं आता नहीं, तो आज यहाँ कैसे पहुँच गया?

तारा—मैं क्या जानूँ कैसे पहुँच गये।

रमेश—तुमने मुझे बुलाया नहीं?

तारा ने सिर हिलाकर कहा—ना।

रमेश तारा की इस ढिठाई पर टकटकी लगाकर उसके मुख की ओर देखकर रह गये। कुछ समय चुप रहकर तारा ने फिर कहा—खाते-पीते, उठते-बैठते तुम्हारी याद नहीं भूलती। जब कहीं से किसी के पास कोई आता है, तो मुझे तुम्हारी याद आ जाती है। जब कोई कानपुर से आता है, तो मुझे जान पड़ता है कि कानपुर से तुम्हारा कुछ सन्देश लाया होगा? जब पोस्टमैन द्वार पर आता है, और लड़के आकर घर में कहते हैं, तो मुझे जान पड़ता है कि तुम्हारा पत्र आया होगा।

बड़ी देर तक रमेश तारा की बातें सुनते रहे। बातें समाप्त होने पर वह सोचने लगे—तारा इतनी देर से बातें कर रही है। यह ऐसी बातें है, जिनमें मैं कुछ बोल ही नहीं सकता। मैं यदि उसकी बातों का उत्तर दूँ, तो क्या उत्तर दूँ?

तारा की बातें सुनते हुए रमेश को बड़ा विलम्ब हो गया। उन्होंने देखा, रात का तीसरा पहर है। सारी रात बातों में बीत गई। केवल रात

का चौथाई भाग और शेष है। अतएव, उन्होंने तारा से कहा—रात अब बहुत थोड़ी रह गई है। सब कोई सो रहे हैं, जाओ तुम भी सो जाओ।

तारा ने सिर हिला कर अस्वीकार किया। रमेश ने फिर पूछा-क्यों, तुम सोओगी नही, नीद नही लगती?

तारा—ना।

रमेश ने कुछ ठहर कर फिर कहा—सब कोई सो रहा है, जाओ तुम भी सो जाओ। बिस्तरे पर जाकर जब लेट रहोगी, तो नीद आही जायगी।

तारा—सबको सोने दो, मैं न सोऊँगी।

रमेश—क्यों तुम क्यो न सोओगी?

तारा—मेरी इच्छा, मै न सोऊँगी।

रमेश चुप हो गये। थोड़ी देर चुप रह कर तारा ने रमेश के मुख की ओर देख कर फिर कहा—न सोऊँगी-न सोने दूँगी।

रमेश ने विस्मित नेत्रों से तारा की ओर देखकर कहा—न सोओगी, न सोने दोगी?

तारा ने तीव्र स्वर मे उत्तर दिया—हाँ-हाँ न सोऊँगी-न सोने दूँगी।

रमेश मन मे सोचने लगे—जिस प्रकार आज तारा तीव्र स्वर में स्वेच्छाचारिता के साथ बातें कर रही है, उस प्रकार इसने पहले कभी नहीं की। जब तक विवाह नहीं हुआ था, इसमे अधिक संकोच और लज्जा-भाव था। मुझे याद है, जब इसी घर के ऊपर के कोठे मे बैठ कर मैंने इससे बातें की थीं। उस समय यह बुलाने से बोलती थी, पूछने पर केवल बात का उत्तर देती थी। आज उसके हृदय में इतनी स्वेच्छाचारिता और इतना निस्संकोच भाव कहाँ से उत्पन्न हो गया। उस समय यह एक किशोरी बालिका थी, आज तो यह बालिका नहीं है। किशोर अवस्था का पूर्ण विकास होकर यौवन-प्रभा शरीर में छिटक रही है। इसी के प्रकाश ने निस्संकोच भाव, स्वेच्छाचारिता और स्वाधीनता की लहरें उत्पन्न कर दी है।

रमेश ने निर्निमेष दृष्टि से तारा की ओर देखा। यौवन की उद्दीप्त

प्रभा से उसका समस्त शरीर झलमला रहा था। सारे शरीर में कमनीय कान्ति और रमणीय लावण्य उद्भासित हो रहा था।

लालटैन के प्रकाश में प्रफुल्ल यौवन-श्री से जगमगाते हुए उसके मुख की ओर निहार कर रमेश ने कहा—तारा, ठंडक अधिक है। शीत लगता होगा। कम्बल या रजाई से शरीर को ढक कर बैठो।

तारा—नहीं, मुझे ठंडक नहीं जान पड़ती।

रमेश—तुम्हें ठंडक क्यों नहीं जान पड़ती?

तारा—न जाने क्यों, मुझे ठंडक नहीं लगती?

रमेश ने विस्मय के साथ पूछा—तो क्या तुम्हें ठंडक सदा कम लगती है।

तारा—नहीं केवल आज।

तारा का उत्तर सुन कर रमेश का विस्मय और भी बढ़ गया। वह कुछ समय तक तीव्र दृष्टि से उसकी ओर निहारते रहे। फिर अपने बायें हाथ पर अपना मुख रख कर अन्यमनस्क हो गये। उनका हृदय अशान्त और अस्थिर हो उठा। उसकी बातों का क्या अर्थ होता है, यह उनकी समझ में न आया। जितना ही उसकी बातों को वह सोचने लगे उनके अन्तः-करण में उतनी ही उलझनें पैदा होने लगी।

तारा ने रमेश के पास बैठे और बातें करते हुए सारी रात व्यतीत कर दी। प्रातःकाल हो गया। रात के सोये हुए सभी जन उठने लगे। रमेश भी उठ कर घर के बाहर निकले और घूमने चले गये।

रमेश को रामनगर में दो दिन व्यतीत हो गये। तीसरे दिन जब वह जाने लगे, तो तारा ने रो दिया। उन्होंने प्रयत्न किया कि हम चले जायँ, किन्तु तारा ने किसी प्रकार उस दिन न जाने दिया।

इस प्रकार तीसरे दिन भी रमेश को रामनगर में रहना पड़ा। कितने बहाने कर के चौथे दिन रामनगर से विदा होकर रमेश कानपुर चले आये।

२५

आज रविवार है। रमेश और राधामोहन को अपने अपने आफिसों से छुट्टी है। दोपहर के दो से अधिक बजे होंगे।

एक पुस्तक लिए राधामोहन अपने कमरे में पढ़ रहे थे। अचानक रमेश ने कमरे में प्रवेश किया। उन्होंने बैठते ही राधामोहन के हाथ में अँगरेजी की राजनीतिक पुस्तक देखकर कहा—मैं जहाँ तक जानता हूँ, आपकी अभिरुचि राजनीति की ओर अधिक है।

राधामोहन—हाँ।

रमेश—क्यों?

राधा०—इसलिए कि यह राजनीतिक युग है।

रमेश—यह राजनीतिक युग है—इसे और स्पष्ट कीजिये।

राधामोहन—इस युग में राजा और प्रजा का आन्दोलन हो रहा है। प्रजा राजा से सन्तुष्ट नहीं है, और राजा को प्रजा में अराजकता का अनुभव हो रहा है। इसी आधार पर राजा और प्रजा में जो तुमुल आन्दोलन मचा हुआ है, उसका राजनीति से विशेष सम्बन्ध है। यही कारण है कि इस युग में राजनीति के अतिरिक्त और विषय रूखे गिने जा रहे हैं। विशेष कर शिक्षित-समाज राजनीति की ओर अपने पैर आगे बढ़ा रहा है।

रमेश—संसार के अन्य देशों की यह परिस्थिति न केवल इस युग में इस प्रकार है, वरन् वे सदा से इसी आन्दोलन को लेकर झगड़ते आये हैं और झगड़ते रहेंगे। पश्चिम के देशों में तो राजनीति को छोड़ कर और कभी कोई बात नहीं देखी गई। धार्मिक आन्दोलन तो वहाँ के लिये एक अप्राकृतिक बात है। सामाजिक-प्रगति भी वहाँ राजनीति के आश्रित है। किन्तु भारतवर्ष की अवस्था कुछ और है। संसार के अन्य देश जिस नीति पर जीवित हैं, भारतवर्ष कदापि उस पर जीवित नहीं रह सकता, और यदि

उस नीति के प्रकाश में भी भारतवर्ष का नाम संसार में जीवित रहेगा, तो वह भारतवर्ष नही, कोई दूसरा भारतवर्ष होगा।

रमेश की बात सुन कर राधामोहन ने समझा कि रमेश की प्रगति धार्मिक बातो की ओर है। बोले—मै किसी प्रकार धार्मिकपचड़ो का पक्षपाती नहीं हूँ। मेरा विश्वास है कि भारतवर्ष यदि धार्मिक उलझनों से नहीं सुलझता, तो राजनीतिक अधिकार से सदा वंचित रहेगा। मेरा यह भी विश्वास है कि धार्मिक रोड़े ही हमारे इस पथ के कंटक है। इसका यह फल होगा कि हम कभी राजनीतिक अधिकार प्राप्त न कर सकेंगे। आज भी हमारे ऊपर दूसरे शासन कर रहे है और आगे भी सदा करते रहेगे।

रमेश—मेरे कहने का आशय धार्मिक बातो का पक्षपात कदापि नही था। किन्तु मै जो कहना चाहता था, उसका निर्णय तो मैं पीछे करूँगा, पहले मै धार्मिक बातों का ही आपसे निर्णय चाहता हूं। इसलिए कि मै धार्मिक बातो से भी उतना उदासीन नही हूँ, जितना आप। भारतवर्ष के धार्मिक महत्व को अनेक बार संसार मान चुका है। यह दूसरी बात है कि आज के इस पराधीन-युग ने हमारे उज्वल धार्मिक क्षेत्र मे धूल डाल कर उसे निष्प्रभ और धूसरित बना दिया है। हमें उस क्षेत्र को उज्वल बनाना होगा। और... .. ...

बात काट कर राधामोहन ने कहा—धर्म का जो हमारा उज्वल क्षेत्र है, उससे हम उदासीन नहीं हैं। हम भी मानते हैं कि हमारी अज्ञानता के कारण जो उसमें व्यर्थ की निर्मूल बातें सम्मिलित हो गई है, उनको दूर करना होगा। इसी लिये मैने कहा है कि यह युग राजनीतिक युग है। जबतक आप राजनीतिक अधिकार प्राप्त न करेंगे, तबतक किसी प्रकार अपने देश में सुधार नहीं कर सकते। बताइये, तबतक आपका अपने देश मे सुधार करने का कोई अधिकार नही है, तब आप क्या कर सकते हैं? जापान चालीस वर्षों के भीतर अपना बहुत सुधार कर लेने के लिये प्रसिद्ध है, किन्तु राजनीतिक अधिकारों के बिना नहीं। ठीक यही अवस्था आपके देश की है।

जब तक आपको अपने देश में सुधार करने का राजनीतिक अधिकार नहीं, तब तक आप कुछ नहीं कर सकते। मेरी धारणा है कि देश की यदि सारी शक्ति राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति में लगा दी जाय, तो राजनीतिक सफलता हमें बहुत शीघ्र मिल सकती है। फिर हम अपने देश में जैसा चाहें, सुधार कर सकते है। मै यह कह देना चाहता हूँ कि एक तो राजनीतिक अधिकारो के विना आप अपने देश में कभी कुछ कर ही नहीं सकते, चाहे वह धार्म्मिक कार्य हो, अथवा और कोई। किन्तु यदि आप धार्मिक बातो की मानसिक उन्नति कुछ कर भी सकें, तो राजनीतिक अधिकारो के विना देश की यह दरिद्रताजनित दुर्दशा कभी दूर नहीं हो सकती, और जब तक देश की दरिद्रता दूर नहीं होती, तब तक हम न धार्मिक उन्नति चाहते है और न आध्यात्मिक उत्थान! और न ये हो ही सकते है।

रमेश—मैं राजनीति को उतना ही स्थान देना चाहता हूँ, जितना आप इस समय आवश्यक समझ रहे है। किन्तु मै नही चाहता कि राजनीति को गले लगा कर भारतवर्ष को पश्चिमी देश बना दिया जाय। पश्चिमी देशों की शिक्षा और सभ्यता दूसरी है, और भारतवर्ष की दूसरी। यदि वही राजनीति—जो योरपकी सर्वस्व है—हमारी सदा के लिए जीवन-मूरि बनी, तो हमारा सर्वस्व उससे नष्ट हो जायगा।

राधामोहन—राजनीति के विना शासन किसी प्रकार नही किया जा सकता। यदि आप अपने देश को राजनीति से इतना दूर रखना चाहते है, तो इसका यह फल होगा कि आपका देश अपना शासन अपने हाथ में कभी रख न सकेगा। संसार मे अधिकार लोलुपता की भीषण ईर्ष्या उत्पन्न हो गई है। उसका आपको सामना करना होगा। यदि आप अपने देश में केवल अध्यात्म-भाव भरना चाहते है, यदि आप अपने देश को साधु और देवता बनाना चाहते हैं, तो आप अपने देश को साधु और देवता का देश भले बना लेवें, पर याद रखें कि आपका संसार में कोई

मूल्य न रहेगा! आपकी सत्ता संसार के सम्मुख अपना कुछ प्रभुत्व न रखेगी, और संसार आपको पैरों तले रौंदेगा।

यह सुन रमेश कुछ ठहर कर सोचने-सा लगे। कुछ देर चुप रह कर राधामोहन ने फिर कहा—इस लिए आपको संसार की प्रत्येक बात का सामना करना होगा। अपने देश को इस प्रकार बनाना होगा कि उसको अब कभी संसार की दासता न करनी पड़े। मै मानता हूं कि छल, प्रतारणा, कूटनीति, हिंसा और असत्य किसी भी देश के लिए हितकर नही, किन्तु मै देखता हूँ कि आज संसार की गति दूसरी ओर है। यदि हम तनिक भी चूके कि शताब्दियो के लिए दासता की शृंखला में आबद्ध हुए। अतएव हम सत्य, न्याय, अहिंसा और उदारता की आड़ मे इतने भोले भी नही हो जाना चाहते, कि संसार में हम मूर्ख और कायर समझे जायँ। हम चाहते है कि हम सत्यवादी बनें, किन्तु साथ ही इतने चतुर भी हो कि संसार की कूटनीति मे छले जाकर हमे सत्य के लिए रोना भी न पड़े। हम निश्छल व्यवहार करना सीखें, किन्तु हम इतने सतर्क भ हो कि संसार की प्रतारणा हमे प्रतारित न कर सके। हममे धार्मिकता के प्रति प्रीति हो और हमारे जीवन मे अध्यात्म का प्रकाश रहे, किन्तु राज-नीति के भी हम इतने पंडित हो कि ससार की राजनीति का हम सामना कर सकें। हमारा देश पराधीन न हो, अपने धर्म-कर्म के लिए स्वतन्त्र रहे।

रमेश—देश के लिए यह आदर्श मै मानता हूँ। मेरे कहने का सारांश भी यही है। प्रत्येक देश में तीन प्रकार के आन्दोलन होते है, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक। कही राजनीति को प्रधानता दी गई है और कही धर्म तथा समाज को। हमारे देश में धर्म की ही प्रधानता रही है, और अब भी है। धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनो मे कोई अन्तर नही है। फिर भी मैं धर्म का नाम न लेकर समाज का ही नाम लेता हूँ, और सामाजिक-आन्दोलन को प्रधानता देता हूँ। इसी लिए कि संसार के सारे आन्दोलन मानव-सभ्यता के भीतर सामाजिक उत्थान के लिए ही होते हैं। हमारे धार्मिक

और राजनीतिक आन्दोलन भी सामाजिक व्यवस्था के लिये ही है। केवल राजनीतिक आन्दोलन और राजनीतिक अधिकारों से सामाजिक उत्थान कदापि नहीं हो सकता। सामाजिक उत्थान के लिए केवल धर्म की ही व्यवस्था करनी पड़ेगी। हाँ, यह मानी हुई बात है कि राजनीति भी उसका एक अंग है। जब तक देश में राजनीतिक अधिकार न प्राप्त होंगे और देश के हाथ मे देश का शासन न होगा, तब तक देश अपना सुधार और सामाजिक व्यवस्था किस प्रकार कर सकता है? हम चाहते है कि देश में राजनीति का सुन्दर प्रकाश रहे, किन्तु आप यह स्मरण रखें कि हम जो कुछ करेंगे, समाज के हित के लिए करेंगे। राजनीति केवल ईर्ष्या, अधिकार-लोलुपता, तथा प्रतिहिंसा सिखा सकती है। अतएव, समाज की भलाई के लिए हमें उन आन्दोलनों को न भूलना चाहिये, जिनसे समाज में उदारता, बन्धुत्व, पारस्परिक समवेदना का शुद्ध भाव, निश्छल व्यवहार, और त्यागभाव उत्पन्न होते है। हम लगातार देखते हैं कि देश में राजनीतिक आन्दोलन जितना ही बढ़ता जाता है, दूसरे आन्दोलन उतने ही शुष्क और क्षीण होते जाते हैं। यह बात हमारे जीवन के लिए उपयोगी नहीं है।

राधामोहन ने हँस कर कहा—यद्यपि हमारी और आपकी बातों में विशेष अन्तर नहीं है, फिर भी हमारे जीवन का पथ कुछ राजनीति की ओर अधिक झुका हुआ है, और आप का अध्यात्म की ओर है। क्यों? है न?

यों वाद-विवाद के थोड़ी देर बाद यह मजलिस उठी।

२६

जिस बात का कहीं स्वप्न में भी पता नहीं था, जिसके होने की किसी के हृदय में आशंका भी उत्पन्न नहीं हुई थी, वही बात अचानक भविष्य के गर्भ से निकल कर बिजली की भाँति सामने टूट पड़ी!

तारा का वैधव्य समाचार पाकर रमेश का हृदय किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो

गया। अकस्मात् इस बज्र-पात से वह अपने आपको स्थिर न रख सके। उनके व्यथित हृदय में लक्ष-लक्ष प्रश्न उठ कर उनको और भी विकल करने लगे—तारा आज अनाथ हो गई। उसका सर्वस्व छिन गया। उसका सौभाग्य आज दुर्भाग्य के रूप मे परिणत हो गया। सारा सासारिक सुख और यौवन का समस्त ऐश्वर्य मिट्टी में मिल गया! तारा कल की बालिका! उसकी यह दुर्दशा! अभी तो किशोरावस्था समाप्त भी नही होने पाई थी! अभी तो उसके मन में यौवन की मधुरता केवल प्रवेश कर रही थी। जिस अबोध बालिका ने जाना नही था कि संसार क्या है, जिसने जाना नहीं था कि यह जीवन कैसा है, जिसको अभी तक अनुभव नहीं हुआ था कि जीवन की कितनी अवस्थायें होती है, जिसको ज्ञान नही हुआ था कि संसार का सुख और भोग किसे कहते है, उसके सम्मुख आज कैसा भयंकर वैराग्य। हा विधाता! उसका यह भीषण वैराग्य कौन निभायेगा—यह प्रचंड तपश्चर्य्या किस तरह पूरी होगी? विधाता! तू ने उस देवी—प्रतिमा के सौभाग्य-पटल पर कैसी क्रूर लेखनी से लिखा था? तू ने उसे संसार मे किस लिए भेजा था? यह रहस्य तो समझ में नहीं आता। जान नहीं पड़ता, इसमें किसका दोष है?

रमेश का अन्तःकरण अस्थिर हो उठा। कुछ समय चुप रहने के बाद उनके हृदय में फिर यह भावना उठने लगी—जो जिस पौधे को उत्पन्न करता है और उसका पालन-पोषण करके सुचारु रूप से उसे बड़ा करता है, वह उसे कदापि अपने हाथ से नष्ट नहीं करता। पता नही, यह लोकोक्ति कहाँ तक ठीक है—'विष-वृक्षोऽपि संवर्द्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्'—क्या यह कवि-वाक्य निरर्थक है? जिस प्रकृति ने तारा को उत्पन्न किया, जिसने उसे इतना सुन्दर बनाया, जिसने उसमें इतनी मनोमोहक व्यवहार-कुशलता उत्पन्न की, उसी ने उसको नष्ट किया? प्रकृति का यह कैसा विकट हास्य है? जो प्रकृति इतनी कोमल कही जाती है, वह ऐसी निष्ठुर क्यो?

रमेश का उद्वेलित हृदय कुछ-कुछ स्थिर हुआ, तो देखा कि रामा रो-रो

कर सिर पीट रही है। उसकी यह अवस्था देखकर उन्होंने उसको समझाने का प्रयत्न किया। पर उन्होंने उसको समझाने की जितनी ही चेष्टा की, उसका हृदय उतना ही अस्थिर और अधीर होने लगा। उन्होंने देखा कि उसको किसी प्रकार शान्ति नही मिलती। उसकी अधीरता देखकर उनका हृदय फिर अस्थिर हो उठा। किन्तु बडे प्रयत्न से अपने शोक के आवेग को रोककर बोले—तुम थोड़ी देर के लिए मेरी बातों की ओर ध्यान दो। मैं यह कहना चाहता हूं कि तारा की ओर से अपने ध्यान को खींचकर संसार की ओर देखो। संसार की अवस्था पर जब तुम विचार करोगी, तो तुम देखोगी कि संसार इसी प्रकार की घटनाओं से बना है। यदि संसार की इन घटनाओं की ओर न भी देखा जाय, तो केवल इसी प्रकार की घटनायें—जो संसार में रात दिन होती रहती है—देखकर हृदय मे दारुण ज्वाला उत्पन्न हो जाती है। जिस देश मे हम लोग रहते हैं, केवल उसी की ओर देखने से पता चलता है कि हमारे देश में स्त्री-समाज की अवस्था कितनी पतित और दुःखपूर्ण है। देखो, स्त्री का जीवन, जन्म से लेकर मृत्यु के दिन तक, इतना विषादपूर्ण है, जिसे देखकर स्त्री-समाज से एकबारगी घृणा उत्पन्न हो जाती है। संसार के अन्य देशो की अपेक्षा हमारे देश के स्त्री-समाज की अवस्था अत्यन्त पतित हो गई है। यहाँ के स्त्री-जीवन की एक-एक बात पर यदि ध्यान दिया जाय, और उस पर गम्भीरता से सोचा जाय, तो उसके सम्मुख तारा की विपत्ति कुछ समय के लिए भूल-सी जाती है।

रामा नीचा सर किये हुए रमेश की बात सुनती रही। उसके कुछ न बोलने पर उन्होंने फिर कहा—हम एक घटना पर इतना दुःख करते हैं, पर नही जानते कि हमारे देश में बाल-विधवाओं की कितनी बड़ी संख्या है, और यह संख्या किस प्रकार दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है। बाल-विधवाओं की संख्या इतनी अधिक हो गई है कि कोई घर इनसे सूना नही दिखाई देता, पर किसी के कानों पर जूँ नहीं रेंगती। सारे देश में इस समस्या की

भीषण-अग्नि धधक रही है, पर कौन उसके लिए रोने बैठता है? किन्तु जब वही वज्रपात अपने ऊपर होता है, तब जान पड़ता है कि यह अवस्था कितनी विकराल होती जाती है। बालिकायें बहुत बड़ी संख्या में विधवा हो रही है, जिससे हमारा सामाजिक-जीवन अशान्त और संकटमय हो रहा है, पर देश ने किसके लिये क्या किया? यह समस्या न अभी तक सुलझी है और न उसके सुलझने की आशा है, जब तक कि इसमें 'आत्मवत् सर्व-भूतेषु' के भाव नही उत्पन्न हो जाते।

बड़ी देर के बाद रामा ने गम्भीर श्वास खींचकर कहा—यह सब कर्मों का फल है—अपने-अपने भाग्य का दोष है। इसमें किसी का क्या वश? बहुत कोई चाहे, पर इसमें किसी का चारा ही क्या है?

रामा की बात सुनकर रमेश सोचने लगे—जिस स्त्री-समाज की यह अवस्था हो और उसे यह भी न मालूम हो कि इसके कारण क्या है, तो यह बात और भी बड़े दुःख की है। हमारे देश के स्त्री-समाज में कुछ भी ज्ञान का आलोक नही है। न जाने विधाता ने किस लिए इनको उत्पन्न किया है?

सोचते-सोचते फिर रामा की बात का उत्तर देते हुए बोले—स्त्री-जाति की इस भोली प्रकृति पर हमें दुःख है। स्त्रियाँ दुःख उठाती है, पर वे यह भी नही जानतीं कि दुःख का मूल कारण क्या है? जब स्त्रियों ही की ऐसी अवस्था है, तब तो उनका उद्धार अभी दूर है। तुमने जो इसका कारण कर्मों का फल और भाग्य का दोष कहा है, इसका अर्थ तुम यदि यह लेती हो कि विधाता ने हमारे कपाल में जैसा लिख दिया है, वैसा हमे भोग करना ही होगा, तो यह बहुत बड़ी मूर्खता है। अपने बताए हुए कारण को यदि इस प्रकार समझो, तो अधिक अच्छा होगा कि यह सब कर्मों का फल है और भाग्य केवल कर्मों से ही बनता है। इसका अर्थ यह होता है कि जब कर्मों से हमारी यह अवस्था हुई है, तो कुछ कर्म ही ऐसे हैं, जिनके करने से हमारा इससे छुटकारा हो सकता है।

रामा ने रुद्ध कंठ से कहा—वे कौन से कर्म हैं, जिनसे यह दुःख दूर हो सकता है?

रमेश—भाग्य के विधाता कर्मों के विषय में कुछ जानने के पहले तुमको यह जान लेना चाहिये, कि दुःख के कारण क्या है? जब यह पता लग जायगा कि अमुक कर्मों के कारण यह दुःखमयी अवस्थायें हो रही है, तो फिर उससे छुटकारे का उपाय भी मिल सकता है।

इतना कह कर रमेश चुप हो रहे। रामा आगे सुनने के लिए उत्सुक हो रही थी। उनको चुप देखकर उसने पूछा—उसके कारण कौन-से है? किन कर्मों के फल से यह दुःखपूर्ण अवस्था हो रही है?

रमेश ने पूछा—तुम इस पर सोचकर कुछ कह सकती हो?

बहुत कुछ सोचने पर भी जब रामा ने कुछ न कहा, तो रमेश ने कहना आरम्भ किया—बालक और बालिका के विवाह में प्रचलित एकमात्र दहेज की प्रथा ही वैधव्य-समस्या का कारण है। जब तक यह दहेज की प्रथा नष्ट नहीं हो जाती, जब तक हमारे समाज से इसका मूल-विच्छेद नहीं हो जाता, तब तक वैधव्य-समस्या कभी सुलझ ही नहीं सकती, प्रत्युत उसमें वृद्धि ही होती रहेगी। एकमात्र दहेज की प्रथा के कारण से ही हमारे देश मे करोड़ो की संख्या मे पन्द्रह और सोलह वर्षकी बाल-विधवायें जीवन की घोर यातनायें भोग रही है।

रामा बड़े ध्यान से रमेश की बातें सुनती रही। उनके कह चुकने पर वह सोचने लगी—क्या एकमात्र दहेज के कारण ही यह समस्या उत्पन्न हो गई है?

बार-बार सोचने पर भी रामा की समझ में यह बात नही आई कि दहेज-प्रथा से यह समस्या कैसे उत्पन्न हो गई?—दहेज-प्रथा से और बाल-वैधव्य से कौन-सा सम्बन्ध है?

रमेश ने टकटकी लगाकर रामा की ओर देखा। उनके निर्निमेष दृष्टि पात का अर्थ रामा ने समझा मानो यह अपनी बात के उत्तर में मुझसे

कुछ उत्तर चाहते है। बोली—दहेज-प्रथा तो कोई नई बात नहीं है, सदा से चली आई है। दहेज-प्रथा और बाल-वैधव्य की विषम समस्या से क्या सम्बन्ध हो सकता है?

रमेश ने उत्तर दिया—दहेज-प्रथा सदा से चली आई है, यह प्रश्न तो तुमने बड़ा लंबा कर दिया। मै संक्षेप में तुम्हें बता देना चाहता हूँ, कि यह प्रथा सनातन नही है। यह दूसरी बात है कि मां-बाप जब बालिका का समर्पण करते रहे हों, उस समय जो कुछ उनसे हो सकता हो, बर-पक्ष को देकर प्रसन्न करते रहे हों। किन्तु जैसी अवस्था दहेज-प्रथा की आज हमारे समाज में प्रचलित है, उसे देखकर संसार के सभी सभ्य देश हमसे घृणा करते हैं और वास्तव मे है भी यह बात घृणा के योग्य। सम्भवत· यह बात किसी से भी अप्रकट न होगी, कि इस प्रथा के कारण बालक-बालिकाओं के विवाह-जैसे शुभ अवसर के समय कैसी-कैसी घटनायें घटती है। उनके सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नही। अच्छा, अब तुम्हारा दूसरा प्रश्न है, कि इस प्रथा से और वैधव्य समस्या से क्या सम्बन्ध है। सुनो, बालक और बालिकाओं के विवाहों पर जितना ध्यान दिया जाय, उतना ही मालूम होगा कि जिस प्रकार का समुचित सम्बन्ध बालक और बालिका का होना चाहिए, कदापि नहीं होता। एक सभ्य और व्यवहार-कुशल बालिका केवल इस प्रथा के कारण ही एक मूर्ख वर के हाथ में समर्पित होती है। एक होनहार बालक केवल रुपये की शक्ति से अत्यन्त नीच स्वभावापन्न बालिका के साथ विवाहित होकर छला जाता है। सारांश यह कि इस प्रथा के कारण रूप, यौवन, शिक्षा, गुण, सुशीलता, व्यवहार-कुशलता और लोक-प्रियता आदि जीवन के स्वर्गीय गुण अनादृत होकर केवल रुपये पैसे और धन-सम्पत्ति के नाम पर नष्ट-भ्रष्ट होते हैं। बालक और बालिका का, इस प्रकार, केवल लौकिक सम्बन्ध होता है, प्राकृतिक नही। फलतः इस प्रकार के सम्बन्ध सर्वदा प्राकृतिक-दाम्पत्य-सुखोपभोग से वंचित रहते हैं। सच पूछो तो केवल बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह ही इस प्रथा के मूल कारण हैं, और बाल-विवाह एवं वृद्ध-विवाह वैधव्य

समस्या के जन्मदाता हैं। बाल-विवाह से छोटे-छोटे बालक यौवनावस्था के पूर्व विषयोपभोग में पड़कर ब्रह्मचर्य नष्ट करके जीवन-शक्ति को क्षीण बना डालते है। उनके शरीर इतने कृश और उनकी जीवन-शक्ति इतनी दुर्बल हो जाती है कि अल्पायु में ही उन्हें अपने जीवन से हाथ धोना पड़ता है। वृद्ध-विवाह की प्रथा से जैसे विवाह होते है, वे आज किससे छिपे है। दस वर्ष, बारह वर्ष, और चौदह वर्ष की बालिकाओं के सम्बन्ध चालीस वर्ष, पचास वर्ष और साठ वर्ष के पुरुषों के साथ में लगातार देखे जा रहे हैं। इस वृद्ध-विवाह के दुष्परिणाम हमारे सम्मुख रात-दिन दिखाई देते है। इस प्रकार इन अबोध बालिकाओं और नौनिहाल-किशोरियों का विवाह-सम्बन्ध ऐसे पुरुषों के साथ होता है, जो अपने जीवन की अंतिम घड़ियाँ गिनते होते है। सोचने की बात है कि ऐसी अवस्था में वे कितने दिनों तक उन बालिकाओं का साथ दे सकते हैं।

रमेश ने इसी प्रकार बड़ी देर तक स्त्री-समाज की दुरवस्था का विविध भाँति से विवेचन करके रामा की शोकातुरता को बहुत-कुछ शान्त किया।

२७

रमेश को आज आफिस पहुँचते-पहुँचते बारह बज गये। इतनी देर में उनको आया देख कर व्यवस्थापक ने उनसे पूछा—रमेश बाबू, आजकल आपको बहुत देर हो जाती है!

रमेश ने उत्तर दिया—हाँ, आज कुछ विलम्ब हो गया है।

व्यवस्थापक—नही, आज ही नही, प्रायः आप नित्य देर करके आते हैं।

रमेश ने कुछ भी उत्तर न दिया। व्यवस्थापक की इस बात से उनका शरीर अवसन्न हो गया। रोंगटें खड़े हो गये। वह निर्निमेष दृष्टि से एक ओर को निहार कर रह गये।

व्यवस्थापक ने फिर कहा—इस प्रकार कब तक काम चलेगा?

रमेश के हृदय में ज्वाला-सी लग गई। मान-अपमान के नाम पर उनका कातर हृदय आज व्यवस्थापक की बातों को सुन कर सहम उठा। आज यह पहला दिन था जब कि नौकरी करते हुए दासता की कठिनाइयाँ उनके सम्मुख अपमान और तिरस्कार के रूप में खड़ी हो गईं। अपमान और अवमानना का सहन कैसे होता है, उन्होंने कभी इसका अनुभव भी नहीं किया था। उनके अन्तःकरण में लज्जा और रोष का आविर्भाव हो आया। स्थिर दृष्टि और अंगों की अकम्पन गति उनके रोष को अप्रकट न रख सकी।

व्यवस्थापक बातें कर के अपने काम में लग गया था। रमेश भी अपना काम करने लगे। यद्यपि वह नित्य की भाँति आज भी काम करते रहे, किन्तु किसी प्रकार उनको शान्ति न मिली। आफिस मे बैठे हुए उनका एक-एक क्षण कठिनाई से बीतने लगा।

काम करते-करते व्यवस्थापक की बातों की स्मृति हो आने पर रमेश काम करना भूल जाते; किन्तु फिर सोच-समझ कर काम करने लगते। जैसे तैसे आफिस का समय व्यतीत किया। सदा की भाँति समय समाप्त करके आफिस से घर चले आये। घर में एक चारपाई पर लेट रहे। उनको उदास देख कर रामा ने पूछा—आज जी कैसा है?

रमेश—कुछ नहीं, वैसे ही लेटे हैं।

रामा के पूछने पर भी रमेश ने कुछ न कहा। वह उस समय उनके हृदय की गति का कुछ भी अनुमान न कर सकी।

चारपाई पर लेटे रहने के पश्चात् रमेश के हृदय मे अनेक प्रकार की चिन्ता-तरंगें उठने लगी। सोचने लगे—मै देर करके गया तो क्या, और ठीक समय पर गया तो क्या, जब मेरे ऊपर काम का उत्तरदायित्व है, तब मैं किसी दिन यदि विलम्ब कर के भी जाऊँ, तो तब तक किसी को ऐसा कहने का क्या अधिकार है, जब तक काम में कोई त्रुटि नहीं मिलती। किंतु

यह कहना कि प्रायः विलम्ब हो जाता है, सरासर मिथ्या है। हाँ, मुझे कभी-कभी देर हो जाया करती है; किन्तु उसके साथही मै अपने उत्तरदायित्व का भी बहुत ध्यान रखता हूँ। यदि मै कभी देर करके पहुँचता भी हूँ, तो उतने ही समय में अपना समस्त कार्य सम्पादन कर डालता हूँ। जो विलम्ब होने की बात देख सकता है, वह क्या यह नही देख सकता कि काम पूरा हुआ या नही। इसके अतिरिक्त ऐसे दिन भी कितने ही आये होंगे, जिनमें समय के पूर्व ही मै आफिस पहुंच जाता रहा हूँ। किन्तु उसको किसी ने नहीं देखा। पर जब मुने तनिक-सा विलम्ब होजाता है, तो उसकी गणना बहुत-कुछ हो जाती है। इसका यही अर्थ है कि दासता बुरी है, और कुछ नही।

रमेश के हृदय में इस परतन्त्र जीवन के प्रति घृणा उत्पन्न होने लगी—मुझसे यह दासता होगी—मै यह परतंत्र-जीवन बिताऊँगा? झूठ है। जिसने मेरे साथ यह व्यवहार किया है—उसने आज मुझसे यह बातें की हैं, उसने मुझे पहचाना नही है। किसी समय वह मुझे पहचानेगा, और उसी दिन पहचानेगा, जिस दिन मैं उसकी बातो का उत्तर दूँगा। उस समय वह जानेगा कि एक स्वाधीन आत्मा कैसी होती है?

इस प्रकार कब तक काम चलेगा—व्यवस्थापक की यह बात याद करके रमेश का जी भारी होने लगा। उनके तिरस्कृत हृदय से बार-बार निकलने लगा—मैंने उसी समय इस बात का उत्तर क्यो न दे दिया? मुझसे बड़ी भूल हुई। उसकी इस कठोर बात का उत्तर यदि आज मै उसी समय दे दिये होता, तो इस समय मुझे तनिक भी दुःख न होता। इस प्रकार कब तक काम चलेगा—यह कह व्यवस्थापक ने जिस प्रकार मेरा अपमान किया है, इस आयु में तो ऐसा अपमान कभी नहीं हुआ। न जाने मेरा हृदय उस समय कैसे शान्त रहा—जिस प्रकार मैं उस समय बिना उत्तर दिये रह गया? क्या मेरा हृदय इतना भीरु और संकुचित हो गया है। क्या इतने दिनों की दास्यवृत्ति ने मेरे हृदय को इतना पत्थर बना दिया है कि आज वह इस कठोर व्यवहार को चुपके-चुपके सहन

करता रहा ? आज मेरे वह स्वतंत्र विचार कहाँ गये। क्या मेरा यह हृदय वह पहले का स्वतंत्र हृदय नहीं है। अथवा और कोई बात है। जो कुछ हो इस व्यवहार का उत्तर मुझे तुरन्त देना चाहिए था। उत्तर न देकर मैंने बड़ी से बड़ी भूल की है। आज की यह बात कोई नई बात नहीं है। उस दिन जब मै आफिस के समय में ही उठ कर सभा में चला आया था, तब दूसरे दिन जाकर जाना था कि मैनेजर साहब को वह बात भी अच्छी नही लगी। सम्भव है, मेरे चले आने पर मेरे अन्य साथियो से व्यवस्थापक देवता ने मेरे लिये कुछ बातें कही भी हो, और वे बातें मुझ तक न पहुँची हो, जब ऐसी ही बात है, तो क्या मै अपना जीवन इस प्रकार संकुचित और निरर्थक बिताना चाहता हूँ ? क्या मै उत्पन्न हुआ हूँ इसलिये कि संसार में जीवित रहूँगा और पशुओं की भाँति पेट भर कर ही संतुष्ट हो जाऊँगा ? मुझे कदापि यह जीवन स्वीकार नही। मै इसलिये ससार में जीवित नही। यह सम्भव नही हो सकता। मुझे सब कुछ स्वीकार है, जीवन की सभी कठिनाइयाँ सहय होगी, पर यह परतंत्रता नहीं।

रमेश को लेटे हुए बड़ी देर हो गई। रात के नौ बजने का समय हो गया। वह नित्य आफिस से लौट कर घर आने पर रामा से बातें करते थे, विनोद और मनोरञ्जन की बातें करते थे। पर आज उनको चारपाई पर उदास लेटे देख कर रामा बार-बार अधीर होने लगी।

रामा को अधीर होते देख कर भी रमेश ने कुछ न कहा। भोजन का समय हो जाने पर उसके कहने से भी उन्होने भोजन नही किया। उनके भोजन न करने पर उसने भी कुछ न खाया-पिया। दोनों खिन्न बने रहे।

२८

रमेश को नौकरी से त्याग-पत्र दिये हुए आज से पूरे चार मास बीत गये। पर नौकरी छोड़कर भी वह कानपुर में ही रहते है। यद्यपि उन्होंने

अभी तक कोई दूसरा व्यवसाय नहीं सोचा है; किंतु अब स्वतंत्र व्यवसाय करने का ही निश्चय कर लिया है। उनको यह विश्वास हो गया कि हम ऐसा उद्योग कर सकते है, जिसके द्वारा हमारा यह जीवन सरलता के साथ बीत सके। संसार-सुख की इच्छा रखने वाले, संसार के प्राणी-मात्र है। किन्तु वास्तव मे संसार-सुख कहाँ छिपा हुआ है और वह कैसे मिल सकता है, यह प्रश्न संसार की बहुत थोड़ी आत्माओं ने हल किया है। सिर-तोड़ परिश्रम करके धनोपार्जन के लिये इस जीवन के मूल्य को भुला देना और अपनी आत्म-मर्य्यादा को मिट्टी मे मिला कर केवल धन में ही सुख मानना एक बड़ी भारी भूल है। संसार-सुख, संसार का बड़प्पन, धन मे नहीं है, आत्म-मर्यादा में है। जिनको आत्म-मर्यादा का ज्ञान है, जिन्हे अपना व्यक्तित्व प्रिय है, वे कदापि अपने जीवन में परतंत्रता स्वीकार न करेंगे।

रमेश की आत्मा स्वभावतः एक अनोखी आत्मा है। उनकी जैसी स्वतंत्र और तत्व-वेत्ता आत्मायें कभी किसी बन्धन मे नहीं रह सकतीं। उन्हें धन की महिमा प्रिय नहीं होती, प्राकृतिक रहस्य उन्हें अपनी ओर खींचा करते है।

रमेश का अन्तःकरण एक विलक्षण अन्तःकरण है। उस अन्त.करण में साहित्य-सेवा, प्रकृति-प्रेम और तत्व-ज्ञान की आभा है।

नौकरी से त्याग-पत्र देना रामा को स्वीकार नहीं था। त्यागपत्र देते समय उसने दो-चार बातें अस्पष्ट कहीं, किन्तु उन बातों का प्रभाव रमेश पर कुछ न हुआ। त्याग-पत्र देने के पश्चात् जिस समय उसने उनके स्वतंत्र विचार सुने, उनसे उसका हृदय विदीर्ण-सा होने लगा। वह उन पर बहुत श्रद्धा, विश्वास और प्रेम करती थी, किंतु वह यह भी सोचती थी कि इस प्रकार स्वतंत्र जीवन बिताने से, बिना किसी उद्योग-धन्धे के, कैसे काम चलेगा। उसको अपनी स्थिति का ज्ञान था। वह जानती थी कि इसके अतिरिक्त अपने हाथ में और कोई बात नहीं है, यह साधुओं की-सी बातें एक गृहस्थ के लिये कैसे काम देंगी? उसके सम्मुख यह प्रश्न पैदा हो गया।

रामा और रमेश में प्रायः नित्य बातें होतीं। रमेश उसको अनेक प्रकार की बातें करके समझाते, धीरज देते, संसार की स्थिति और संसार के अनुभव तथा जीवन के महत्व समझाते, यथाशक्ति प्रयत्न करते, किन्तु वह उनके सम्मुख कुछ न कह सकती और उनकी समस्त बातें बैठे-बैठे सुना करती। उसकी समझ में नहीं आता कि इस प्रकार यह जीवन कैसे बीतेगा। उसने अब तक संसार का जहाँ तक अनुभव किया था, इस प्रकार की बातें उसके निकट बिल्कुल नवीन थी। उसको अपनी परिस्थिति अपने परिवार और पड़ोसियों तथा सम्बन्धियों के आगे पतित दिखाई देती। रमेश के सहवास से उसकी शिक्षा और विचार-शक्ति तथा संसार की परिस्थिति का ज्ञान बढ़ गया था। किन्तु अभी तक उसके हृदय से धन की ममता अथवा ऐश्वर्य-लालसा दूर नहीं हुई थी।

* * * *

रामा इधर कुछ दिनों से कानपुर में नहीं है। प्रतापनारायण आकर उसे रामनगर लिवा गये थे। उसके चले जाने पर रमेश और भी निश्चिन्त हो गये। राधामोहन से मिलने पर जब वह अपने स्वतंत्र विचार प्रकट करते, तो राधामोहन उनकी बातों का सम्मान करते। साथ ही कोई उद्योग-धंधा करने के लिये अनुरोध भी करते। यद्यपि राधामोहन बड़ी उत्सुकता के साथ उनको किसी व्यवसाय की सम्मति देते, पर वह केवल हाँ-हाँ करके टाल देते। उनकी समझ में नहीं आता कि जीवन का भार इतना गुरुतर बनाने की क्या आवश्यकता है। यह जीवन जितना ही सरल बनाया जाय, उतना ही सरल हो सकता है। जितनी ही आवश्यकतायें कम कर दी जायँ, यह जीवन उतना ही सरल और सुंदर बनता जायगा।

रमेश अपने घर में बैठे हुए थे। उसी समय पोस्टमैन ने आकर उनके हाथ में एक पत्र दिया। पत्र में लिखा था—

रमेश बाबू

पत्र आपका मिला। एक बार नहीं, दो बार नहीं, अनेक बार पढ़ा।

जितना ही उसे पढती हूँ, उतना ही मुझे संतोष मिलता है। मैंने अपने पिछले पत्रो में आपसे एक प्रार्थना की थी; पर आपने उसपर ध्यान नहीं दिया और न उस बात का उत्तर ही लिखा। आपको देखने की मेरी बड़ी इच्छा हो रही है। रामनगर में जिस दिन छोड़कर चले आये थे, आज तक फिर दर्शन नही दिये। वहाँ जो बातें की थी, क्या आप उन्हें इतनेही समय में भूल गये ? जी घबरा रहा है। मैं कल रामनगर चली जाऊँगी। इसलिए, एक ही प्रार्थना करती हूँ कि मुझे अनाथ समझ कर भूल न जावें, और पत्र पाते ही, जितनी शीघ्रता से आ सकें, दर्शन देने की दया करें।

हतभागिनी—तारा

पत्र पढ़ते-पढ़ते रमेश का हृदय अत्यन्त दुखी हो गया। पत्र के करुणा-पूर्ण शब्दो को पढकर उनका अन्तःकरण रो उठा—हाय ! आज तारा हत-भागिनी है ! क्या विधाता ने इसीलिए उसको उत्पन्न किया था ? इतना सुन्दर बनाकर क्या विधाता ने उसे संसार में हत-भागिनी देखना चाहा था ? क्या वह अब भी संसार मे जीवित रहेगी ? क्या उसे यह दुर्भाग्यमय जीवन भी स्वीकार होगा ?

कुछ समय चुप रह कर रमेश फिर मन-ही-मन सोचने लगे—तारा ने मुझे बुलाया है। मैं उसको देखूँगा, वह मुझे देखेगी ! जिस तारा को मैं हृदय से चाहता था, जिसको अधिक से अधिक प्यार करता था, और जिसके सौभाग्य की मन-ही-मन सराहना करता था, आज क्या उसीको मैं अनाथ देखूँगा ? उसने अपने को हत-भागिनी लिखा है ! यह पढ़ मेरा हृदय फटा जाता है। हाय ! वह क्या सचमुच हत-भागिनी हो गई।

रमेश के अन्तःकरण में दुःख का पारावार न रहा। नेत्रों से आँसुओं की बूँदें टपकने लगी। बढ़ती हुई अधीरता और व्याकुलता के साथ उनके हृदय में उसे देखने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हो गई। पुनः सोचने लगे—तारा कल रामनगर जाने के लिए प्रस्थान करेगी और दूसरे दिन पहुँच जायगी। अच्छा तो मुझे कब जाना चाहिये ? उसके रामनगर पहुँचते ही

मेरा पहुँचना ठीक न होगा। अतएव, मुझे उस समय पहुँचना चाहिये जब उसको रामनगर पहुँचे हुए कम से कम एक मास बीत जाय। किन्तु एक मास बीतेगा कैसे ? वह रामनगर पहुँच जायगी और मै एक मास के बीतने का पथ निहारूँगा ? क्या वह इतने दिनो तक मेरी प्रतीक्षा करेगी ? पत्र लिख कर उसने जितनी उत्सुकता प्रकट की है, उसका क्या यही फल होना चाहिये ?

इसी प्रकार की अनेक बातें सोच-समझ कर रमेश ने एक सप्ताह के बाद रामनगर जाना निश्चित किया।

२९

आज रमेश के रामनगर जाने का दिन है। बड़े उत्साह के साथ वह जाने के लिये प्रस्तुत हुए और निश्चित समय पर रामनगर के लिये प्रस्थान कर दिया।

स्टेशन पर पहुँचते ही उन्होंने देखा कि टिकट बँट चुका है। गाड़ी के आने में अधिक विलम्ब नही है। झटपट रामनगर स्टेशन का टिकट लिया।

रेल के यात्री प्लेटफार्म पर खड़े होकर गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। वह भी प्लेटफार्म पर आ गये। कुछ ही देर में आती हुई गाड़ी देख पड़ी। यात्रियो की बड़ी भीड़ थी। गाड़ी आ गई—गाड़ी आ गई—कहकर यात्री सचेत होने लगे। बात-की-बात मे गाड़ी आकर प्लेटफार्म के सामने खड़ी हो गई। जिन्हें गाड़ी पर जाना था, वह गाड़ी के भीतर पहुँचने लगे, और जिनको गाड़ी से उतरना था, वे उतरने लगे।

रमेश ने इण्टर क्लास का टिकट लिया था, इसलिये वह इण्टर क्लास में जाकर बैठ गये। थोड़ी देर में गाड़ी ने चलने की सीटी दी, और धक् धक् करके चल पड़ी।

गाड़ी के चलते समय रमेश की दृष्टि में तारा की मूर्ति थी। उसके पत्र की बातें, लिखने की शैली, और भावों का रंग-ढंग, एक-एक करके उनकी स्मृति में सभी बातें आने लगी। उसके सम्बन्ध में अनेक बातें सोचते-विचारते बहुत विलम्ब हो गया। उन्होंने जब देखा कि रामनगर स्टेशन करीब है, तो उतरने के लिये सावधान होने लगे।

रामनगर एक बहुत बड़ा ग्राम है। स्टेशन भी साधारणतया बड़ा है। वहाँ पहुँचते ही गाड़ी खड़ी हो गई। रमेश गाड़ी से उतर पड़े। और भी बहुत से यात्री उतरे। जब तक गाड़ी खड़ी रही, टिकट लेने वाले का कहीं पता न रहा। गाड़ी के चले जाने पर टिकट-मास्टर ने आकर टिकट लेना आरम्भ किया। यात्रियों की भीड़ एक साथ ही टिकट देकर फाटक से बाहर निकलने की चेष्टा करने लगी। फाटक पर यात्रियों की यह धक्का-मुक्की देख कर उन्होंन टिकट-मास्टर को टिकट दिया और प्लेट-फार्म की दूसरी ओर से बाहर निकल आये। बाहर जाकर देखा, इक्को की भीड़ लगी है। जो यात्री टिकट देकर बाहर आ गये थे, वे इक्के वालो से बातें कर रहे थे। वह भी एक इक्के पर बैठ गये। इक्के वाला रामनगर की ओर इक्का हाँकता हुआ चल पड़ा।

तीव्र गति के साथ इक्के ने रामनगर में प्रवेश किया। रमेश जैसे ही आगे बढ़ने लगे, उनके हृदय की गति उलटी होने लगी। वह कानपुर से चलते समय रामनगर पहुँचने के लिये उत्सुक और विह्वल-से हो रहे थे, किंतु वहाँ आकर प्रतापनारायण का द्वार जितना ही निकट आने लगा, उनकी उत्सुकता और विह्वलता न जाने कहाँ विलीन होने लगी। अभीष्ट स्थान पर पहुँचने के लिये अब उनमें न वह उतावली रही और न वह उद्विग्नता।

सफलता और अपना अभीष्ट जब तक दूर होता है, तभी तक मानव-हृदय में उसके प्रति उत्सुकता और विह्वलता होती है। जितना ही मानव-हृदय उसके निकट पहुँचता जाता है, उतना ही उसके प्रति उसमें उतावली कम होती जाती है।

प्रतापनारायण के द्वार पर आकर इक्का रुक गया। रमेश इक्के से उतरे। प्रताप ने आकर उनका सादर स्वागत किया, और कमरा खोलकर चारपाई बिछा दी। रमेश उसपर जाकर बैठ गये।

बात की बात मे रमेश के आने का समाचार घर में पहुँचा। चन्द्रा, राधारानी, रामा, तारा आदि सभीने रमेश के आने की बात सुनी। तारा तो सुनते ही चौक सी पड़ी। उसके हृदय में व्याकुलता-सी उठने लगी।

रमेश बाहर के कमरे मे बैठे हुए प्रतापनारामण के साथ बातें कर रहे थे। उनको आये हुए अभी कुछ ही समय हुआ था, कि एक बालक ने प्रतापनारायण से उनको घर मे लिवा लाने के लिए कहा। प्रतापनारायण कुछ ठहर कर उनके साथ भीतर चले।

कमरे से निकल कर घर की ओर पैर पढ़ाते ही रमेश के हृदय में धक्-सा हुआ—आज मै तारा को वैधव्य अवस्था मे देखूँगा। उनके समस्त शरीर मे सनसनी-सी उत्पन्न हो गई। वह प्रताप के साथ घर में पहुँचे। उन्होंने घर मे पैर रक्खा ही था कि तारा आर्त्त-स्वर में रो उठी।

तारा के हृदय-विदारक क्रन्दन के साथ साथ चन्द्रा और राधारानी के नेत्रों से भी अश्रुपात होने लगा। रमेश के लिये चारपाई बिछी थी। वह जाकर उस पर बैठ गये, और रोती हुई तारा को शान्त करने के लिये प्रयत्न करने लगे। उनके कर-स्पर्श से उनका क्रन्द-रव और भी अधिक हो गया। उसके हृदय का बाँध, जो अब तक रुका हुआ था, उनके सान्त्वना देते ही, टूट गया। वह फूट-फूट कर रोने लगी।

तारा के साथ राधारानी और चन्द्रा को रोते देखकर रमेश का अन्त.-करण भी विदीर्ण होने लगा। उन्होंने अनेक उपायों से तारा को समझाने की चेष्टा की, पर कुछ फल न हुआ। राधारानी और चन्द्रा भी उसको शांत करने के लिये समझाने लगी, किन्तु उसका क्रन्दन किसी प्रकार कम नही हुआ। बार-बार अपने को हतभागिदी कहकर उसका करुणा-पूर्ण बिलखना

उनको अस्थिर और विकल करने लगा। उन्होंने उसको अपनी ओर आकर्षित करके कहा—तारा, सुनो, रोओ नहीं, मेरी ओर देखो।

रमेश के यह कहते ही तारा का शोकोच्छ्वास और भी बढ़ गया। वह इस बार पहले से भी अधिक हृदय-विदारक करुणा के साथ जोर-जोर से रोने लगी। रमेश मन-ही-मन सोचने लगे—मैं क्या कहकर तारा के इस प्रकार जलते हुए हृदय को शीतल करूँ? जिस हृदय पर अकस्मात् विपत्ति की बिजलियाँ तड़प-तड़प कर गिरी है, उस हृदय को मैं किस प्रकार समझाऊँ?

रमेश का अन्तस्तल भी दु:खवेग से काँप उठा। राधारानी ने अपने आँचल से तारा के आँसुओं को पोंछ कर समझा-बुझाकर उसे शान्त किया। माता के अंचल में कितनी शान्ति होती है!

रमेश के पास चारपाई के निकट तारा, चन्द्रा और राधारानी बैठी हुई थी। बड़ी देर तक किसी ने किसी से कुछ नही कहा। रोते-रोते तारा का मुख लाल हो गया था। वह अभी तक सिसक ही रही थी। उन्होंने उसके मुखको टकटकी लगाकर देखा। उसके मुखमण्डल और समस्त शरीर में यौवनावस्था छलछला रही थी। उनको अपनी ओर निहारते देखकर उसके नेत्रो से फिर अविरल अश्रुपात होने लगा। उनके पैरो पर गिर कर फिर बड़े जोर से रो उठी। उसका दुबारा रोना सुनकर चन्द्रा और राधारानी के भी नेत्रों के आँसू न रुक सके। पैरो पर गिरते ही उन्होंने उसको उठा लिया और अत्यन्त दुःखी होकर उसको समझाने लगे—तारा, मेरी समझ में नहीं आता कि मै तुम्हे आज क्या समझाऊँ। तुम्हें परमात्मा ने अनाथ कर दिया है! तुम्हारी इस अवस्था और तुम्हारे इस हार्दिक दुःख को मैं पूर्णतः अनुभव करता हूँ किन्तु फिर भी मेरा हृदय इस समय तुमको समझाने में असमर्थ है। मैं जानता हूँ कि चाहे जितना रोया जाय, कुछ भी फल न होगा। इसलिए तारा, तुम रोओ नहीं, अपने हृदय को शान्त करो।

राधारानी ने कहा—बेटा, भाग्य की बात है, किसी का उसमें बस नहीं है। कौन जानता था........!

राधारानी यह कहकर रुलाई रोकते-रोकते चुप हो गईं। रमेश के मुख से कोई बात न निकली। बड़ी देर तक शान्त बैठी रहने के पश्चात् राधारानी ने चन्द्रा से कहा—पानी पीने के लिये मीठा ले आओ।

चन्द्रा ने पानी और मीठा लाकर रख दिया। राधारानी ने रुद्ध कण्ठ से कहा—बेटा, पानी पी लो। दूर से आए हो, प्यास लगी होगी।

रमेश ने बड़ी उदासी से उत्तर दिया—ना, मै कुछ न खाऊँगा।

राधारानी—बेटा, जो भाग्य मे लिखा होता है वही होता है। अपना चारा ही क्या है। हाय-हाय तो करना ही है।

रमेश ने कुछ भी उत्तर न दिया। राधारानी ने फिर कहा—पानी पी लो बेटा। तबियत खराब हो जायगी।

रमेश ने पानी पीना किसी प्रकार स्वीकार न किया। राधारानी चुप हो गईं। उनको किसी प्रकार मीठा खाते न देखकर तारा ने उनकी ओर निहार कर कहा—मीठा खाकर पानी पी लीजिये।

रमेश ने बड़ी उदासीनता से उत्तर दिया—मैं इस समय कुछ न खाऊँगा। यह समय खाने-पीने का नही है।

तारा ने पूछा—क्यों, खायेंगे क्यो नहीं?

रमेश ने कुछ न कहकर दुःखार्त्त दृष्टि से तारा के मुख की ओर देखा। उसकी इस गम्भीर चितवन मे दुःख और कातरता भरी हुई थी। वह समझ गई कि मेरा रोना सुनकर इनका जी दुखी हो गया है। इसीलिये इन्हें कुछ खाने की इच्छा नही रही। यह सोचकर उसने कहा—थोड़ा-सा खा लीजिए, मेरे कहने से ही खा लीजिए।

रमेश—तारा, मुझे विवश न करो। खाऊँगा नहीं।

तारा ने दुखी होकर कहा—मेरा जी कैसे मानेगा?

रमेश—अच्छा, अभी नहीं, फिर खाऊँगा।

इसके उपरान्त रमेश और राधारानी से बड़ी देर तक बातें होती रहीं।

राधारानी की अनेक लम्बी चौड़ी बातें सुनकर भी उनका कुछ कहने का साहस न हुआ। कुछ देर और बैठे रहकर वह बाहर चले आये।

३०

रमेश को रामनगर आये हुए कई दिन बीत गये। यह पहला ही अवसर है, जब उनको यहाँ इतने दिनों तक ठहरना पड़ा है। एक समय था, जब वह यहाँ पर एक-दो दिन से अधिक नही ठहरते थे। आज एक समय यह है कि यहाँ सप्ताह-के-सप्ताह बीत रहे है। उनके इतने समय तक ठहरने का कारण यह नही है कि वह आज कल बिना किसी उद्योग-धन्धे के है। बात यह है कि तारा उन्हें इतने समय तक रहने के लिये विवश कर रही है।

रमेश और तारा का सम्बन्ध पहले से ही कुछ घनिष्ट था। उसने जिस प्रकार उनको अपनाया और अपना प्रिय बनाने का प्रयत्न किया था, उसके फल-प्रतिफल मे उसके प्रति उनकी अन्तरात्मा में विशेष सहानुभूति और ममता उत्पन्न हो गई थी।

जिस दिन से तारा का वैधव्य समाचार रमेश के कानों में पहुँचा, उस दिन से उनका अन्तःकरण अतिशय दुखित और व्यथित हो गया था। इसलिये जिस दिन से वह रामनगर आये हैं तारा के साथ नित्य उठना-बैठना और बातें करना उनके लिये अनिवार्य हो गया है। कानपुर जाने का उन्होंने कई बार प्रयत्न किया, किन्तु तारा ने बारबार उनको रोक रखा।

आज रमेश को रामनगर आये ठीक तेरह दिन बीत गये। उनकी इच्छा बार-बार उन्हें कानपुर जाने के लिये विवश करने लगी। उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब आज मैं कानपुर चला जाऊँगा, मुझे आये हुए भी अधिक समय हो गया, और कानपुर जाने को आवश्यकता भी है। उन्होंने अपने निश्चय के अनुसार तारा से अत्यन्त विनम्र-शब्दों में कहा—तारा, तुम्हीं ने

मुझे इतने दिनों तक रोक रखा है। इसलिये तुम्ही से जाने की आज्ञा माँगता हूँ। आज मैं जाऊँगा। अब मुझे जाने दो। फिर कभी मिलूँगा। तारा ने तीक्ष्ण दृष्टि से रमेश की ओर देखा और सिर हिला कर अस्वीकार करने का संकेत किया। उसका सिर हिला कर अस्वीकार करना देखकर रमेश के हृदय में एक नवीन भावना उत्पन्न हो गई। वह मन-ही-मन सोचने लगे—इस प्रकार अस्वीकार करने का क्या अर्थ होता है। इसके भीतर जो भाव भरा हुआ है, उसका अर्थ कुछ दूसरा है, और मेरे तथा इसके बीच में जो सम्बन्ध है, उसका अर्थ कुछ दूसरा है। यद्यपि इसका मुझ पर कुछ स्नेह है, और मैं भी इसके इस जीवन से पूर्वापेक्षा बहुत अधिक सहानुभूति रखता हूँ किन्तु फिर भी इस स्नेह और सहानुभूति मे सभ्यता है।

तारा के सिर हिला कर अस्वीकार कर देने के गम्भीर भाव ने स्पष्ट प्रकट कर दिया कि उसने रमेश को कुछ और समझ रखा है। उनसे यह बात अप्रकट न रह सकी। अनेक क्षण-पर्य्यन्त सोच कर उन्होंने कहा—तारा, देखो, मुझे अब जाने दो। मेरे जाने के कई कारण है। एक तो कानपुर जाने की आवश्यकता है, और दूसरे यहाँ आए हुए बहुत दिन बीत गये।

तारा ने तीव्र प्रतिवाद करते हुए कहा—आए हुए बहुत दिन हो गये, तो फिर।

रमेश ने भाव-पूर्ण दृष्टिपात करके कहा—अब मैं आज चला जाऊँगा। फिर कभी आऊँगा।

तारा—फिर आने की बात तो उससे कहिए, जो आपको भेज रहा हो।

रमेश—और किससे कहूँगा। तुम्ही से कहता हूं, तुम्ही से कहूंगा।

तारा—जो भेजता है, उससे ऐसा कहा जाता है, मै तो भेज नही रही हूँ। फिर आप मुझसे ऐसा क्यों कह रहे है?

रमेश—भेजोगी तो, न भेजोगी तो, मैं आज जाऊँगा अवश्य।

तारा—बिना मेरी इच्छा के?

रमेश ने कुछ मुस्कुरा कर कहा—हाँ!

'हाँ' करते ही तारा ने चौंक कर रमेश की ओर देखा। अचानक रमेश को उसके नेत्रों और मुख-मण्डल पर प्यार, ममता, नम्रता और आश्चर्य के भाव दिखाई देने लगे। अनेक क्षण-पर्य्यन्त दृष्टिपात कर के उसने अपना मस्तक नीचा कर लिया।

रमेश ने तारा के भावों पर चकित होकर प्यार के साथ फिर कहा—क्यों, मुझे न जाने दोगी?

तारा ने स्नेह-भरी दृष्टि से रमेश की ओर देखा और सिर हिला कर फिर अस्वीकार किया। तब रमेश ने पूछा—क्यों?

तारा—मेरी इच्छा!

तारा के लगातार ये उत्तर सुन कर रमेश के हृदय में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प उठने लगे। उनको सोच-विचार करते हुए देख कर उसने कहा—जब से आप आये हैं, मुझे बड़ा संतोष मिला है। जिस घड़ी आप चले जायँगे, उस समय से मुझे अच्छा न लगेगा। इसी लिये बार बार रोकती हूँ।

तारा की बातों और व्यवहारों ने रमेश के हृदय को पानी-पानी कर दिया। रामनगर से लौट कर कानपुर जाने की प्रबल इच्छा होते हुए भी उनके हृदय में इतनी शक्ति नहीं रह गई कि वह अब उसकी उपेक्षा करके रामनगर से चले जा सकते।

रमेश रामनगर में ही रह कर तारा के आग्रह के अनुकूल अपना समय बिताने लगे। आते समय वह अपने साथ पढ़ने-लिखने की थोड़ी-सी सामग्री ले आये थे। दो-तीन हिन्दी की पुस्तकें और अंगरेजी 'माडर्न रिव्यू' की एक प्रति उनके साथ में थी। रामनगर में इतने दिनों तक

रह कर उनके पढ़ने का उन्हें अवकाश ही न मिला। उनका अधिकांश समय तारा के पास बैठने-उठने और उससे बातें करने में बीतने लगा।

रामनगर में पहली बार जब तारा से रमेश की भेट हुई थी, तब उसकी व्यावहारिक गम्भीरता उनके साथ अधिक हो गई थी। समस्त रात बातें कर के उसने मानो सश के लिए एक मार्ग प्रशस्त कर दिया था। इस बार भी वह जब से आये हैं, तारा रात मे उनके पास बैठ कर बहुत समय तक बातें करती है।

रमेश के शुद्ध जीवन और पवित्र व्यवहारो से कोई परिचित आत्मा अपरिचित नहीं थी। वह यद्यपि एक नवयुवक हैं, पर उनमें असामान्य गम्भीरता और सदाचार है। उनको यद्यपि अभी संसार का बहुत कम अनुभव है, तथापि उनके ज्ञान, विचार, व्यवहार और आचार ने दूसरे हृदयों पर श्रद्धा और विश्वास रूप में असाधारण अधिकार पैदा कर लिया है।

रमेश सदा से समय का सदुपयोग करते आये हैं, जब कभी उनका थोड़ा समय भी व्यर्थ मे जाता, तब उनके हृदय को बहुत बड़ा दुःख होता था। रामनगर आते समय भी इसी लिए वह कुछ पुस्तकें और पढ़ने-लिखने की सामग्री लेकर आये थे। यह सब इस लिए कि समय मिलेगा, तो पुस्तकों का स्वाध्याय करेंगे और कुछ लिखेंगे। पर रामनगर में आकर उनकी अवस्था कुछ दूसरी ही हो गई। रात और दिन का अधिकांश समय तारा से मिलने, उसके पास बैठने और उसके साथ नाना प्रकार की बातें करने में बीत जाता। जो समय मिलता, उसमें रामनगर के कितने ही आदमी उनको देख कर आ जाते और उनसे बातें करते रहते। उनका सारा समय इसी प्रकार व्यतीत होने लगा।

अपने समय का दुरुपयोग देख कर रमेश को खेद होता। वह बार-बार सोचते—मुझे क्या करना चाहिए। किन्तु मानसिक पश्चात्ताप होते हुए भी वह कुछ निर्णय न कर पाते। उनका जीवन एक प्रकार से अनियमित अतिवाहित होने लगा। जिस समय वह तारा के निकट होते, उस समय

समय संसार की अन्य समस्याएँ उनके पास भी न फटकती। लिखना-पढ़ना, देश और समाज, उतनी देर के लिए, उनसे बहुत दूर पर जा पहुँचता।

किन्तु जिस समय वह तारा से पृथक होकर अपनी ओर देखते, उस समय उनको अपने इस अनियमित-जीवन पर पश्चात्ताप होता, उनका अन्तःकरण दो विभिन्न दिशाओं की ओर आकर्षित होने लगता, और दोनों ही आकर्षण समय-समय पर अपनी-अपनी शक्ति का परिचय देते; किन्तु कोई एक आकर्षण, दूसरे आकर्षणको पराजित करके, उनकी अन्तरात्मा को अपनी ओर आकर्षित न कर सका।

३१

रात के ग्यारह बज चुके है। चतुर्दिक स्तब्ध निशा सन्न-सन्न हो रही है। समस्त दिन का श्रमित संसार गम्भीर निद्रा मे विश्राम ले रहा है।

प्रतापनारायण के घर मे एक लालटैन जल रही है। इसी लालटैन के प्रकाश में एक चारपाई के निकट बिछीहुई चटाई पर तारा बैठी हुई है। घर के दूसरे भागों में चन्द्रा, राधारानी आदि सोई हुई है। रमेश और तारा मे बड़ी देर से बातें हो रही हैं। तारा कह रही है—मेरे हृदय में आपका बहुत बड़ा विश्वास है। आपको छोड़कर संसार मे मेरा कभी कोई नही रहा।

रमेश ने ध्यान-पूर्वक तारा की बात सुनी। उसके हृदय से निकले हुए यह शब्द सुनकर उसके हृदय की गति तीव्र हो उठी। वह फिर बोली—आप ही मेरे पिता है, आप ही भाई है, आप ही मेरे सर्वस्व हैं। जो बात मैं भाई से, माँ से, और भावज से नहीं कह सकी, उसको आपसे प्रकट करने के लिए मेरा हृदय मुझे विवश कर रहा है।

रमेश ने बड़ी शान्ति के साथ तारा के हृदय की गति का अनुभव करते हुए कहा—तारा, जिस प्रकार तुमने आरम्भ से लेकर अबतक मुझे अपनाया है, उसी प्रकार मैं भी तुमसे किसी प्रकार दूर नहीं रह सका। मैं यह भी

स्पष्ट बता देना चाहता हूँ, कि तुमने मेरे हृदय मे बहुत बड़ा स्थान कर लिया है। मैं तुम्हारा हूँ, मेरे ऊपर तुम्हारा सब प्रकार का अधिकार है।

तारा ने कहा—मै आज कुछ कहना चाहती हूँ।

विस्मित नेत्रों से तारा की ओर देखते हुए रमेश ने कहा—तारा, मै एक ही बात उत्तर मे कहना चाहता हूँ। तुम यदि मुझे अपना समझती हो, तो मेरे साथ संकोच का त्याग कर दो।

स्नेह-दृष्टि से रमेश की ओर एक बार देख कर तारा ने पूछा—संकोच छोड़ कर ?

तारा के मुख-मण्डल में करुणा के भाव झलकते हुए देख कर रमेश ने कहा—हाँ, संकोच छोड़ कर।

तारा—यदि मै कुछ अनुचित बात कहूँ ?

रमेश—तो मै उसे अपने हृदय में स्थान दूँगा और क्षमा कर तुम्हें प्यार करूँगा।

रमेश की बात सुनकर तारा ने उनकी ओर देखा, और बात-की-बात में अपना मस्तक नीचा कर लिया। उसके नेत्रो से कितने ही अश्रु-विन्दु निकल कर पृथ्वी पर टपक पड़े। अनेक क्षण चुप रहकर अपनी आँखों के आँसुओ को पोछते हुए तारा ने कहा—धीरजपुर मे मेरे जेठ हैं, जेठानी हैं, ससुर है, और अनेक नौकर-चाकर हैं। एक दिन जेठानी राधिका ने जेठ को बुलाकर कहा.......

तारा अधिक न कहकर स्तब्ध हो गई। रमेश उसकी बात बड़े ध्यान से सुन रहे थे। उसको चुप देखकर आगे कहने के लिए उन्होने संकेत किया। तारा ने कहा—राधिका कहती थी, कल रात में तारा और देवीचरणको मैने एक चारपाई पर देखा है।

तारा की बात सुनते ही रमेश का हृदय काँप उठा। उन्होंने अकस्मात् प्रश्न किया—देवीचरण कौन ?

तारा—धीरजपुर के एक ब्राह्मण का लड़का है।

रमेश—उसकी अवस्था क्या है ?

तारा—लगभग बाईस-तेईस वर्ष की होगी ।

रमेश यह सुनकर चुप हो गये । तारा ने फिर कहा—जेठ ने यह सुनकर बड़ा उत्पात किया । ससुर को बुलाकर कहा और बाहर भी नौकर-चाकरों के सामने न जाने कितना उपद्रव किया ।

रमेश ने सोचा—जिस बात की मैंने कभी स्वप्न मे भी आशंका नहीं की थी, आज उसे अपने कानो से सुन रहा हूँ । वह यह सोच ही रहे थे कि तारा ने फिर कहा—वहाँ इस प्रकारके उत्पात और व्यवहार होते है । मुझे अब आप बताइए, मैं क्या करूँ ?

रमेश—जो कुछ मै पूछूँगा, क्या तुम मुझसे स्पष्ट बता सकती हो ?

तारा ने शीघ्रतासे उत्तर दिया—हाँ ।

रमेश—यह दोषारोपण ठीक था ?

तारा—कभी नहीं ।

रमेश—तो फिर क्या बात थी ?

तारा—देवीचरण बहुत पहले से घर में आते-जाते हैं । घर में आने-जाने मे मैं भी उनसे बोलती और बातें करती थी । मैं जो पत्र लिखती थी, उनके हाथ से ही डाक-घर भेज देती थी । उन्हीं के द्वारा डाकघर से पोस्टकार्ड तथा लिफाफा मँगा लेती थी । उस दिन सन्ध्या समय वह आकर मेरी चारपाई पर बैठ गये थे । उस दिन....... ।

रमेश ने बात काटकर पूछा—उस दिन, सन्ध्या को, कितने बजे का समय था ?

तारा—नौ-दस से अधिक नहीं बजा था ।

रमेश—उस समय वह कैसे आये थे ?

तारा—उस दिन मैंने दो पत्र लिखे थे । उन्हीं पत्रों को उनके द्वारा डाकघर भेजे थे । कुछ पोस्टकार्ड भी मँगाये थे । वही पोस्टकार्ड देने आये थे ।

रमेश—उस समय घर में और कोई नही था ?

तारा—राधिका उस समय रसोई-घर में भोजन बना रही थी। जब वह रसोई-घर से निकली तो देवीचरण चारपाई पर बैठे थे, और मैं चारपाई के पास भूमि पर।

रमेश—राधिका ने कब कहा ?

तारा--दूसरे ही दिन प्रातःकाल, सूर्य्य निकल चुके थे, धूप फैल रही थी। उस समय जेठ ने आकर उत्पात किया।

रमेश—उत्पात के पहले कभी कोई बात उन्होने तुम्हें समझाई ?

तारा—कभी कुछ नही।

रमेश के अन्तःकरण में अनेक भावनाएँ उठने लगी--यह बात क्या है ? यदि राधिका की बात सच्ची है, तो क्या तारा से ऐसी आशा है ? यदि वास्तव में उससे कोई भूल होती, तो क्या वह मुझसे स्पष्ट न कह देती ? उसको यदि अपनी बात छिपानी ही होती, तो फिर वह मेरे सामने यह बात क्यो छेड़ती ? ऐसी अवस्था मे भी, यदि मान लिया जाय कि राधिका ने जैसा कहा, बात वैसी ही ठीक है, तो क्या राधिका और घर के लोगो को जनसाधारण में ऐसी बात की डुगडुगी पीटनी थी ? यदि राधिका की बात सच्ची थी, तो घर के लोगों का यह कर्त्तव्य था कि उसे केवल वे ही जानते, और तारा को सचेत करने का प्रयत्न करते। किन्तु जब वे ठीक इसके प्रतिकूल है, तो इसके यही अर्थ होते है कि इस प्रकार की जन-श्रुति उत्पन्न करने की उन सबकी केवल अभिलाषा थी, और कुछ नही।

राधिका और उसके स्वामी लोकनाथ के इन व्यवहारो को सुनकर रमेश के हृदय में ज्वाला-सी जलने लगी। बड़ी देर तक सोच-विचार कर उन्होंने देखा कि तारा के मुख-मण्डल पर स्वतंत्रता और निर्भयता स्पष्ट झलक रही है।

यह देखकर उनके हृदय में एक प्रकार का आश्चर्य उत्पन्न हो गया—

जिसके आचार-व्यवहार की इन बातों का निर्णय होता हो, उसके मुख पर तनिक भी संकोच और उद्विग्नता की आभा न हो, यह क्या बात है ? उनका विस्मय एक नवीन रूप में परिणत होता गया। अनेक क्षण पश्चात् उन्होंने तारा के अत्यन्त निकट होकर धीरे से कहा—तारा, तुम अपने हृदय की बात मुझसे कह सकती हो ?

तारा ने कुछ भी उत्तर न दिया। रमेश ने कुछ सोच कर फिर कहा—क्यों, कुछ संकोच है ?

तारा ने कहा—कुछ नहीं

रमेश—फिर क्यों नहीं कहती ? मैं तुम्हारी मानसिक अवस्था स्पष्ट जानना चाहता हूँ।

तारा ने कुछ भी उत्तर न दिया। वह सोचने लगी—मेरे मनकी क्या अवस्था है—रमेश क्या जानना चाहते है ? संकोच ! संकोच कैसा ? जो हृदय अपना हो चुका है, जिस हृदय पर श्रद्धा और विश्वास की इतनी मात्रा है, उस हृदय से संकोच ? नही।

तारा को शान्त देख कर रमेश ने साहसपूर्वक अपने भावों को सरल करके पूछा—तारा, तुम्हारा मन किसी समय चंचल होता है ?

तारा ने सकुचित दृष्टि से रमेश की ओर देखा और निर्भय होकर कहा—नहीं।

रमेश ने उसकी ओर तीव्र दृष्टिपात करके कहा—अब भी क्या तुम्हारे हृदय मे संकोच है ?

तारा ने फिर निर्भय होकर कहा—कुछ भी नहीं।

रमेश के हृदय में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प उठने लगे। तारा के हृदय की आलोचना, लोकनाथ और राधिका के व्यवहारों का दृश्य, उनके नेत्र-पथ मे बार-बार घूमने लगा। वह अचानक उठ कर खड़े हो गये, और कहने लगे—अब मैं सोने जाता हूँ। तुम भी सो जाओ। रात अब अधिक नही है।

तारा ने रमेश की धोती पकड़ कर विनम्र भावसे बैठने के लिये संकेत किया। रमेश उसकी ओर निहार कर रह गये। उनकी यह गति देख कर तारा ने कहा—क्यों सोने जा रहे हैं ? नीद लग रही है ?

नीद तो नही है, पर रात बहुत कम शेष है, कुछ सो लेना अच्छा होगा—कहते हुए रमेश चारपाई पर बैठ गये।

तारा ने कहा—थोड़ी देर और बैठ कर वातें कीजिये।

रमेश ने कुछ मुस्कुरा कर कहा—थोड़ी देर में तो रात ही समाप्त हो जायगी।

तारा ने विकल होकर कहा—मुझे तो नींद नही है।

रमेश—तुम्हें नीद नही है ?

तारा—ना।

रमेश—क्यों ?

तारा—जाने क्यों नही है।

रमेश ने विस्मित होकर तारा की ओर देखा। वह चारपाई पर एक हाथ रखे हुए बैठी थी। रमेश चारपाई पर लेट गये। तारा का हाथ पकड़ कर उन्होंने अपने वक्षस्थल पर रख लिया। उसके सुकुमार हाथ का वक्ष-स्थल में स्पर्श होते ही उनको अपने हृदय की एक विशेष अवस्था का अनुभव हुआ। उन्होंने करुण-स्वर से कहा—तारा, मेरे हृदय में तुम्हारे लिए बहुत बड़ा सम्मान है। किन्तु आज जिस प्रकार मेरा हृदय दु:ख से विदीर्ण हो रहा है, मै ही उसे जानता हूं। आज यह बातें करके बड़ा संकोच हो रहा है कि मैंने कही तुम्हारे हृदय को दु:खित न किया हो। तारा, तुम मुझे क्षमा करो।

यह कह कर रमेश ने तारा की ओर देखा। उसके नेत्रों से टप-टप करके अश्रु-बिन्दु टपक रहे थे। रमेश ने अपनी चादर से उसके अश्रु-मोचन करते हुए कहा—तारा, तुम दुःख न करो। तुम मेरी हो, और मै तुम्हारा हूं। तुम्हारे हृदय पर मेरा पूर्ण विश्वास है।

तारा को समझा-बुझाकर रमेश उठकर जाने लगे। तारा ने अश्रुपात करते हुए कहा—मुझे रोते हुए छोड़ कर कहाँ जाते हो?

तारा की यह बात सुन कर रमेश फिर ठिठक गये। मुझे रोते हुए छोड़ कर कहाँ जाते हो—इस बात ने उनको किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया। अनेक क्षण तक खड़े रह कर उन्होंने अपने हृदय को सम्हाला और एक बार आसुओं से भीगे हुए नेत्रों से उसकी ओर देखते-देखते द्वार की ओर प्रस्थान किया।

तारा का दुःखावेग प्रचुर परिमाण में बढ़ कर उसको कातर और विकल करने लगा। रमेश के चले जाने पर वह उठ कर, चारपाई पर पेट के बल लेटे हुए, आँसुओं से तकिये को भिगोती रही।

३२

कल रात को तारा से जो बातें हुई थी, आज सारा दिन हो गया, रमेश उन्हें एक घड़ी के लिए भी न भूले। तुम मुझे अकेले छोड़ कर जाते हो—तारा के ये शब्द उठते-बैठते, चलते-फिरते, प्रत्येक समय उनको अपने नेत्रपथ मे दिखाई देते रहे। निर्जन और नीरव समय में किसी स्थान पर होते ही उनको सहसा बोध होता, मानो रात का वही समय है, तारा से विलग होकर मै आ रहा हूँ और वह क्रन्दन के मन्द-स्वर में कह रही है—मुझे रोते हुए छोड़ कर जाते हो!

तारा के इन शब्दो में जितना आकर्षण, जितनी ममता और जितना प्यार भरा हुआ है, भली प्रकार उसे अनुभव करते हुए वह मन-ही-मन सोचने लगे—तारा ने मुझे आज तक कभी 'तुम' नही कहा था, किन्तु उसका यह 'तुम' शब्द जितना मुझे प्रिय जान पड़ा है, 'आप' में मुझे कभी उतना प्यार का अनुभव नही हुआ। भाषा के बड़े-बड़े पण्डितो और विद्वानो ने 'आप' का अर्थ आदरसूचक कहा है। मै भी आज तक समझे हुए

था, कि 'आप' बड़प्पन और महत्त्व तथा गौरव के लिये व्यवहृत होता है। किन्तु तारा के मुख से 'तुम' इतना प्यारा मालूम हुआ है, जितना उसके मुख से 'आप' सुनकर कभी प्यार नही मालूम हुआ था। इसका कारण क्या है? उसने मुझे 'आप' न कहकर 'तुम' क्यों कहा?

रमेश ने बड़ी गम्भीरता के साथ इस पर विचार किया—अब तक मुझ में और तारा में कैसा सम्पर्क था, और आज कैसा है? किस परि-स्थिति और किस सम्बन्ध में वह सदा 'आप' कहती रही, और किस अवस्था में उसने 'आप' के स्थान पर 'तुम' का व्यवहार किया?

बड़ी देर तक सोचते रहने पर रमेश को सहसा ज्ञान हुआ—तारा में और मुझमें पहले दूर का सम्बन्ध था। जब तक मेरे और उसके बीच में इतनी प्रियता नही हुई थी—जब तक उसको मैं दूसरा और वह मुझे दूसरा समझती रही, तब तक उसने मुझे 'आप' कहा था। किन्तु जिस समय उसकी आत्मा का मेरी आत्मा से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध हुआ—जिस समय उसके हृदय ने मेरे हृदय को आकर्षित करके अपने में सम्मिलित कर लिया उस समय उसने मेरे लिये 'तुम' का व्यवहार किया। हृदय के आन्तरिक प्यार और प्रकृत स्नेह से 'तुम' उत्पन्न हुआ है। इसी लिये उसका यह 'तुम' शब्द मुझे अत्यन्त प्यारा मालूम हुआ है।

रमेश फिर सोचने लगे—भाषा के विद्वान और पण्डित, जो 'आप' शब्द को गौरव-बोधक बता रहे है, कितनी बड़ी भूल में हैं? मै भी आज तक भूल में था। सचमुच 'आप' और 'तुम' का व्यावहारिक अन्तर वह नही है, जो आज-कल मैने समझ रखा था। वास्तव में 'आप' व्यवहृत होता है उसके लिये, जो पराया होता है, जिसका हृदय एक अन्य हृदय होता है, और जिसके साथ अपना कोई विशेष सम्बन्ध नही होता। किन्तु जो हृदय अपना हृदय होता है, जिसमें अपनापन बोध होता है, जिसके साथ विशेष प्रीति और विशेष सम्बन्ध होता है, उसके लिये कभी 'आप' व्यवहृत न होकर 'तुम' व्यवहृत होता है।

रमेश के हृदयमें एक उलझन-सी उठने लगी—यह समझना बड़ी भारी भूल थी कि 'आप' गौरवसूचक है। किसी भी भाषा के साहित्य में ईश्वर के उपासकों ने भगवान को 'आप' नहीं कहा। सभी स्थानों पर 'तू' और 'तुम' व्यवहृत हुआ है। ईश्वर से बढ़कर उपासकों के लिये दूसरा कौन प्यारा हो सकता है? निश्चय 'आप' अन्य के लिये और 'तुम' अपने लिये व्यवहृत होता है।

सन्ध्या समय की ब्यालू करके छत पर खुली वायु में चारपाई पर बैठे हुये रमेश के हृदय में यही आलोचना-प्रत्यालोचना हो रही थी। तबतक पान लेकर तारा आती हुई देख पड़ी। उसके आ जाने पर उन्होंने पान लेकर कहा—जानती हो, कितनी देर से मैं यहाँ पर बैठा हूँ? कल बैठ कर थक गई होओगी?

तारा ने मुस्कुरा कर कहा—नहीं, मैं खाने लगी थी। सोचा कि खा पीकर जाऊँ, जिसमें फिर लौटना न पड़े।

पान देकर तारा ने अपनी चटाई बिछा दी, और उसी पर बैठ गई। उसके बैठते-ही-बैठते उन्होंने उसकी मुस्कुराहट देखकर पूछा—क्या बात है?

तारा ने हँसकर कहा—कहाँ क्या बात है?

रमेश—तुम्हारे मुख में मुस्कुराहट अभी देख पड़ी थी। मैं समझा, कुछ सोच कर हँसी हो।

तारा—क्यों, वैसे नहीं हँसा जाता?

रमेश—विना कारण संसार में कुछ नहीं हुआ करता। हँसी का भी कोई कारण होता है।

रमेश की इस बात का तारा को कोई खण्डन न सूझा। उसके कुछ उत्तर न देने पर उन्होंने फिर कहा—बताओ, क्या बात है?

तारा के मुख की हँसी, जो भीतर-ही-भीतर छिप जाना चाहती थी, प्रकट होकर विकसित हास्य के रूप में परिणत हो गई। उसने चारपाई के

नीचे की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा—पहली बार जब यहाँ तुम्हारे आने का समाचार था, और जिस दिन तुम आये थे, उसी दिन आने के पहले घर में भावज और माँ घर का काम-काज करते हुए तुम्हारी बातें कर रही थीं। उस समय बातें करते हुए भावज ने तीव्र स्वर से कहा था—माँ, रमेश बाबू की विदा के समय उनके सम्मानार्थ क्या देना होगा? माँ ने कहा, यह तो तुम्हीं निर्णय करो। तब भावज ने कहा कि मैं इस बार रमेश बाबू के सम्मानार्थ तारा को समर्पण कर दूँगी। आज अचानक उसी बात के याद आ जाने से हँसी आ गई।

रमेश ने मुस्कुरा कर कहा—यदि चन्द्रा ऐसा करती, तो तुम्हें स्वीकार होता?

तारा ने कुछ भी उत्तर न दिया। रमेश ने फिर पूछा—क्यों बोलो, तुम्हें स्वीकार होता या नहीं?

तारा ने फिर भी कुछ उत्तर न देकर एक बार रमेश की ओर देखते हुए अपना मस्तक नीचा कर लिया। उसका हृदय यद्यपि मानसिक वेदना से व्यथित हो गया है, और क्रन्दन तथा अश्रुपात ही उसके व्यथित हृदय का एक-मात्र सहारा रह गया है, तथा बाल-यौवन होने के कारण उसके हृदय से मनोरंजन और विनोद अभी दूर नहीं हुआ।

एक श्वेत वस्त्र मे बँधी हुई कोई वस्तु खोलते हुए तारा को देख कर रमेश ने पूछा—इसमें क्या है?

तारा ने खोल कर कहा—थोड़ा सा मीठा है।

रमेश—यह कैसा मीठा?

तारा—जब मै यहाँ आई थी, तो दो रुपये का मीठा ले आई थी, सब को देने पर इतना शेष रह गया था, इसलिये इसे मैने सन्दूक में रख छोड़ा था। आज जब मै पान लेकर यहाँ आने को थी, उस समय मुझको इसकी याद आ गई। इसलिये मैं लेती आई कि यह तुम्हारा भाग है, तुमको यह खाने के लिये दूँगी।

रमेश ने कहा—इसके खाने का तो यह समय नहीं है।

तारा—थोड़ा सा खा लो।

रमेश—अच्छा, यदि नही मानती हो, तो लाओ थोड़ा-सा खा लूँ। तुम्हारी चीज को आदर के साथ लेना चाहिये।

रमेश ने यह कहकर हाथ बढ़ाया और उसके लेने का प्रयत्न किया। किन्तु तारा ने उनके हाथ में मीठा न देकर कहा—मै अपने हाथ से खिलाऊँगी।

तारा की बात सुनते ही चौंक कर रमेश ने उसकी ओर देखा। उसने अपने दाहिने हाथ में मीठा लेकर उनको खिलाने की चेष्टा की। उन्होंने उसका हाथ पकड़ लिया, और तीव्र दृष्टिपात के साथ उसके इस व्यवहार का विरोध किया। किन्तु उसपर कुछ भी इसका प्रभाव न पड़ा। उसने फिर खिलाने का प्रयत्न किया। किन्तु उन्होंने रोक कर कहा—तारा, तुम्हें क्या हुआ है?

तारा—क्यों? हुआ क्या है?

रमेश ने कुछ भी उत्तर न देकर उसके मुख-मण्डल पर भावपूर्ण दृष्टि-निक्षेप किया। उसने उनके दृष्टि-पात का भाव समझकर अपना हाथ खींच लिया—अपनी आँखें नीची कर लीं।

रमेश ने एकबारगी तारा के मुख-मण्डल पर उदासीनता का भाव देख कर उसका हाथ पकड़ लिया। बोले—तारा, उदास क्यों होती हो?

तारा ने कुछ उत्तर न दिया। रमेश ने फिर पूछा—तारा, बोलोगी नहीं।

तारा ने कहा—तुम मेरे हाथ का मीठा नहीं खाओगे?

रमेश से उत्तर देते न बना। उनकी अज्ञानावस्था में ही उनके मुख से निकल पड़ा—खाऊँगा।

तारा ने अपने हाथ से एक बार रमेश को मीठा खिलाकर शेष मीठा उनके हाथ में दे दिया। उन्होंने पूछा—बस?

उत्तर में प्यार और हर्ष के साथ तारा ने केवल मुस्कुरा दिया। रमेश का सर्वाङ्ग शिथिल हो गया। हृदय की एक अप्रत्यक्ष भावना जाग्रत हो उठी। कुछ देर के लिए वह अपने को भूल गये।

अनेक क्षण पर्यन्त अन्यमनस्क-भाव से स्थिर बैठे रह कर उन्होंने तारा की ओर देखा। उसका समस्त शरीर यौवन के पूर्ण विकास से उद्दीप्त हो रहा था। उसकी ओर निर्निमेष दृष्टि से देखा। उसने भी उनको देखा। उन्होंने उसका कर-स्पर्श करते हुए उसको धीरे-धीरे चारपाई पर खीच लिया।

चारपाई पर आकर तारा ने रमेश की ओर निश्चेष्ट-भाव से देखा। रमेश ने उसको हृदय से लगा लिया, और एक बार उसके मुख का चुम्बन किया! किन्तु तुरन्त सम्हल कर उसकी ओर स्नेह-स्निग्ध दृष्टि से देखते ही अन्तःकरण संकोच और भय से काँप उठा।

रमेश ने आकाश की ओर देखा। निर्मल नभोमण्डल में शुक्ल-पक्ष की एकादशी का सुन्दर प्रकाश था। चमकीले तारे छिटक रहे थे।

चारपाई पर लेटे हुए रमेश को तारा ने स्थिर दृष्टि से देखा। उनका हृदय भय और विषाद से धक-धक कर रहा था। वह चारपाई से उतर कर चटाई पर बैठ गई।

कुछ देर तक निःशब्द लेटे रहने के पश्चात् रमेश ने तारा का सुकुमार हस्त-स्पर्श करते हुए अत्यन्त संकुचित भाव से कहा—तारा, तुमने मुझे रोका नही?

तारा ने कुछ उत्तर न देकर अपना मुख नीचा कर लिया। रमेश ने फिर उत्सुकता के साथ पूछा—तारा, बोलो, तुमने मुझे रोका क्यों नहीं?

अनेक बार विवश करने पर तारा ने रमेश की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखकर कहा—तुम्हें ... इस जीवन में?

उत्तर सुनते ही रमेश के हृदय की गति अत्यन्त तीव्र हो उठी। अन्तः-करण में अनेक भावनाओं का आन्दोलन होने लगा।

३३

जिस दिन रमेश ने नौकरी से त्याग-पत्र दिया था, रामा के हृदय में एक प्रकार धक्का सा लगा था। पर वह अपने हृदय की बात उनसे कहने का भी साहस न कर सकी थी। रामनगर में आकर उनके इतने दिनों तक बने रहने का कोई कारण भी उसकी समझ में न आया। इन दिनो में उन्होंने किसी दिन भी उससे मिलकर कोई ऐसी बात नहीं कही, जिससे उसके हृदय को संतोष होता।

रामा के हृदय मे तरह तरह की उलझनें पैदा हो रही थी। उसका हृदय अस्तव्यस्त हो रहा था। उन्ही दिनो प्रायः आधी रात को अचानक जाग उठने पर जब रमेश और तारा को अस्फुट-स्वर में बातें करते हुए देखती, तो उसके हृदय पर एक नवीन आघात पहुँचता। उसने यह भी अनुभव किया कि मेरे जाग पड़ने पर दोनों की बातचीत बंद हो जाती है।

रामा के हृदय में संदिग्ध भाव का आविर्भाव हुआ। कई दिनों तक वह अपनी भावनाओं को अपने हृदय में ही देख कर सोच-विचार करती रही। किन्तु जितना ही समय बीतने लगा, उसका सन्देह दृढ़ होता गया।

रमेश में रामा की जैसी श्रद्धा-भक्ति पहले थी, वैसी अब न रही— न वह प्रीति, न वह श्रद्धा, न वह विश्वास का भाव।

तारा के साथ रमेश के बोल-चाल और व्यवहार-बर्त्ताव को रामा नित्य परखने लगी। दोनों को पास बैठे देखकर उसके अन्तःकरण में वेदना-सी होने लगती। फलतः अप्रकट रूप से वह उनके व्यवहारो और बर्तावों को जानने का प्रयत्न करने लगी।

संसार की दृष्टि, अप्रत्यक्ष रूप में, रमेश को तारा के साथ हँसते और उसका हाथ पकड़े हुए रामा ने अनेक बार देखा। अनेक बार रमेश के पास बैठी हुई तारा का अचानक झिझकना भी देखा, और स्पष्ट देखा।

इसी प्रकार की और भी अनेक घटनाओं ने उसके हृदय को पर्याप्त संदिग्ध बना दिया।

वही तारा जो रामा के हृदय की अत्यन्त प्यारी थी, काँटा-सी खटकने लगी; और उन्हीं रमेश को—जिनमे रामा का हृदय प्रभात पुष्प की तरह विकसित रहा करता था—देख-देखकर रात-दिन रामा की अन्तरात्मा मे ज्वाला-सी जलने लगी।

एक दिन रमेश के पास बैठ कर तारा ने कहा—बहिन रामा के व्यवहार में अब कुछ अन्तर पड़ गया है। मेरे बोलने पर वह मेरी बातो का उत्तर झुँझलाहट के साथ देती है। प्रायः ऐसा होता है कि मै किसी बात के लिए कुछ कहती हूँ, अथवा कुछ पूछती हूँ, तो वह कुछ उत्तर नही देती। उसके व्यवहार और उसकी बातो से स्पष्ट प्रकट होता है कि वह मेरे ऊपर अप्रसन्न रहा करती है।

रमेश ने यह सुनकर कुछ सोचते हुए पूछा—अप्रसन्न होने का कारण क्या है? तुम बता सकती हो?

तारा ने कहा—मैं कैसे कहूँ, क्या बात है।

रमेश ने कुछ उत्तर नही दिया। कुछ देर ठहर कर तारा ने फिर कहा—जिस समय मैं तुम्हारे पास बैठती हूँ, तो मै देखती हूँ कि उसका हृदय व्यथित-सा होने लगता है। अप्रत्यक्ष रूप से वह हमलोगों को देखने की चेष्टा करती है। बिना कारण वह मुझे अनेक प्रकार की बातें कहा करती है। मैं बार-बार सुनती हूँ; पर कुछ उत्तर नही देती। मैंने यह भी अनेक बार परखा है कि मुझे तुम्हारे पास बैठी देखकर उसने बड़ी देर तक भावज से न जाने क्या क्या बातें की हैं।

तारा की ये बातें सुनकर रमेश कुछ समय तक कुछ न कह सके। उनके हृदय में अनेक चिन्तनायें उठने लगीं—रामा के ऐसा करने का कारण क्या है? तारा जैसा कह रही है, मैने भी कई बार अनुभव किया है। मै उसे भुला रहा था; किन्तु तारा ने आज उसे जाग्रत कर दिया।

रमेश ने तारा से पूछा—रामा के इन व्यवहारों का कारण तुम्हारी समझ में क्या है?

तारा ने कहा—मैं क्या बताऊँ, पर कुछ कारण अवश्य है।

रमेश के अनेक बार जिज्ञासा करने पर तारा ने कहा—तुम्हारे पास मैं बैठती हूँ, यह बात उसको खटकती है। केवल इसी लिये वह मेरे ऊपर अप्रसन्न रहा करती है, और यही कारण उसके समस्त दुर्व्यवहारों का भी है।

तारा के मुख से यह बात सुनकर रमेश के हृदय में एकबारगी क्रोध आविर्भूत हुआ। सोचने लगे--रामा ने मुझे क्या समझ रखा है? मैं जितना ही सरल हूँ, उतना ही कठोर भी हूँ, मेरे ऊपर उसका यह क्रोध! भला इसमे वह अपना क्या उपकार समझे बैठी है? तारा को मैं प्यार करता हूं, और वह भी मुझे अपना समझती है। तो फिर तारा का मेरे पास बैठना उसको क्यों खटकता है? तारा पर रोष करके वह भला क्या लाभ उठायेगी? जिसको मैं हृदय से प्यार करता हूं, उसपर रोष करके क्या कभी वह मेरी हो सकती है?

रमेश ने तारा की ओर देखा। तारा की मुखाकृति में कही भी विषाद और रोष का भाव तक दिखाई न पड़ा। उन्होंने समझा था कि इन बातों से तारा को क्लेश बोध होगा, किन्तु उसके प्रसन्न मुख को देखकर उन्होंने पूछा—रामा के इन दुर्व्यवहारो से तुम्हारी आत्मा पर क्या प्रभाव पड़ा है?

तारा ने सरलता से उत्तर दिया--कुछ नही। मै जैसी पहले थी, वैसी ही अब भी हूं। मेरे हृदय पर कुछ भी प्रभाव नही पड़ सकता। वह मुझ पर रोष करती है, करे, पर मुझे न तो रोष होता है और न दुख का अनुभव। वह चाहे मुझपर अप्रसन्न भी रहे, पर मै उसके अहित की कभी भावना भी नहीं कर सकती।

रमेश का हृदय तारा के इस निर्मल, सरल और नम्र स्वभाव की बार-बार सराहना करने लगा—जिसके स्वभाव में इतनी सहानुभूति है, जिसकी प्रकृति इतनी मनोहर और मधुर है, वह आत्मा क्या कभी ऐसी हो सकती

है, जिसपर रोष किया जा सके ? मैंने समझा था कि रामा के असह्य वर्त्ताव से तारा के हृदय में विषाद और रोष का आविर्भाव होगा, किन्तु तारा का हृदय इतना तुच्छ और अगम्भीर नही है ।

रमेश ने रामा पर रोष प्रकट करके अपने हृदय की वेदना को व्यक्त कर दिया । तारा से स्पष्ट कह दिया—रामा की इसमें कदापि भलाई नहीं है । यदि वह ऐसे-ऐसे दुर्व्यवहार करेगी, और इस प्रकार मुझपर अश्रद्धा करेगी, तो मुझ पर उलटा प्रभाव पड़ेगा । मै जितना तुम्हें चाहता हूं, अभी आगे उससे और अधिक चाहूंगा । कोई भी मेरे हृदय की गति को रोक नहीं सकता ।

तारा ने अनेक प्रकार से समझा-बुझा कर उत्तेजित रमेश को शान्त किया ।

३४

रमेश जिस समय भोजन करने जाते थे, तारा अपने हाथ से अनेक प्रबन्ध करती थी—पानी देती थी, दूध परोसती थी, उसमें मीठा छोड़ती थी । वह जब भोजन करते थे, समीप बैठ कर पंखा झलती थी। कुछ समय से उनके लिये तारा ही मनोरञ्जन की सामग्री थी—वही विनोद का साधन थी । भोजन करने का समय उनके लिये अत्यन्त सुखकर होता था । सदा वह सोचा करते थे कि जब भोजन करने जाऊँगा तारा से बातें करने को मिलेंगी ।

नित्य की भाँति आज भी रमेश ने भोजन करने के लिए घर में प्रवेश किया । घर में पहुँच कर देखा, कि तारा का कहीं पता नहीं है। रसोई घर के निकट जाकर भोजन करने के स्थान पर वह बैठ गये । थाली परोस कर सम्मुख आ गई । उन्होंने अप्रत्यक्ष दृष्टि से उसके पता लगाने की चेष्टा की।

किन्तु घर के किसी भाग में उनको वह दिखाई न पड़ी। उसे न देख कर उनका अन्त करण संकुचित और संकीर्ण होने लगा।

इतने में अकस्मात् उन्होंने देखा; घर के पूर्व ओर, एक कोठरी के समीप पड़ी हुई चारपाई पर, वह लेटी है। उसको लेटे हुए देख कर वह मन-ही मन सोचने लगे—और दिन मेरे आने के पूर्व तारा मेरे आने की बाट देखा करती थी। मेरे आ जाने पर वह अपने ही हाथ से सब काम करके मेरे भोजन का प्रबन्ध करती थी। पास बैठकर पंखा झलती थी। आज उसके न आने का क्या कारण है? हो सकता है कि वह सो गई हो। किंतु, यदि वास्तव में वह सो गई है, तो क्या मेरे प्रति उसकी इतनी उपेक्षा है कि भोजन के लिए मेरे आने का समय जान कर भी वह चारपाई पर लेट कर सो रहे! इसके यह अर्थ होते है कि उसके प्रति जितनी मुझ में प्रेमाशक्ति और चाह है, उसके हृदय में मेरे लिये कदापि नहीं। यदि नहीं, तो फिर और क्या बात हो सकती है? कुछ भी हो, यदि किसी भी अवस्था में मेरे आने की बात भूल कर तारा सो सकती है, अथवा किसी दूसरी ओर उसके मन की गति जा सकती है, तो फिर मैं उसका पथ क्यों देखूँ? जो मेरी इतनी उपेक्षा कर सकता, उसके लिये मेरे हृदय में आकर्षण कैसा!

बात-की-बात मे रमेश का हृदय तारा के इस व्यवहार की आलोचना कर के ग्लानि और संकोच से परिप्लुत हो उठा। उन्होने साहस के साथ भोजन करना आरम्भ किया। खाते समय कई बार अपने को सम्हालने की चेष्टा की, किन्तु क्षणिक उत्तेजना के अतिरिक्त और कोई फल न निकला।

रमेश भोजन करने की चेष्टा करते, किन्तु खाना भूल कर तारा के न आने की बात सोचने लगते और खाने का क्रम भूल जाते। अनेक बार उन्होंने ऐसा ही किया। सुन्दर-से-सुन्दर भोजन उनकी आँखों में विषैले पदार्थ दिखाई देने लगे। उन्होंने निश्चय किया कि मैं भोजन न करूँ—उठ कर चला जाऊँ, किन्तु फिर सोचने लगे, मैं यदि इस प्रकार चला जाऊँगा, तो घर के लोग इसका कुछ और ही अर्थ पैदा करेंगे। अतएव, उन्होंने

फिर चेष्टा की, किन्तु किसी प्रकार अधिक न खा सकने के कारण वह उठ कर ही चले आये।

बाहर आने पर रमेश का हृदय तारा के इस व्यवहार से अस्थिर और अधीर होने लगा। एक चारपाई पर कमरे मे लेटे हुए वह बार बार सोचने लगे—दिन में कई बार बुलाकर तारा मिलती थी, बैठती थी, बातें करती थी, और आज सारा दिन हो गया, दर्शन तक नही! उसका न मिलना कुछ दूसरा ही अर्थ रखता है। भोजन के समय भी कदापि सोती नही थी। न उठने और न बोलने का कोई विशेष कारण है। जहाँ तक सम्भव हो सकता है, उसका न मिलना उसकी अप्रसन्नता ही प्रकट करता है। यद्यपि अप्रसन्नता का कोई कारण नही जान पड़ता, फिर भी यदि मान लें कि कोई कारण हो गया हो, तो क्या उसको मुझसे बोलना न चाहिये था? मेरे पहुँचने पर क्या चारपाई से उठना भी उचित न था? यदि वह रूठ कर मेरे प्रति इतनी उपेक्षा दिखा सकती है, तो मै आज से उसका कोई मूल्य न समझूँगा। उसका बहुत सम्मान करता था, पर यह नही जानता था कि उसकी प्रेमाशक्ति यहीं तक सीमित है। मुझे अब तक पता नही था कि उसके प्यार का यह अन्तिम समय है।

बढ़ती हुई अस्थिरता के साथ रमेश के हृदय में एक बार भावना उठी—जिस तारा ने प्रेमाशक्ति द्वारा मुझे अपना लिया था, जिसके चरित्र और व्यवहार का मुझपर इतना प्रभाव पड़ चुका था कि मै अपने आपको भूल गया था, उस तारा के ऐसे व्यवहार से उसको भूल जाने के प्रथम एक बार उसे आँखों से देख लेना चाहिये। फिर चाहे आजीवन के लिए नमस्कार कर दूँ।

कुछ ही क्षणो में फिर रमेश सोचने लगे—किन्तु यह लालसा व्यर्थ की लालसा है। यदि तारा ने एक बार मिलना भी आवश्यक नही समझा तो मेरा यह सोचना अपने आप अपना अपमान करना है।

पहला दिन बीत गया। दूसरा दिन भी बीत गया। तीसरा दिन आरम्भ

हुआ। रमेश को तारा के दर्शन न हुए। ऐसी अवस्था में उनकी भूख और प्यास न जाने कहाँ विलीन हो गई! उन्होंने निश्चय किया था—अब तारा से न मिलूँगा, उससे बातें न करूँगा, उसकी चाह भी न रखूँगा।

किन्तु दो दिनों में ही रमेश का निश्चय न जाने कहां खो गया। उनका हृदय तारा को देखने के लिये उत्सुक हो उठा। तारा से कैसे मिलें—किस प्रकार उससे मिलना हो सकता है—रमेश का तीसरा दिन इसी सोच-विचार में बीतने लगा।

सन्ध्या-काल के पाँच बजे होंगे। सूर्य्य-भगवान के अस्त होने में अभी विलम्ब है। दोपहर की कड़ी धूप अब नहीं रही। जहाँ सूर्य की धूप पड़ रही है, वहाँ को छोड़ शेष स्थानों में ठंडी हवा के झोंके चल रहे हैं। रमेश कमरे के बाहर चारपाई पर बैठे कुछ लिख रहे है। सहसा सिर उठा कर देखा—कमरे में बैठी हुई तारा रो रही है।

अचानक तारा का नीरव अश्रुपात देख कर रमेश का हृदय काँप उठा। अस्थिर-चित्त से उन्होंने पूछा—तारा, क्या है, क्यों रोती हो?

रमेश की बात सुनते ही तारा के हृदय का दुःखावेग और भी भवक उठा, पर उसने अपने को बहुत सम्हाल कर कहा—सर्वस्व नष्ट हो गया! अब मैं कहाँ मुख दिखाऊँगी? इस जीवन में अब...!

तारा का गला अवसन्न हो गया। मुख से अधिक बोल न निकल सका। उसकी बात सुनकर रमेश की समझ में कुछ न आया। अधीर होकर उन्होंने फिर पूछा—क्या बात है, मैं अभी तक समझ नहीं सका।

तारा ने अश्रु-प्रवाह रोक कर कहा—तुम्हारे साथ मेरे अनुचित सम्बन्ध का दोष लगाकर रामा ने माँ और भैया से न जाने क्या-क्या कहा है। घर में बड़ी सनसनी फैली है। रामा ने मेरा सर्वस्व नष्ट कर दिया। उस समय मुझसे घर में कोई बोला नहीं। आज तीसरा दिन है—मैंने भोजन नहीं किया। रात-दिन रोती हूँ, मेरे आँसू नहीं बन्द होते।

रमेश तारा की ओर देखकर रह गये। उनके मुख से कोई बात न

निकल सकी। तीन दिनों से न मिलने के कारण वह जो तारा पर रोष कर रहे थे, उनके हृदय में उसके लिये बड़ी लज्जा का अनुभव हुआ। उनकी आँखें तारा की ओर थीं, किन्तु हृदय अस्थिर और विकल हो रहा था। इस अस्थिरता और विकलता के समय उनको कोई बात न सूझी। उनके हृदय में भावना उठने लगी—रामा ने तारा पर यह दोषारोपण करके तारा का नही, मेरा सत्यानाश किया है—तारा का सर्वस्व नष्ट नहीं हुआ, मेरा नष्ट हुआ। इससे तारा का जितना अहित होगा, मैं ही उसका उत्तरदायी हूँ।

तारा ने रमेश की हार्दिक ग्लानि का भली प्रकार अनुभव किया। उनकी अस्थिरता और मानसिक वेदना देख कर उसको अपना अश्रुपात विस्मृत हो गया।

रमेश ने तारा की ओर एक बार देख कर फिर अनुभव किया—तारा अब जीवन-भर के लिये पृथक हुई!! अब तक उसको मुझसे मिलने का अवसर था, अब आगे के लिये वह न रहा। आज तक जो पथ खुला हुआ था, वह कल से बंद हुआ! इस दोषारोपण ने ही तीन दिनो से उसको मुझसे विलग कर रखा था। आज इस प्रकार मिलने के पीछे वह जीवन-भर के लिये मुझसे पृथक हो जायगी!

रमेश के हृदय में अनेक प्रकार के संकल्प विकल्प उठ रहे थे। तारा ने उनकी विह्वलता को बढ़ते देख कर कहा—हँस के बोली, आख़िर बदनामी..........

रमेश ने चौंक कर तारा की ओर देखा—वह टकटकी लगाकर उनकी ओर देख रही थी। उसके मुख से—'हँस के बोलो, आखिर बदनामी'—सुन कर उनके आश्चर्य की सीमा न रही। वह कुछ सोच रहे थे; इतने में उसने उनसे कहा—तुम दुख न करो, यह मेरे भाग्य का दोष है। मैं संसार के किसी ऐश्वर्य के पाने की इच्छा नहीं रखती, बस तुम्हें चाहती हूँ, और कुछ भी नहीं।

यह कह कर तारा चली गई। रमेश चेतना-हत हो चारपाई पर लेट

कर बड़ी देर तक कुछ सोचते रहे। बहुत देर के बाद उठकर देखा, सन्ध्या हो चुकी है। एक छोटा-सा कागज उठाकर लिखा—

प्रिय तारा

मैं छत पर आता हूँ, तुम मुझे वहीं पर मिलो। कुछ बातें करना चाहता हूँ।

तुम्हारा—रमेश

रमेश ने यह कागज एक बालक के हाथ घर में भेज दिया। फिर कुछ देर ठहर कर छत पर पहुँचे। तारा वहीं उपस्थित थी। उनको देख कर वह खड़ी हो गई।

छत पर एक बिस्तरा बिछा था। रमेश उसी पर बैठ गये। तारा भी बैठ गई। रमेश ने तारा का हाथ पकड़ कर कहा—तुम्हारी संक्षेप में कही हुई बातें मैं विस्तृत रूप में समझ गया। तुम्हारा जो कुछ अपमान हुआ, वह मेरा अपमान है। तुम्हारा जो कुछ अहित होगा, मेरे ऊपर उसका उत्तरदायित्व है। मैं अपने जीवन में एक घड़ी के लिये भी तुमको विलग नहीं कर सकता।

तारा शान्तिपूर्वक बैठी हुई बातें सुनती रही। रमेश के चुप हो जाने पर भी उसने कुछ उत्तर न दिया। रमेश ने फिर कहा-जिसने तुम्हारे लिए यह बातें कही है, वह मेरा-एक जन्म का नहीं, अनेक जन्मों का-शत्रु हुआ। मैंने निश्चय किया है कि अपना शेष जीवन सन्यास लेकर बिताऊँगा।

रमेश की बातें सुनकर तारा का हृदय काँप उठा। कम्पित स्वर में तारा ने कहा—यह विचार न करो। दोषारोपण से जिस प्रकार मेरा अपमान और अहित होगा, वह मेरे भाग्य की बात है। किसी पर रुष्ट न हो। अपने हृदय को शान्त करो।

रमेश ने कुछ रोष के साथ पूछा—ऐसी बातें सुन करके भी क्या तुम्हें क्रोध नहीं आता?

तारा ने निस्संकोच होकर कहा—मैं तुमसे पूछती हूँ कि मैंने क्या

वास्तव में अपराध किया है ? मेरे हृदय को विश्वास है कि मैंने पाप नहीं किया । फिर मुझे रोष किस बात पर पैदा हो ?

तारा के मुख से यह गम्भीर आलोचना सुनकर रमेश ने श्रद्धा की दृष्टि से उसकी ओर देखा । कुछ देर तक और बातें कर वह बाहर चले आये ।

३५

तारा जिस प्रकार पहले रमेश से मिलती थी, उनके साथ बैठती-उठती और व्यवहार करती थी, अब भी उसी प्रकार मिलती-जुलती और व्यवहार करती है । उसके हृदय में संकोच लेश-मात्र भी नहीं है । रामा के अनेक दुर्व्यवहार करने पर भी उसके व्यवहारों में कुछ अन्तर न पड़ा । इसलिये उसे देखकर रामा की आँखों में ईर्ष्या-भाव बढ़ने लगा । तारा के साथ वह बार-बार असंतोषजनक व्यवहार और बर्त्ताव करती, पर तारा के हृदय में उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ता ।

रामा के लगातार व्यवहारों से रमेश ने समझा—रामा के नेत्रों में तारा तुच्छ और ईर्ष्यास्पद है । उसके व्यवहार और बर्त्ताव से अहंकार टपकता है।

यह सब देखकर रमेश को अत्यंत दुख होने लगा । रामा का दुर्व्यवहार तारा के साथ था, और तारा रमेश की प्यारी थी—न केवल इसलिये रमेश को दुख होने लगा, प्रत्युत उनके हृदय में न्याय और प्रेम पर अनन्य श्रद्धा है। रामा के यह दुर्व्यवहार यदि तारा के साथ न होकर किसी दूसरे के साथ होते, और वह इसके योग्य न होता, तो भी रमेश के हृदय को उतना ही दुख होता, जितना आज हो रहा है । रामा के यह दूषित व्यवहार और अहंकार रमेश किसी प्रकार सहन न कर सके ।

रमेश प्रायः सोचा करते—रामा की इस अवस्था का कारण क्या है ? तारा एक सुखी परिवार में जन्मी है, और एक सम्पत्तिशाली घर में ब्याही गयी है । उसकी प्रत्येक अवस्था रामा से कहीं सुन्दर है । उसके सम्मुख

वह अपनी किसी प्रकार समता नही कर सकती। फिर वह इस प्रकार के व्यवहार और अहंकार किस आधार पर करती है? एक दिन था, जब मैं रामा में गुण देखता था, और उन्ही के कारण उसका प्यार करता था। पर आज वह दिन कहाँ चला गया? मेरे सम्मुख न कोई अपना है और न कोई पराया। जिस में अवगुण है, वही पराया है; और जिसमें गुण है, वही अपना है। तारा के व्यवहार और वर्त्ताव की सुन्दर उपयोगिता ने मुझे अपनालिया हैं। यदि रामा की ईर्ष्या का यही कारण है, तो उसकी भूल है। वह जिस दिन मुझ से बातें करेगी उसी दिन समझेगी। मेरा संसार में कोई नहीं हो सकता, केवल एक सरल और साधु प्रकृति मेरे हृदय की सर्वस्व हो सकती है, जिसे कदापि मैं दूसरा नही समझ सकता। हो सकता है, समाज का इसमें मद-भेद हो। हो सकता है, मानव-सभ्यता इसे दूषित कहे; पर मैं कदापि इसे अनुचित नहीं समझ सकता।

एक दिन रमेश तारा के समीप बैठे उससे बातें कर रहे थे। बातें करते करते कहा—तुम मुझे बुलाती हो और बार-बार मिलने तथा बातें करने के लिये विवश करती हो, किन्तु समय की ओर नहीं देखती। मुझे अत्यंत संकोच होता है।

तारा ने कहा—रामा द्वारा मै सारे घर की दृष्टि में दूषित ठहरी हूँ, और उसका कारण केवल तुम्हारे साथ उठना-बैठना तथा बातें करना है, ऐसी अवस्था में यदि मैं तुमसे मिलने-जुलने और बातें करने का सम्बन्ध तोड़ दूँ, तो स्पष्ट प्रकट होगा कि मै पाप-वासना के लिये ही तुम से सम्बन्ध रखती थी और अब ताड़ना करने पर सब बंद हो गया। इसलिये मुझ मे यह नही हो सकता। साथ ही, यह भी है कि मुझे किसी का भय नही। चाहे कोई प्रसन्न हो या अप्रसन्न!

रमेश ने ध्यान से सुना। उसके साहस-पूर्ण शब्दो पर उन्होंने हृदय से उसकी प्रशंसा की। कुछ देर तक ठहर कर पूछने लगे—

तारा, किसी के प्रसन्न और अप्रसन्न होने का तुम्हें भय क्यों नही ? इसके अतिरिक्त तुमसे मैं एक बात और भी जानना चाहता हूँ ।

तारा ने शिघ्रता से पूछा—क्या ?

रमेश—बता दोगी ?

तारा ने तीक्ष्ण दृष्टि से रमेश की ओर निहार कर कहा—क्या अब भी कुछ ऐसी बातें हो सकती है, जिन्हें मै तुमसे प्रकट न कर सकूँ ?

रमेश ने कहा—मैं यह जानना चाहता हूँ कि मेरे लिए तुम यह सब अपमान सहने के लिए क्यो तैयार हो ?

रमेश की ओर संकुचित दृष्टि-निक्षेप करके तारा का मस्तक लज्जावनत हो गया । वह कुछ भी उत्तर न दे सकी । पर रमेश ने फिर पूछा—क्यों बताओ ना ?

तारा—क्या बताऊँ ?

रमेश—क्यो, कुछ कष्ट होता है ?

तारा—सच कहती हूँ, मै स्वयं नही जानती, क्या बात है । केवल इतना ही जानती हूँ कि जिस दिन से मैंने तुम्हें देखा है, एक घड़ी के लिये भी तुम्हें भूल नहीं सकी । उस समय मेरा विवाह भी नही हुआ था ।

रमेश—संकोच छोड़ कर, मेरे साथ बातें करो । एक बात स्पष्ट बताओ कोई किसी का प्यार करता है, तो उसके प्यार का कोई कारण होता है । तुम्हारे प्यार का क्या कारण है ?

तारा ने मुस्कुरा कर कहा—पूर्व जन्म का कुछ सम्बन्ध ।

उत्तर देने में तारा की ढिठाई का अनुभव करते हुए रमेश ने पूछा—प्रत्येक वस्तु का कुछ मूल्य होता है । तुम्हारे प्यार का क्या मूल्य है ?

तारा—मूल्य ?

रमेश—हाँ, मूल्य ।

तारा के मुख से गम्भीर और मधुर स्वर में धीरे से निकल पड़ा—रमेश बाबू !

रमेश के सारे शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। दीर्घ निःश्वास लेकर बोले—अब तुमसे बातें न करूँगा।

तारा ने उत्तर में मुस्कुरा कर अपना मस्तक नीचा कर लिया।

इस प्रकार कितने ही दिन बीत गये। रामा और तारा का कोई निर्णय न हुआ। तारा बिना किसी भय और संकोच के अपने दिन व्यतीत करती रही। सहसा एक दिन धीरजपुर से लोकनाथ उसकी विदा के लिये आ गये।

लोकनाथ के आने पर तारा ने बड़ा गोलमाल उत्पन्न कर दिया। उसने निर्णय कर लिया था कि मैं किसी प्रकार धीरजपुर न जाऊँगी। प्रतापनारायण कह कर थक गये, माँ समझा कर हार गई। किसी का कोई बस न चला।

लोकनाथ अप्रसन्न होकर लौट रहे थे। इतने में तारा ने रमेश को बुला भेजा। उनके पहुँचने पर उसने कहा—मैंने धीरजपुर न जाने के लिये सबसे स्पष्ट कह दिया। मुझे बलात्कार भेजने का किसी को अधिकार नहीं, और न कोई भेज ही सकता है। अब अन्त समय है। मैं तुम्हारी सम्मति चाहती हूं।

घर में राधारानी, चन्द्रा, रामा और प्रताप उपस्थित थे। तारा का निर्भीक प्रश्न सुन कर रमेश ने उत्तेजना के साथ कहा—तुमने जैसा निर्णय कर लिया है, वैसा ही करने को भी प्रस्तुत हो, किन्तु मैं तुमको भेज रहा हूं। मुझे अधिकार है कि बलात्कार भेजूँ और जो उचित समझूँ करूँ।

रमेश की बात सुन कर घर के सब लोग चकित होकर रह गये। किसी को विश्वास नहीं था कि रमेश के मुख से ऐसी बातें निकलेंगी। उनके मुख से कठोर उत्तर सुन कर तारा सहसा चीत्कार करके रो उठी। क्रन्दन के साथ ही उसके मुख से निकला—मुझे एक तुम्हारा ही भरोसा था, मैं नहीं जानती थी कि तुम ऐसा कहोगे!

रमेश—मैं वही करूँगा, जिसमें तुम्हारा हित हो। मैं कदापि तुम्हें ऐसा पथ न बताऊँगा, जिससे तुम्हारा अहित हो।

तारा—अच्छा, अब मैं जाऊँगी; पर मुझे पहले यह बता दो यहाँ पर

अब मेरे आने का भरोसा नही, कौन अब मुझे बुलायेगा ? ऐसी दशा में धीरजपुर यदि तुम न आओगे, तो मैं तुम्हें कहाँ देखूँगी ?

रमेश—यहाँ तुम्हें कोई न बुलायेगा, यह तुम्हारी धारणा व्यर्थ है। मुझे पूर्ण विश्वास है, तुम सब को प्राणो से प्रिय हो। फिर भी तुम्हारे बुलाने का उत्तरदायित्व मै लेता हूं। साथ ही, धीरजपुर आने का भी मैं प्रयत्न करूँगा।

तारा की विदा निश्चित हो गई। समय भी आ गया। राधारानी, चन्द्रा, रामा और प्रताप से मिलते समय तारा ने इस प्रकार बिलाप किया कि सब का हृदय करुणा से आर्द्र हो गया।

अन्त में रमेश से मिलते समय रोकर तारा ने कहा—मैं अनाथ हूं, दीन हूं, और हतभागिनी हूं, मुझे भूल न जाना।

इन्ही शब्दो के साथ तारा रामनगर से विदा हुई।

३६

रामनगर से तारा को गए हुए अनेक दिन बीत गये। रामा ने समझा था कि तारा के चले जाने पर रमेश मुझसे अवश्य मिलेंगे, किन्तु उसका यह अनुभव उलटा निकला। उन्होंने किसी दिन उससे मिलने की इच्छा भी न प्रकट की। उसको उनके मिलने की अब कोई आशा न रही। वह अब मिलेंगे या नही, और यदि मिलेंगे, तो कब मिलेंगे, उसको इसका भी कुछ पता न रहा। तारा के चले जाने पर भी उसकी अवस्था में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ, यह बात वह सहन न कर सकी। उसने समझ लिया, वह मुझसे मिलना नही चाहते। अतएव, उसने उनसे मिलने और बातें करने का अवसर माँगा।

तारा जिस दिन से चली गई रमेश का जीवन नीरस हो गया। उन्हें सारा संसार सूना दिखाई देने लगा। जिस घर में वह उनसे मिलती और

बातें करती थी, उसके चले जाने पर उनको उसी घर की दीवारें पुराने शत्रु के समान दिखाई देने लगी। जिस स्थान पर बैठ कर उन्होंने उससे बातें की थीं, उस स्थान को देखकर सहसा वह चौंक पड़ते। सारांश, घर और घर की दीवारें तथा वह बैठने-उठने और मिलने-जुलने के प्रिय स्थान उसके चले जाने पर उन्हें मानों काटने दौड़ते।

खाते-पीते, उठते-बैठते, रमेश किसी समय तारा की स्मृति नहीं भूलते। रात के सोने के पहले यदि तारा की याद आ जाती, तो समस्त रात जाग कर काटनी पड़ती। उनकी जब यह अवस्था हो रही थी, रामा ने उनसे मिलने का अनुरोध कराया।

रामा से मिलने की बात पैदा होते ही रमेश के हृदय में तारा की विरह-वेदना और भी तीव्र हो उठी। सोचने लगे—मैं रामा से मिलूँगा—इस जीवन में मिलूँगा। जिसने तारा का सर्वस्व नष्ट करने का प्रयत्न किया—जिसने तारा का इस प्रकार अहित सोचा—उस रामा से मिलूँगा? झूठ बात है। तारा चाहे अपने अपमान को भूल जाय, तारा के मन में चाहे क्रोध भले न उत्पन्न हो, किन्तु उसका जो अपमान हुआ है, अहित हुआ है, मेरा हृदय कदापि उसे भूल नहीं सकता।

अनेक प्रकार की चिन्तनायें करने के बाद रमेश फिर सोचने लगे—रामा ने तारा का बहुत बड़ा अपमान और अहित किया है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु मिलने में क्या हानि है। चलें, देखें तो, रामा ने क्या सोच-समझ कर ऐसा किया है। दो-दो चार-चार बातें हो जाने से अच्छा होगा। जब तक मेरी बातें वह न सुनेगी, तब तक उसको मेरे हृदय की अवस्था का क्या पता मिलेगा। और, जब तक मैं उसकी बातें न सुनूँगा, तब तक कैसे जानूँगा कि उसने क्या सोचा-समझा है।

रमेश ने रामा से मिलना निश्चित कर लिया। घर की छत पर, जहाँ वह थी, पहुँच गये। उनको छत पर के वे स्थान, जहाँ तारा बैठती उठती थी, देख कर अत्यन्त दुःख हुआ। उनके नेत्र ज्योंही रामा पर पड़े,

उनका हृदय चूर्ण-चूर्ण होने लगा। तारा के लिये कही गई रामा की बातें एक एक कर के उनके नेत्र-पथ में घूमने लगी। उसके निकट जाकर रमेश ठिठक गये। बड़ी रुखाई के साथ बोले—मैं क्यों बुलाया गया हूँ?

रमेश के मुख से ये उपेक्षापूर्ण बातें सुन कर रामा को सहसा बोध हुआ, मानो मैं दूसरी हूँ, और वह दूसरे है। एक अन्य पुरुष किसी अन्य स्त्री के पास जाकर जिस प्रकार सभ्यता और संकोच से बातें करता है, रमेश ने ठीक वैसा ही किया। उसका यह व्यवहार देख कर उसका हृदय काँप उठा। उससे कोई उत्तर देते न बना। उसे स्वप्न मे भी पता न था कि वह जब मिलेंगे, तो इस रूप में मिलेंगे। उन्होंने उसको अपने हृदय के जिस प्रेम का पात्र बना रखा था, आज वह उसके हृदय से बहिर्गत हो गया। उसने समझा, रमेश अब वह रमेश नही है।

रामा के मुख से बड़ी देर तक कोई बात न सुनकर रमेश ने कहा—मेरे पास इतना समय नहीं है जो मैं इस प्रकार ठहर सकूँ।

रामा ने घबरा कर कहा—मुझसे क्या अपराध हुआ है जो आपके मुख से ऐसी बातें सुन रही हूँ।

रमेश—कौन कहता है, तुम से अपराध हुआ है?

रामा—आज आप के व्यवहार जिस प्रकार हो रहे हैं, उनसे स्पष्ट बोध होता है कि मै कोई दूसरी हूँ, और आप कोई दूसरे है। इस लिये मैने कहा कि यदि मुझसे कोई अपराध भी हुआ हो, तो क्षमा चाहिती हूँ।

रमेश—मैंने अपनी समझ में अपराधिनी नही कहा है। रही क्षमा की बात, तो मै क्षमा करने वाला होता कौन हूँ? मुझे अधिकार क्या है किसी को क्षमा करने का?

रामा ने दुखित होकर कहा—आपको क्षमा करने का अधिकार नहीं है—आप मेरे कोई नहीं है?

रमेश—हाँ, अब मै तुम्हारा कोई नहीं हूँ। तारा का जो अपमान और अहित किया गया है; उस अपमान और अहित ने मुझे दूसरा बना दिया है।

रामा—किसने अपमान किया है—मैने तारा को क्या कहा है ?

रमेश—मै नहीं जानता, किसने अपमान किया है। जिसने किया, जो कुछ किया, अच्छा किया।

रामा—जिसने किया हो, जो कुछ किया हो, यह बात नहीं; जो कुछ भी हो, स्पष्ट प्रकट कीजिये। यही तो बातें करनी है।

रमेश—इन बातों के लिए मेरे पास समय नहीं, और करना भी नहीं चाहता।

रामा—क्यों, क्या मुझे बातें करने का भी अधिकार नहीं रहा ? जो कुछ आप करते है, क्या सोच-समझ कर करते हैं ?

रमेश—मैं जो कुछ करता हूँ, उचित और अनुचित का ध्यान कर के खूब सोच-समझ कर करता हूँ।

रामा—जब आप जो कुछ करते है, सोच समझ कर करते हैं, तो फिर बातें करने में झिझक ही क्या ?

रमेश—मुझे कोई झिझक नही है, और न मुझे किसी बात का डर है, किन्तु बातें करने का अधिकार उसके लिये नही है, जो मेरी अवहेलना करके जो कुछ कर सकता था, कर चुका है।

रामा—मैंने पहले भी मिलकर बातें करने का प्रयत्न किया था, किन्तु जब आप नही मिले, और मुझे किसी प्रकार का संतोष देना भी आपने उचित नहीं समझा, तो सोच-समझ कर मै विवश हो गई—कुछ बातें पैदा कर देने के लिये—वह भी तारा के हित के लिये ?

रमेश—तारा के हित के लिये ? उस अनाथ बालिका के हित के लिये ? तनिक सोच-समझ कर बातें करो। जिसने तीन दिनों तक अन्न-जल नहीं किया था—जिसने तीन दिनों तक लगातार नीरव अश्रुपात किया था-उसके हित के लिये ? उसका जो हित किया है, उसी का फल हुआ कि वह संसार के सम्मुख : स जन्म के लिये अपराधिनी हो चुकी।

रमेश का अन्तःकरण मर्मवेदना से अत्यन्त कातर हो उठा। उनकी

इस दुःखपूर्ण बात को सुनकर रामा के हृदय में तीव्र आघात हुआ। बोली-मैं सदा से तारा का हित ही चाहती आई हूँ। इस बीच मे मैने कुछ ऐसी घटनायें देखी, जिनसे विवश होकर उसके साथ मैने इस प्रकार का व्यवहार किया था। मेरा व्यवहार चाहे भले कलुषित कहा जाय, किन्तु मैने समझा था कि अनेक समय ऐसे आते हैं, जब मनुष्य की आत्मा स्वार्थ के गाढ़े अंधकार में अपने हित और अहित को भूल जाती है, और फिर अंत में उसको अपनी भूल का बोध होता है।

रमेश—इस बीच मे कौन सी घटनायें देखी थी?

रामा—पहले मै यह पूछना चाहती हूँ कि एक युवा पुरुष का एक अन्य युवती के समीप बैठना, समय-असमय बैठना, निर्जन स्थानों में बैठना—कितना अहितकर हो सकता है?

रमेश—मै इस बात को मानता हूँ, कि एक पुरुष और एक अन्य स्त्र के समय-असमय के इतने घनिष्ठ सम्बन्ध से अपराध की आशंका होती है। इसीलिये समाज ने यह बन्धन रच डाले हैं। किन्तु, यदि समय-असमय के सम्मिलन का कारण पवित्रता के आधार पर बहुत पूर्व से पैदा हो चुका है, तो फिर उसके लिये समाज का यह बन्धन कदापि लागू नहीं हो सकता।

रामा—इसी विश्वास पर अब तक कभी किसी ने आक्षेप नहीं किया था; किन्तु जब वह पवित्रता का आधार नष्ट-भ्रष्ट हो गया, तो फिर समाज के वन्धनो की रक्षा करना अनिवार्य्य हो गया।

रमेश—पवित्रता का आधार नष्ट-भ्रष्ट हो गया, इसका अर्थ?

रामा—इसका अर्थ इन्हीं शब्दो तक कहना पर्याप्त है। आप स्वयं सोच सकते हैं। बात की वास्तविकता पर विचार करें—तर्कना पर नहीं।

रमेश—इसपर विचार मैं पीछे करूँगा, पहले यह कह देना आवश्यक समझता हूँ, कि मै जो कुछ कहूँ, उसपर विश्वास किया जाय। मै जो कुछ कहूँगा, यथार्थ कहूँगा। इसलिये कि मै वही करता हूँ जो उचित समझता हूँ। यदि मैं अनुचित समझूँ, तो उसे कदापि न करूँ। दूसरी बात यह है

कि मै जो कुछ करता हूँ, उसे उचित समझता हूँ, और इसी लिये उसका अनुमोदन करता हूं। मुझसे यह न होगा कि मैं करूँ कुछ, और कहूं कुछ।

रामा—मुझे इसपर पूर्ण विश्वास है।

रमेश—तारा के अनाथ जीवन पर मेरी सहानुभूति आरम्भ से है, तुम्हें मालूम होगा। यहाँ आकर उसने अपना सम्बन्ध और भी घनिष्ट कर दिया। मैं यह भी बता दूँ कि मै घनिष्ट सम्बन्ध का शत्रु नहीं हूं, पापका शत्रु हूं। मैंने उसके व्यवहार में कभी कोई अपराध नहीं देखा। अभी उसका बालपन है। इसी लिये उसे मनोरञ्जन और विनोद बहुत प्रिय है। मैंने उसके मनोरञ्जन और विनोद में भाग लिया है, किन्तु बड़े संकोच के साथ। भाग लेने का साहस तारा ने ही स्वतः मुझमें उत्पन्न किया है। किन्तु क्षण-क्षण के अपने व्यवहारों में मैंने यह देखा है कि कहीं उसमें कलुषित भावना तो नही उत्पन्न हो गई। मैं जानता था कि समाज को मेरा यह व्यवहार कभी भी सह्य न होगा। किन्तु मैं देखता था कि समाज के बन्धन केवल पाप के दूरीकरण के लिये है। ऐसी अवस्था में जब मैंने देखा कि यह सम्भावना नहीं है, तो फिर मेरे हृदय में संकोच की मात्रा का कुछ भी प्रभाव न रहा।

रामा—मैं यह नहीं चाहती कि आप उससे सहानुभूति न रखें, मैं केवल यह चाहती हूं कि उसका यह सम्बन्ध आप तोड़ दें।

रमेश—मै असमर्थ हूं उसका यह सम्बन्ध तोड़ देने में। उसके सरल और शुद्ध व्यवहारों ने उसकी सुन्दर और भोली प्रकृति ने, मुझे अपनी ओर इतना आकर्षित कर लिया है कि मेरा उससे मुक्त होना अत्यन्त कठिन है। मै उसका प्यार करता हूं, ऐसी अवस्था में उसका सामाजिक पतन मुझे बहुत खलेगा। इसलिये भी मेरा सम्बन्ध उससे रहना मेरी समझ में आवश्यक है। मेरी यह आन्तरिक धारणा रही है कि ऐसे समय पर उसके अधःपतन का मार्ग अवरुद्ध करूँगा। मैं सदा उसके अन्तःकरण में ऐसी भावनायें भरता रहूँगा, जिससे वह अपने जीवन के इस कठोर तप में सफल

हो सके। उसके विचारों में कभी कुत्सित भाव न पैदा होने पावें।

बड़ी देर तक रमेश की बातें सुन कर रामा ने अपने आप अपना अपदस्थ होना अनुभव किया। कुछ सोच कर बोली—आपने ही मुझे सतीत्व की शिक्षा दी थी। आप ही थे, जो सतीधर्म के बड़े पक्षपाती थे। उन्हीं भावनाओं से प्रेरित हो कर मैंने यह व्यवहार किये है।

रमेश—मै सतीत्व का अब भी पक्षपाती हूं। किन्तु अब मै उन बातों का पक्षपाती नहीं हूं, जो सती-धर्म की सीमा में रखी गई है।

रामा—अब आप किन बातों के पक्षपाती नही रहे?

रमेश—मेरी समझ में नही आता कि एक स्त्री पुरुष-समाज को अपना शत्रु क्यों समझे? एक स्त्री किसी ए . पुरुष से बातें नही कर सकती, कुछ पूछ नही सकती, उसकी ओर निहार नही सकती। क्या मानव-सभ्यता ने सतीत्व की इस प्रकार योजना करके समाज में इतना वैमनस्य चाहा है? यह बात प्रकृति के प्रतिकूल है और नितान्त भूल है। इससे मानव-समाज का कभी उत्थान हो नही सकता। प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपनी वासनात्मक तृष्णाओं का दमन कर संयम से काम ले, यह ठीक है। किन्तु मैं यह नहीं चाहता कि इन्द्रिय-संयम के लिये संसार त्याग कर वनवास स्वीकार करे। मै यह नही चाहता कि व्यभिचार और पाप को रोकने के लिये एक स्त्री किसी पुरुष के सम्मुख बोल न सके, कहीं बाहर उससे मिल न सके, निकल न सके। मेरी यह भी धारणा है कि यह बातें व्यभिचार की मात्रा को कम नहीं कर रही, बढ़ा रही हैं।

रामा को अधिक तर्कना करने का साहस न हुआ। वह अपनी अधीरता का अनुभव करती हुई बोली—आपने ही यह बातें कभी पैदा की थीं, और आप ही अब यह बातें कर रहे हैं! तो जो बातें पहले करते थे, वे झूठ थीं?

रमेश—वह मेरा पुस्तकीय ज्ञान था, किन्तु मेरे व्यक्तिगत अनुभव ने मुझे कुछ और ही बताया है। इसलिये, यह तो कोई आवश्यक बात नहीं कि मैंने पहले जो कुछ समझा था, वही सदा स्वीकार करता रहूं। सम्भव

है, पहले की बातें ठीक न हों। यह कोई नई बात नहीं है। ऐसी बातें सदा हुआ करती हैं। एक उदाहरण लो—स्वामी दयानन्द सरस्वती एक दिन कट्टर सनातनधर्मावलम्वी थे, उनका परिवार ही शताब्दियों से सनातन-धर्मावलम्वी चला आता था। किन्तु उनके व्यक्तिगत अनुभव ने उनको उस मत के विपरीत आन्दोलन करने के लिये विवश किया था। फलतः उन्होंने भारतवर्ष में आर्य-समाज की स्थापना की, और उसे दिगन्तव्यापी बनाकर छोड़ा। मेरे कहने का यह आशय नहीं कि प्रत्येक बात आरम्भ में ऐसी ही होती है, किन्तु आशय यह है कि संसार की स्थिति का किसी को कुछ पता नहीं है। पाप और पुण्य कोई वस्तु नहीं है। वास्तव में जिससे मानव-समाज का अकल्याण होता है, उसका नाम है पाप—और जिससे कल्याण होता है, उसका नाम है पुण्य। मैं सामाजिक बन्धनों का सम्मान करता हूँ, और उन्हें मानता भी हूँ; किन्तु सीमा के अन्तर्गत। साथ ही यह भी ध्यान रखता हूँ कि समाज को इससे कहाँ तक लाभ हो सकता है। यदि उसमें मुझे कुछ अन्तर दिखाई देता है, तो मैं समाज के कल्याण की ओर ध्यान देता हूँ, उसके बन्धनों और नियमों की ओर नहीं।

रामा ने हाथ जोड़ कर क्षमाप्रार्थना की, और कहा—आपके यह विचार अब तक मेरे समझे नहीं थे। अब भी मेरी समझ में आपके यह विचार पूर्ण रूप से नहीं आये। जो कुछ हो, मैं अपने विचारों की रक्षा करूँगी, आप अपने विचारों की रक्षा करेंगे। अब रही बात यह, कि मैंने जान-बूझ कर तारा का अहित नहीं किया। क्षमा चाहती हूँ, और मेरी असावधानी से तारा का जो कुछ अपयश हुआ, मैं उसका प्रायश्चित्त करूँगी।

रमेश—तुमने बहुत बड़ा अनर्थ किया है।

रामा—फिर अब ?

रमेश—अब प्रश्न यह है कि तारा का कल्याण किसमें है, और उसका यह अपयश कैसे दूर होगा ?

रामा—जिस प्रकार हो, मैं हृदय से उसके लिये प्रस्तुत हूँ।

रमेश—यही एक प्रश्न है, जिसे हम दोनो को सोचना है।

३७

संसार में ऐसी कितनी ही घटनायें हुआ करती है, जिनका मूल कुछ होता है और फल कुछ होता है।

रामनगर में लोकनाथ ने तारा का स्वतंत्र जीवन देखा था। यह भी देखा था कि उसकी प्रकृति कितनी स्वाधीन और साहसपूर्ण है। और यह भी अपनी आँखों से देखा था कि उसको रामनगर से आना किसी प्रकार स्वीकार नही था। ऐसी अवस्था में उसको धीरजपुर जाना कैसे स्वीकार हुआ, यह भी लोकनाथ से अप्रकट नहीं था।

लोकनाथ ने रामनगर में एक बात भी अपने मुख से न कही। धीरजपुर आने पर उनके सम्मुख तारा की अस्वीकृति का अभियोग उपस्थित हुआ। उन्होंने अपने शब्दों में रमेश के लिये किसी प्रकार दुर्व्यवहार उठा न रखा।

रमेश की निन्दा तारा ने अपने कानो सुनी। उसकी स्वतंत्र प्रकृति को रमेश की निन्दा किसी प्रकार सहय न हुई। उसने बड़ी निर्भयता से लोकनाथ की एक-एक बात का उत्तर दिया, जिसका फल यह हुआ कि उन्होंने उसको कठोर-से-कठोर बन्धनों में रखना आरम्भ किया। अपने आस-पास के पोस्ट-आफिसो में प्रबन्ध किया कि तारा के नाम रमेश का पत्र आने पर सीधा हमारे पास भेजा जावे। साथ ही यह भी प्रबन्ध किया कि रमेश के नाम जो पत्र डाक में छोड़ा गया हो, लौटा कर हमारे ही पास भेजा जाय।

रामनगर के सम्बन्ध का भी लोकनाथ के निकट कोई मूल्य न रहा। फलतः उनके पास रमेश के भेजे हुए दो तीन पत्र पहुँचे। उन पत्रों को पढ़ कर उनका अन्तःकरण और भी जल उठा। तारा और रमेश से उनको घृणा होती गई।

लोकनाथ की यह कार्य्यवाही जब रमेश के कानों में पहुँची, तो उनको इस-पर अत्यंत खेद हुआ। उनको पता नहीं था कि उनके सद्व्यवहार का यह फल होगा। वह सोचने लगे—तारा से मैं ने कहा था कि मैं धीरजपुर आऊँ-गा, अच्छा हुआ कि मुझे यह समाचार मिल गया। सम्भव था कि मैं तारा के लिये किसी दिन धीरजपुर पहुँच जाता, और ऐसी दशा में न जाने वहाँ क्या होता। यह भी ईश्वर ने बड़ी दया की, नहीं तो बड़ा अनर्थ होता।

रामनगर से तारा के चले जाने पर जिस प्रकार रमेश को तारा की विरह-वेदना का कष्ट हुआ, उसे कौन अनुभव कर सकेगा? अब तक वह यह सोच कर संतोष करते थे कि धीरजपुर किसी समय जाने पर तारा को देख सकेंगे। किन्तु धीरजपुर में लोकनाथ की लीला सुन कर तारा के मिलने की आशा उनके हृदय से जाती रही।

लोकनाथ की निष्ठुर लीला का स्मरण करके रमेश को यह भी निश्चय हो गया कि तारा का लोकनाथ के हाथ से अब छूटना असम्भव है। उनको यह सोचकर अत्यंत दुख होने लगा कि तारा के कष्टों का कारण मैं ही हुआ। उनके हृदय में रात-दिन चिन्तना होने लगी—मेरा सम्बन्ध तारा को दुखी करने के लिये नहीं था, मुझे स्वप्न में भी पता नहीं था कि मेरे कारण उसका जीवन और कष्टमय हो जायगा। मैंने बड़ा अनर्थ किया! एक दुखी आत्मा को और भी व्यथित बना दिया! मुझे अब तक पता नहीं कि मेरे किस अपराधों का यह फल है। लोकनाथ के आने पर भी तारा को किसी प्रकार धीरजपुर जाना स्वीकार नहीं था, और यदि मैंने न भेजा होता, तो वह यों ही लौट जाते। मैंने भेजना उचित समझा था और साथ ही यह भी आशा की थी कि मेरे इस व्यवहार से उनकी सहानुभूति मेरी ओर आकर्षित होगी। पर अत्यन्त दुख की बात है कि मेरे इस सद्व्यवहार का प्रतिकूल परिणाम हुआ। मुझे संसार का अनुभव नहीं था। मैं नहीं जानता था कि अपात्र में सुधा पड़ने से विष हो जाती है। मुझे पता नहीं था कि काँसे के पात्र में नारिकेलोदक पड़ने से वह मदिरा

का गुण देता है। वास्तव में मुझे संसार का ज्ञान नहीं है। यदि मैं यह जानता कि यह अमृत-व्यवहार लोकनाथ के हृदय में पड़ कर विषाक्त फल उत्पन्न करेगा, तो मैं तारा को बलपूर्वक धीरजपुर न भेजता। यदि तारा की बात को मै मान लेता, तो आज मुझे कष्ट न होता और तारा को भी कठोर बन्धनों में पड़ कर रोना न पड़ता।

रमेश का हृदय दुःख और चिन्तना से आक्रान्त हो उठा। सोचने लगे—अब तक मैं पत्रों द्वारा तारा से मिलने की आशा रखता था, किन्तु वह आशा भी अब भस्मीभूत हो गई। उससे मिलने का अव कोई सहारा न रहा। अब न पत्र भेज कर वह मुझसे अपने हृदय की बात कह सकेगी और न मैं ही पत्र भेज कर उसके दग्ध हृदय को शान्त कर सकूँगा।

रमेश का मन एक बार पत्र भेजकर अपने हृदय की समस्या तारा के सम्मुख रख देने के लिये लालायित होने लगा। सोचने लगे—बस एक बार पत्र भेजूँगा और उसमें जी-भर लिखूँगा। फिर मैं तारा के लिये धीरजपुर कभी पत्र न भेजूँगा। उसको भी रोक दूँगा, कि मुझे पत्र न भेजे। लोकनाथ ने जो उत्पात और अनुचित प्रबन्ध किया है, उससे तारा के हृदय में क्या बीतेगी? जहाँ जीवन के लिये ऐसे कठोर बन्धन हों और ऐसा कोई भी न हो, जिसे अपना कहा जा सके, तो फिर कैसे वहाँ पर रह कर संतोष मिल सकता है? यह बड़ा कठिन प्रश्न है। तारा की चंचल प्रकृति और स्वाधीन आत्मा को कैसे संतोष होता होगा?

अनेक बातें सोच-समझ कर रमेश ने पत्र लिखना निश्चय कर लिया, और तारा के लिये पत्र लिखना प्रारम्भ किया—

प्रिय तारा

तुम्हारे चले जाने पर मुझे जितना कष्ट हुआ है, उसे तुमने भी इसी प्रकार अनुभव किया होगा, जैसे कि मैंने किया है। अब तक मुझे आशा थी कि धीरजपुर आकर मैं तुम्हें देख सकता हूँ। किन्तु लोकनाथ की लीला सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ है। वह मेरे साथ

चाहे जो करते, पर तुम्हारे साथ उन्होंने जो कठोर और अनुचित व्यवहार करना आरम्भ किया है, उसे सुन-सुन कर मुझे अत्यंत दुःख हो रहा है। मुझे इस बात का बड़ा दुःख है कि मैं तुम्हारे कष्टों का एकमात्र कारण हुआ हूँ। मुझे पता नहीं था कि मेरे कारण तुम्हारे कष्ट बढ़ जायँगे। मैं तुम्हें चाहता था, तुम्हारा प्यार करता था, उसका फल होना चाहिये था कि मेरे द्वारा तुम्हारा कोई हित होता। किन्तु फल उसके प्रतिकूल हुआ।

तारा, मेरी धारणा है कि यदि तुम मुझसे अपना सम्बन्ध छोड़ दो, तो तुम्हारा जीवन कुछ सरल हो सकता है। मैं अपनी विनम्र सम्मति से तुम्हें समझाना चाहता हूँ कि जिस पथ के छोड़ देने से संकट दूर हो सकते हैं, उसे छोड़ ही देना चाहिये। तुमने मेरी अनेक बातें मानी हैं—तुमने मेरा बहुत बड़ा सम्मान किया है, उसी आधार पर एक बात यह भी तुम्हारे सम्मुख रखता हूँ, तुम मुझे भूल जाओ।

तारा, संसार में नित्य अनेक जन्म होते हैं, और अनेक मृत्युयें होती है। प्लेग, मलेरिया और इनफ्ल्युएंजा के कारण गणनातीत संख्या में आत्मायें संसार त्याग देती है। तुम विश्वास कर लो कि उन्ही के साथ तुम्हारे हृदय का प्यारा-दुलारा रमेश भी संसार से चल बसा। तारा, सच ताओ, यदि वास्तव में ऐसी घटना घटे, तो क्या मुझे तुम भूल न जाओ? भूल जाना पड़ता है। संसार के सम्बन्ध जीवन-भर के लिये होते हैं। जीवन के पीछे सब कोई सबको भूल जाता है। तारा, तुम मुझे भुला देने की चेष्टा करो। तुम्हारा इसी में कल्याण है।

यह मेरा अंतिम पत्र है, और जहाँ तक मुझे पता है, मेरा अब कोई पत्र तुम्हें न मिलेगा। तुम भी मुझे पत्र न लिखना। किसी प्रकार यह पत्र तुम्हारे हाथों तक पहुँचाने का प्रयत्न करता हूँ।

तुम्हार —रमेश

रमेश ने गुप्तचर द्वारा पत्र धीरजपुर भेजा। पत्र भेजने के बाद उनके अन्तःकरण में अनेक शंकायें उत्पन्न होने लगीं। यदि पत्र का पहुँचना किसी

प्रकार लोकनाथ को प्रकट हो गया, तो तारा का बड़ा अहित होगा। मैंने पत्र क्यों भेजा ? मुझे पत्र न भेजना चाहिये था। पता नही, तारा को पत्र पढ़ने का भी एकान्त समय मिलेगा या नही। कहीं ऐसा न हो कि निर्भीक होकर तारा पत्र पढ़ना आरम्भ करे और लोकनाथ को यह बात मालूम हो जाय। यदि ऐसा हुआ, तो फिर क्या होगा ? इस अनर्थ का भी मैं ही उत्तरदायी हूँगा। मोह में पड़कर मनुष्यका ज्ञान नष्ट हो जाता है। खेद है, यह भावना मेरे हृदय में उस समय क्यों न उत्पन्न हुई, जब मैंने पत्र लिखना सोचा था।

पाँचवें दिन गुप्तचर लौटकर रमेश के समीप आया। रमेश बैठे हुए थे। गुप्तचर को देखते ही रमेश ने पूछा—क्यों भाई कुशल ?

गुप्तचर—पत्र है।

पत्र. पत्र ? पत्र लिखने का उसने साहस किया ? पत्र लिखने का समय कैसे मिला······?—रमेश के मुख से यह शब्द निकल ही रहे थे कि गुप्तचर उनके हाथ में पत्र रख कर चला गया। रमेश ने पत्र खोला। उसमें लिखा था—

मेरे सर्वस्व

पत्र मिला। पत्र नहीं था, मृत्युलोक से आया हुआ मृत्यु का परवाना था। तुमसे विलग होने पर असह्य कष्ट हुआ है। मै धीरजपुर कभी न आती, मुझे धीरजपुर के सम्पत्ति-सुख की चाह नहीं थी। किन्तु तुम्हारी आज्ञा! शिरोधार्य।

तुम्हारे कारण मेरा कुछ भी अनर्थ नहीं हुआ—मेरे कष्टों के कारण किसी प्रकार तुम नही हुए। मेरे साथ जो कठोर व्यवहार हो रहा है, तुम्हारे नाम पर सहने में भी मुझे आनन्द मिलता है।

तुम्हारी आज्ञा सदा मानी है और आजीवन मानूँगी। भूल जाने की आज्ञा भी मानने को प्रस्तुत हूँ। किन्तु मानेगा कौन ? मैं, न कि मेरा हृदय। मैं भूल सकती हूँ, और भुलाऊँगी भी, पर मेरा हृदय—जब तक

उसका अस्तित्व है—एक क्षण के लिए भी अपने प्यारे-दुलारे को भूल जाने में असमर्थ है।

प्लेग, मलेरिया और इनफ्लुएँजा में यदि गणनातीत संख्या के साथ मेरा सर्वस्व संसार त्याग सकता है, तो क्या इस पाप-भार जीवन का...? संक्षेप में यह पत्र लिखकर भेजती हूँ। अधिक लिखने का समय नहीं।

हतभागिनी—तारा

पत्र पढ़कर रमेश के हृदय में अनेक संकल्प-विकल्प उठने लगे।

३८

तारा और रमेश का पत्र-व्यवहार बहुत दिनों से बन्द है। उसका कुशल-समाचार पाने के लिये उनके निकट कोई साधन न रहा। रामनगर से उसको भेजकर उन्होंने समझा था कि जब चाहूँगा धीरजपुर जाकर उसे देख सकूँगा—जब चाहूँगा उसके पास पत्र भेजकर अपने हृदय की बातें उसको समझा सकूँगा। किन्तु बात कुछ और हो गई। उनको धीरजपुर जाने और उसके नाम पत्र-व्यवहार करने में असमर्थ हो जाना पड़ा।

धीरजपुर में तारा की क्या अवस्था है—लोकनाथ और उनके परिवार का उसके साथ कैसा व्यवहार है—रमेश को इस बात का पता न मिलने लगा। तारा की चंचल प्रकृति को यह कठोर बन्धन कैसे सहन होते होंगे-उसका अस्थिर हृदय किस प्रकार अपने जीवन के दिन बिता रहा होगा—वह क्या सोचती होगी—उसके मन में कैसी तरंगें उठती होंगी—उसको उस विशाल भवन में, जहाँ पर उसका अपना कोई नहीं है—कैसे संतोष मिलता होगा—आदि शत-शत प्रश्न उठकर रमेश के हृदय को अस्तव्यस्त करने लगे।

रमेश प्रायः सोचा करते—पता नहीं, तारा के हृदय में मेरे लिये कैसी भावनाएँ उठती हैं। मेरे कारण वह विपदापन्न हुई है, इसलिये हो सकत

है कि वह मुझे भूलने लगी हो। बहुत सम्भव है, उसने अनुभव किया हो कि रमेश के कारण मेरा जीवन और भी संकटापन्न हुआ है। यदि उसका हृदय ऐसा अनुभव कर सकता है, तो इसमें सन्देह नही कि वह मुझे भूल भी सकती है। किन्तु, यदि वास्तव में वह मुझे भूल जायेगी, तो क्या करूँगा? वह चाहे मुझे भूल ही जावे, किन्तु मेरा हृदय उसको कदापि न भूलेगा।

तारा के भूल जाने की बात सोचकर रमेश का हृदय अत्यन्त दुखी होने लगता--इतना सम्बन्ध बढ़ाकर क्या तारा भूल जायगी—अपने और मेरे सम्बन्ध का संसार में एक तहलका उठाकर क्या उसका हृदय मुझे भूल सकता है? कभी नही। वह मुझे भूल जायेगी, यह चिन्तना मेरे हृदय की निर्बलता है, और यदि वास्तव में वह भूल जावे तो क्या अनर्थ करे? भूल जाने में उसकी भलाई है, मेरा भी उपकार है। मै आज संसार में दुखिया हूँ—केवल तारा के दुख में। यदि उसका सम्बन्ध न होता, तो मेरी यह अवस्था कभी न होती। इसलिए, यदि वह मुझे भुला दे, तो उसका जीवन कुछ शान्त और सुखी हो सकता है। और मेरा भी इससे बड़ा उपकार हो सकता है। यही अपने अन्तिम पत्र मे मैंने उसको लिखा भी था, किन्तु उसने जो उत्तर दिया था, उस उत्तर के शब्द स्पष्ट व्य रहे थे, कि उसके हृदय में मेरा एक विशेष स्थान है।

रमेश जिस समय एकान्त में बैठते, अथवा कुछ लिखने-पढ़ने का प्रयत्न करते, उस समय सब कुछ भूल जाते और तारा की मूर्ति उनके सम्मुख घूमने लगती। वह सोचने लगते—तारा के दर्शन अब कभी न होंगे। वह अब कभी देखने को न मिलेगी। एक जन्म के लिये वह बिलग हो चुकी। मुझे स्वप्न में भी पता नही था कि उसकी यह अवस्था हो जावेगी—मुझे कुछ भी पता नहीं था कि उसको मैं एक जन्म के लिये विदा करता हूँ। मैंने जो सोचा-समझा था, वह सब मेरा भ्रम निकला। यदि वह सदा के लिए दूर हो गई, यदि वह मुझे अब देखने को न मिली, तो मैं अपने जीवन की

रक्षा कर सकूँगा, इसमें सन्देह है। मैं जानता हूँ कि मनुष्य पर बड़ी-बड़ी विपदायें आती हैं, और मनुष्य उन्हें सहन कर संसार में जीवित रहते हैं; किन्तु मेरे सम्मुख जो परिस्थिति है, वह कुछ दूसरा अर्थ रखती है।

रमेश का जीवन क्रमशः उदासीन और उद्भ्रान्त होने लगा। खाते-पीते, उठते-बैठते, उनके चित्त से तारा की स्मृति न भूलती। वह जब सोते, तो तारा का स्वप्न देखते और जाग्रत अवस्था में जो कुछ काम करते, सब तारा के लिए करते। सन्ध्या-समय जब वह टहलने जाते, तो किसी नदी या जलाशय के निकट नीरव स्थान में टहलते हुए चेतना-हत होकर सोचने लगते—मानो मै तारा से मिला हूँ, वह मेरे सम्मुख खड़ी है, और मै अपने इन दिनों की गई-बीती जीवनी उसको सुना रहा हूँ।

इस प्रकार घण्टों वह अस्पष्ट स्वर मे उसके लिये जो कुछ कहना चाहते, अपने हृदय के उद्गार निकाला करते, किन्तु अचानक सचेत होने पर साव-धान हो जाते और अपनी इस उद्भ्रान्त अवस्था पर दुखी होकर लौट जाते।

रमेश का जीवन बहुत दुखी हो गया, किसी प्रकार अपने जीवन में उनको सुख और आशा का स्थान—तारा के अतिरिक्त—न दिखाई देने लगा। उनको उसकी विरह-वेदना असह्य कष्टकर प्रतीत होने लगी।

एक दिन वह सोचने लगे—मेरे जीवन का सम्बन्ध साहित्य और देश-सेवा से था। मैं देशप्रेमी था, साहित्यसेवी था। ससार की और किसी तृष्णा ने मेरे हृदय में अपना स्थान नहीं किया था। माया और मोह का मुझमें लेश-मात्र भाव नहीं था। मुझमें इन्द्रिय-चंचलता नहीं थी, कोई अनिष्टकर भावना नहीं थी। एक दिन था, जब मुझमें आत्मसंयम था—तृष्णा के दमन की शक्ति थी। किन्तु आज मैं वह रमेश नहीं हूँ। मेरी स्थिति कुछ दूसरी है। मुझे अपने जीवन में सुख नहीं है। किसी क्षण मुझे कल नहीं। किसी काम में मुझे संतोष नहीं मिलता। किसी स्थान में मुझे सुख नहीं जान पड़ता। मेरी इस अस्थिरता का कारण—जहाँ तक मैं सोचता हूं—तारा होती है। किन्तु प्रश्न यह है कि उसकी विरह-व्यथा मुझे इस रूप में

कष्टकर क्यों प्रतीत होती है? क्या मुझपर तारा की यौवनासक्ति का प्रभाव है? यदि वास्तव में यही बात है, तो इस प्रेम को धिक्कार है। इस जीवन को धिक्कार है!

रमेश को अपनी स्थिति की आलोचना करते-करते दुःख होने लगा। बड़ी देर तक सोच-विचार कर वह मन-ही-मन कहने लगे—मेरे हृदय में कभी भी तारा का अनिष्ट नहीं है, मेरा उद्देश्य किसी प्रकार अनिष्टकर नही हो सकता। असम्भव है कि मै उसके साथ प्रतारणा करूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मै जान-बूझ कर उसका अनिष्ट कभी नही कर सकता। मैंने शुद्ध अन्तःकरण से उसका हित चाहा है। उसके जीवन से मेरी शुद्ध समवेदना का सम्बन्ध है। यदि उसके जीवन में ऐसी घटना न घटती—यदि उसका जीवन इस प्रकार निराश और अनाथ न हो जाता, तो मेरी सहानुभूति का सम्बन्ध भी उससे न होता। मैं केवल अपनी सच्ची सहानुभूति का उत्तरदायी हूँ। मेरी ऐसी स्थिति में उसने अपने जीवन की व्यावहारिक सुन्दरता द्वारा मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। वास्तव में धीरजपुर जाकर इस बार जो उसका जीवन कठोर बन्धनो में जकड़ा गया है, वही मेरे जीवन की अस्थिरता का कारण है। यदि उसके जीवन की यह समस्या न होती—यदि उसका जीवन इतने संकट में न होता, और अपनी ऐसी अवस्था में उसने अपने करुणापूर्ण नेत्रों से मेरी ओर न निहारा होता, तो उसके लिए मेरी यह अस्थिरता भी न होती। इन घटनाओं द्वारा समुद्भूत मेरा यह सम्बंध यदि समाज और धर्म के निकट पतित हो सकता है, तो मै धर्म और समाज की रक्षा करने में असमर्थ हूँ। मै जानता हूँ कि मेरा जीवन दुखी होता है, मैं यह भी जानता हूँ कि समाज को मेरा यह सम्बन्ध मान्य न होगा; किंतु मैं असमर्थ हूँ तारा की उपेक्षा करने में। मेरे जीवन में शील है—मेरे जीवन में निराश-आत्माओं के लिए बहुत बड़ा स्थान है। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के नाते से नहीं; किन्तु मेरे जीवन का संसार की स्थिति से जितना ही सम्बन्ध होता जाता है, मुझे अनुभव हो रहा है कि सामाजिक बन्धनों के

कारण बहुसंख्यक अनर्थ हो रहे हैं। उनका उत्तरदायी कौन है? मनुष्य प्रकृति के अधीन है। यदि समाज और सभ्यता के नियम प्रकृति के प्रतिकूल है, तो मनुष्य पर समाज और सभ्यता के बन्धनों का आरोपण केवल अत्याचार है, जिसे मनुष्य किसी प्रकार सहन नहीं कर सकता। समस्त संसार में—सारे भूमण्डल पर प्रकृति की सत्ता है। प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक जीव के जीवन का संचालन उसकी प्रकृति पर निर्भर है। ऐसी अवस्था में, समाज के कुछ नियम—जो प्रकृति के उलटे समाज को लिये जा रहे है—कैसे पालन किये जा सकते हैं?

रमेश के अनुभव में समाज और सभ्यता का मान फीका होने लगा। जितना ही सोचने लगे, उतना ही उनके हृदय में संसार के कुछ दूसरे विचार बैठने लगे। बार-बार सोचने लगे—संसार के मनुष्यों को दुखी बनाने का बहुलांश में समाज ही अपराधी है। समाज के यह कठोर बन्धन व्यक्तिगत सत्ता को नष्ट कर रहे हैं—व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अस्तित्व मिटा रहे हैं।

इस प्रकार रमेश का सारा समय संसार, जीवन, समाज और प्रकृति की आलोचना-प्रत्यालोचना करने में व्यतीत होने लगा।

३९

रामा के हृदय में रमेश पर जो अविश्वास उत्पन्न हो गया था, और जिसके कारण उनकी अवज्ञा करने के लिए विवश हो गई थी, तथा उन दोनों के हृदय में जो परस्पर मनोमालिन्य की गाँठ पड़ गई थी, रमेश के अनेक बार समझाने पर रामा के विचारों में कुछ परिवर्त्तन हुआ; किन्तु फिर भी मनोमालिन्य के स्थान इतने परिमार्जित न हो सके कि दोनों क्षत-विक्षत हृदय एक दूसरे के मनोविनोद और संतोष के कारण हो सकते।

रमेश का जीवन जिस प्रकार दुर्दान्त और सुखहीन हो गया, उन्होंने उसे भली प्रकार अनुभव किया। तारा के संसर्ग के प्रथम वह जिस

परिस्थिति में थे, सन्तुष्ट थे, और उस अवस्था में रामा उनके लिए एक विशेष मनोरंजन थी।

रमेश देश के उज्ज्वल भविष्य की आशा करने वाले एक चिन्तनशील नवयुवक थे। तारा के संसर्ग ने उनके जीवन को कुछ-से-कुछ बना दिया। रामा की श्रद्धा-भक्ति और सेवा-सुश्रूषा से उनके जीवन को जो सुख था, वह अतीत काल के कराल उदर में विलीन हो गया, और जिस आधार पर उनका यह प्रणय-विच्छेद हुआ, वह तारा का सम्बन्ध भी उनसे कितनी दूरी पर जा बसा।

रमेश को अपनी इस अवस्था पर बार-बार असंतोष होने लगा। तारा के संसर्ग से उनके जीवन की यह अवस्था हो गई। और उसका जीवन भी विपदाओं के अनेक बन्धनों में बँध गया। किन्तु फिर भी उनके हृदय में उसका सम्बन्ध-विच्छेद करने के लिये किसी समय भावना न उठी।

अपनी अवस्था पर रमेश ने बार-बार विचार किया। किन्तु उनकी समझ में नही आया कि मेरी किसी भूल का यह परिणाम है। वह बार बार सोचने लगे—रामा के अनेक विचारों का मैं कारण हो सकता हूँ। जिस कारण से मुझ पर उसकी अश्रद्धा हो गई है वह भावना मेरी उत्पन्न की हुई है। मैंने अपनी समझ में कोई भूल नहीं की। केवल विचारों में मत-भेद है। ऐसी दशा में, यदि मैं उसके विचारों में परिवर्त्तन करने की चेष्टा करूँ, तो इसमें सन्देह नहीं कि अपने विचारो की ओर उसको आकर्षित कर सकता हूँ।

तारा को गये हुए सात मास हो चुके। रमेश की इन दिनों क्या अवस्था हुई है, वे ही इसे जानते हैं। यदि इन दिनो रामा मनोमालिन्य छोड़ कर उनको अपनाती, तो उनका बहुत उपकार हो सकता था। पर वह स्पष्ट करके यद्यपि उनके सम्मुख अपनी बात किसी दिन न कह सकी, तथापि नित्य सोचती—मेरे सुख और सौभाग्य एकमात्र रमेश ही थे; पर उनका मन दूसरी ओर आकर्षित है।

रामा को यह भी विश्वास हो गया कि रमेश का मुझ पर जो स्नेह था—

विश्वास था, वह अब नही है। रमेश ने भी रामा के व्यवहारों से जहाँ तक अनुभव किया, यही समझा कि उसका मुझपर अब भी अविश्वास है।

रामा और रमेश के मिलने तथा एकत्र होने पर भी दोनों हृदयों के इस प्रकार के संकल्प-विकल्प ने एक दूसरे हृदय को परस्पर विकसित न होने दिया।

दिन का अवसान हो चुका है। सूर्य्य भगवान पश्चिम के अनन्त सागर में डूब चुके हैं। लाल, नील और कृष्ण वर्ण के भीषण-काय मेघ पश्चिम की ओर दिखाई दे रहे है। उनके ऊपर सुनील आकाश अस्तगामी सूर्य्य की लोहित किरणों से रंजित हो उठा है। रामा अपने घर में लेटी हुई आकाश की ओर निहार रही है।

अचानक रमेश ने घर में प्रवेश किया। उनके आ जाने पर वह झट उठ कर खड़ी हो गई, और अपने अस्त-व्यस्त वस्त्र सम्हालने लगी। वह उसी चारपाई पर लेट गये और धीरे से उससे बैठने के लिये कहा। उसके बैठ जाने पर उन्होंने अनेक क्षण पश्चात् दीर्घ-श्वास खींच कर कहा—रामा, क्या मेरे ऊपर अब भी तुम्हारी अप्रसन्नता है?

रामा ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया—नही, मेरी कुछ अप्रसन्नता नहीं है।

रमेश ने कहा—मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहता हूँ, किन्तु तुम भी बातें करना चाहो तो, क्योंकि मेरी समझ में अब भी तुम्हारा मेरे ऊपर अविश्वास है। अपनी समझ में मैंने कोई भूल नहीं की। मैं जहाँ तक सोचता हूँ, तुम्हारी अप्रसन्नता और अश्रद्धा का जो कारण हो सकता है, वह मेरी भूल नही है। इस लिए मैं यह चाहता हूँ कि अपने विचार मैं तुम्हारे सम्मुख रखूँ और तुम जो कुछ सोचती होओ, मुझसे स्पष्ट कहो। तो इसका यह फल होगा कि यदि मुझसे भूल होती होगी, तो मैं उसे दूर करने का प्रयत्न करूँगा, और यदि मेरी भूल न होगी, तो तुमको अपना भ्रम दूर करना होगा।

रामा—मैं कुछ नहीं सोचा करती और न मेरा कोई भ्रम है।

रामा की यह अवहेलनापूर्ण बात सुन कर रमेश ने तीव्र स्वर में कहा—मैं यह चाहता हूं कि मेरी अवस्था तुम जानती रहो। मेरे जीवन में यह परिवर्त्तन हुआ है, जिसपर तुम्हारी यह अश्रद्धा है। मेरा यह भी विश्वास है कि मेरे जीवन मे बहुत बड़े परिवर्तन होगे। इस लिये यदि तुम मेरे यह परिवर्त्तन जानती न रहोगी, तो तुम्हारा बहुत बड़ा अनिष्ट होना सम्भव है। मैं तो यह चाहता हूं कि मेरे अनुभव के साथ-साथ तुम भी अपना परिवर्त्तन करती रहो, इस लिये कि मेरे जीवन से तुम्हारा बहुत बड़ा सम्बन्ध है, और ऐसा करने में ही तुम्हारा उपकार है। किन्तु, यदि ऐसा न कर सको, तो तुम्हारी इच्छा। कम-से-कम मेरी अवस्था को जानते रहना तुम्हारे लिये परम आवश्यक है।

रामा—जैसा आपने मुझे बनाया था, वैसा मै बनी थी। आप ही ने मुझे समझाया था, स्त्री-धर्म क्या है। आपने ही समझाया था, पुरुष का धर्म क्या है। आपके विचारों में परिवर्तन हुआ है, यह मैने अब समझा है। इस लिए आपके ऊपर अब मेरा मनोमालिन्य नहीं है। किन्तु मेरे विचारों में परिवर्त्तन नहीं हो सकता।

रमेश—मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हारे विचारों में क्या परिवर्त्तन नहीं हो सकता और तुमने क्या समझ रखा है?

रामा—मैं तो यही जानती हूँ कि किसी पुरुष का दूसरी स्त्री के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता।

रमेश—तुम्हारे संक्षेप में व्यक्त किये गये भाव को मैंने समझा। इसका उत्तर मैं स्पष्ट और विस्तृत देना चाहता हूँ। मानव-समाज के लिए सामाजिक बन्धन, धार्मिक बंधन, सभ्यता के बंधन, लौकिकबंधन आदि अनेक बंधन हैं, जिनसे मनुष्य-जाति को एक क्षण के लिए छुटकारा नहीं है। इन सब बंधनों में मानव-समाज बँधा हुआ है। केवल इस लिए कि इनके द्वारा मनुष्य-जाति का उपकार है—मनुष्य-जाति से मेरा अभिप्राय समस्त स्त्री और पुरुषों से है—मैं भी किसी समय में इन बन्धनों को बड़ी श्रद्धा के साथ मानता था।

किन्तु मुझे दुःख है कि अब मैं इनपर अश्रद्धा करने लगा हूँ। इन बन्धनों से मनुष्य-जाति का स्वार्थ-दमन होता है, आत्मसंयम होता है। इनके द्वारा मनुष्य-जाति का जीवन एक सीमा के अन्तर्गत परिमित हो जाता है। मनुष्य वासनात्मक क्रान्ति नहीं कर सकता, स्वार्थान्ध होकर एक दूसरे का अनिष्ट नहीं कर सकता। इन बन्धनों का उपकार यदि मै मानूँ भी, तो दूसरी ओर इन्हीं बन्धनो के द्वारा एक बड़ा अनिष्ट होता हुआ मुझे दिखाई देता है। यह संसार प्रकृति का कौतुक है। इसमें केवल प्रकृति का अधिकार है। संसार की भलाई एकमात्र प्रकृत पथ पर चलने और प्राकृतिक नियमों का पालन करने में निर्भर है। संसार का परिचालन प्राकृतिक नियमो पर है, यह संसार के अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया है। प्राच्य और प्रतीच्य के प्रायः सभी दार्शनिक और तत्ववेत्ता प्रकृति के प्रेमी मिलते हैं। जब मैं प्रकृति की ओर निहारता हूं तो देखता हूँ कि यह सामाजिक और सभ्यता के बन्धन प्रकृति की अवहेलना करने वाले हैं। प्राकृतिक नियमो और सामाजिक बन्धनो में इतनी विभिन्नता है कि मनुष्य-समाज एक का ही पालन कर सकता है। समाज और सभ्यता का प्रकाश मनुष्य-जाति को उस पथ पर ले जा रहा है, जिस पथ का संचालन प्रकृति का किसी प्रकार स्वीकार नही हो सकता।

रमेश की इस लम्बी व्याख्या को रामा ने ध्यानपूर्वक सुना। उनके चुप हो जाने पर उसने उनको उत्तर देना चाहा, पर उसकी समझ में न आया कि क्या उत्तर दूँ। उसके कुछ न कहने पर उन्होंने फिर कहा—प्रकृति चाहती है प्रत्येक जीव में प्रेम, स्त्री-पुरुष में प्रेम। किंतु समाज और सभ्यता के यह बन्धन विवश करते हैं प्रत्येक स्त्री को, कि वह एक पुरुष को देखकर उसे अपना शत्रु समझे। मैं यह कह सकता हूँ कि एकमात्र सभ्यता के ही प्रकाश से स्त्री-जाति की समझ में पुरुष-जाति सतीत्व अपहरण करने वाला एक शत्रु है, और पुरुष-जाति के लिये स्त्री-जाति केवल इन्द्रिय-लिप्सा चरितार्थ करने की सामग्री।

रामा ने बड़ी देर में सोच कर कहा—यदि सभ्यता का डर न होता, सामाजिक बन्धनों का भय न होता; और लौकिक परिपाटी का विचार न होता, तो व्यभिचार की मात्रा—विषय-वासना की सीमा—अपरिमित हो जाती।

रमेश ने प्रतिवाद करते हुए कहा—कदापि नहीं। यह भूल है और बहुत बड़ी भूल है। मनुष्य-जाति में व्यभिचार और विषय-वासना बढनेका कारण सभ्यता का प्रकाश है। मैं गर्व के साथ कह सकता हूँ कि आज भी जिन पहाड़ी और जंगली जातियों में सभ्यता नहीं है, उनमें व्यभिचार की मात्रा कम है। मै यह भी कह सकता हूँ कि शिक्षितों की अपेक्षा अशिक्षितों में व्यभिचार और विषय-वासना कम है। सभ्यता ने शिक्षा का आविष्कार किया है और सभ्यता ने ही शिक्षा के उन्माद में सामाजिक बन्धनों की रचना की है। एक ओर रोग का उत्पन्न करना और दूसरी ओर चिकित्सा का प्रबन्ध करना। मेरी समझ में नही आता कि इन बातों का क्या अर्थ होता है?

रामा—इन सब बातों के स्थान पर क्या होना चाहिये?

रमेश—समाज की इस दुरवस्था पर मुझे बहुत दुख है। मनुष्य-जाति में पाप की इस बढ़ी हुई विवेचना ने ही मानव-जाति को पाप और वासना की ओर अग्रसर कर दिया है। संसार में मानव-जीवन अनेक बन्धनों में पड़ कर बड़ा दुखी हो गया है। यदि मानव-जाति पाप और वासना को एक बार भूल कर मनुष्य-जाति के अपनाने का प्रयत्न करे, तो एक बार मनुष्य-जीवन फिर सुखी हो सकता है।

रमेश की व्याख्या ने रामा के हृदय पर बड़ा प्रभाव डाला। वह टकटकी लगा कर रह गई। उसके मुख से कोई बात न निकली। उन्होंने फिर कहा—रामा, मैं तुमसे एक बार अनुरोध करता हूँ, संसार की परिस्थिति पर विचार करो। अपने हृदय से संकीर्ण विचारों को निकाल दो। कोई भी पुरुष किसी स्त्री से मिलता है—न केवल पाप-वासना के लिये! किसी भी स्त्री की श्रद्धा और प्रेमाकांक्षा किसी पुरुष के साथ होती है—न केवल स्वार्थ-साधन के लिये! तुम्हारा हृदय यदि इतना पतित है, तुम्हारी आत्मा यदि इतनी

कलुषित है, तो तुम अपने हृदय को निर्म्मल बनाने के लिये प्रायश्चित्त करो, और तब तक प्रायश्चित्त करो जब तक तुम्हारा हृदय पूर्ण निर्विकार न हो जाये। तुम अपने नेत्रों से किसी को विषयासक्त देखो, किन्तु तुम्हारे हृदय में उसको विषयासक्त कहने की भावना भी उत्पन्न न हो। जिस दिन तुम्हारे हृदय की यह अवस्था हो जाय, उस दिन तुम अपने हृदय को निर्मल समझो। यदि तुम्हारा हृदय इस प्रकार की व्यवस्था करने में तुमको असमर्थ दिखाई देता हो, तो तुम मुझ से स्पष्ट कह दो, मै स्वयं प्रायश्चित्त कर के तुम्हारे अन्तःकरण को शुद्ध करूँगा, और यदि मैं ऐसा न कर सकूँगा, तो अपने इस तुच्छ जीवन को समाप्त कर दूँगा।

रामा का निर्वल हृदय काँप उठा। वह मन-ही मन सोचने लगी—मैं नही जानती थी कि मेरा हृदय पाप की जिस व्याख्या पर विश्वास करता है, वह पाप की व्याख्या नही है। अपने हृदय का पाप ही संसार का पाप है। बोली—मेरे लिये आप प्रायश्चित्त करेंगे, मेरे लिये आप जीवनोत्सर्ग करेंगे, यह कैसी बात? मैं क्यो न कर सकूँगी? जो मुझे करना चाहिये, उसे आप क्यों करेंगे? मैं अपने हृदय के विकारों को दूर करूँगी—अपने हृदय की धारणा और श्रद्धा को........।

रमेश बीच ही में बोल उठे—मैं यह नहीं कहता कि मै देवता हूँ, यह नहीं कहता कि मुझमें दोष नही है। मै केवल इतना विश्वास दिलाता हूँ कि मैं कलुषित व्यवहारों का शत्रु हूँ। मुझसे भूल हो सकती है, किन्तु उस भूल को भुलाने और छिपाने की भूल नही हो सकती। मैं तुम्हारे लिए इतना और कहना चाहता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना हृदय इतना शुद्ध और निर्म्मल रखना चाहिये कि उसे संसार का पाप और दुराचार कभी पाप और दुराचार के रूप में दिखाई न देवे। पाप और दुराचार को पाप और दुराचार ही पहचान सकता है। इसलिए संसार के पाप और दुराचार को वही हृदय पहचान सकता है, जिसके हृदय में इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ होगी।

रमेश की बातें सुनकर रामा को जान पड़ने लगा, मानों मैं उस लोक

में प्रवेश कर रही हूँ, जहाँ देव और देवियों का निवास है, जहाँ पर पाप नहीं है, वासना नहीं है। उसको अपने आप पर बार-बार अश्रद्धा और घृणा होने लगी।

४०

शिक्षा और सभ्यता ने मानव-समाज को किस प्रकार विकराल स्वरूप में परिणत कर दिया है—मनुष्य-जीवन का एक-एक क्षण उलझनो से जकड़ कर कितना प्रकृत पथ से पतित हो चुका है, संसार की यह परिस्थितियां और जीवन की उलझनें एक-एक कर के रमेश के नेत्रों में रात-दिन घूमने लगी।

किसी घर में जन्मोत्सव देख कर रमेश की दुखी अन्तरात्मा सोचने लगती—जिस जन्म का कोई मूल्य नहीं है—जिस जीवन का कोई ठिकाना नहीं है, उसके लिये यह उत्सव क्यो हो रहे हैं? जिस जीवन के लिये पता नहीं कितनी आत्मायें अश्रुपात करती है—जो जीवन एक मनुष्य के लिए संसार में भारी हो सकता है और जिस पर मेरी भाँति अनेक आत्मायें अपने जीवन की उलझनों के लिए रात-दिन अश्रुपात करती हैं, उस जीवन के लिये यह जन्मोत्सव? यह हर्षोन्माद!

सम्पत्तिवानों के बालक-बालिकाओ के विवाहोत्सव—जिनमें वेश्या-नृत्य, विदूषक आदि के मनोरंजन और हास्य-विनोद, ठाट-बाट, सजधज के अनाखे चमत्कार होते—देख कर रमेश की विरागी चित्त-वृत्तियाँ रो उठती। सोचने लगते—जिस बालिका के सौभाग्य-सम्बन्ध में इतना आडम्बर हो रहा है, जिसके सौभाग्य-वरण में इतना सब कुछ किया जा रहा है, उसके सौभाग्यमें क्या लिखा है, कौन जानता है? किसने देखा है कि कल वही बालिका वैराग्य-व्रत की व्रती न होगी? कौन जानता है, कल उसीका यह सारा सौभाग्य कराल काल की आवर्त्तनमयी विभीषिकाओं में विलीन न हो

जायगा ? जीवन के जिस कौतुक का क्षण-भर में क्या होने वाला है, जब इसका कुछ पता नहीं है, तो फिर उसके लिये यह व्यर्थ का आडम्बर क्यों ? क्या यह जीवन का उपहास नहीं है ? क्या यह भविष्य में होनेवाली विभीषिकाओं को निमंत्रण देना नहीं है ?

यह सोचते हुए रमेश के सन्मुख तारा के जीवन का हृदयदाहक चित्र चित्रित हो जाता।

रास-जैसे विलास-भोग और विषयासक्ति के संगीतोत्सव रमेश की अन्तरात्मा में काँटे की भाँति चुभते। यह वासनात्मक अभिनय और आमोद-प्रमोद के प्रत्यक्ष चरित्र उनके उद्भ्रान्त जीवन में दुःख और क्षोभ का प्रादुर्भाव कर देते। उनको सहसा बोध होता—संसार के यह अभिनय उन विरागी आत्माओं में—जिन्हें समाज ने असमय वैराग्य-व्रती होने के लिये विवश किया है—क्या भावना उत्पन्न करते होंगे ? आमोद-प्रमोद तथा वासनात्मक संगीतोत्सव देखकर वे हृदय—जिन्हें समाज ने अपने कर्कश शासन द्वारा बिलग कर त्यागी होने के लिये असमय विवश किया है—अपने जीवन का क्या अर्थ समझेंगे ? संसार में एक ओर घोर विषय-वासना और दूसरी ओर त्याग ! एक ओर भोग-विलास की स्वेच्छाचारिता और दूसरी ओर कठोर साधना ! धन्य समाज ! तेरे शासन की बलिहारी !

कानपुर में रमेश जिस घर में रहा करते हैं, उसी घर से मिला हुआ एक दूसरा घर है। एक दिन वह सन्ध्या समय चार बजे अपने घर की छत पर बैठे हुए पुस्तक पढ़ रहे थे। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते बड़ी देर हो चुकी है।

अचानक दूसरे घर से स्त्रियों का गाना प्रारम्भ हुआ। वह कुछ समय तक पढ़ते रहे; किन्तु स्त्रियों के गानों ने कुछ ही देर में उनका अध्ययन भंग कर दिया। चित्त-भंग होते ही उनके हृदय में फिर वही उद्भ्रान्ति और कातरता उत्पन्न हो उठी। उन्होंने अपने को सँभालकर सचेत किया और पढ़ने की ओर ध्यान दिया। जैसे-तैसे दो ढाई पृष्ठ फिर पढ़ डाले।

स्त्रियों के रसीले गानों ने रमेश के चित्त को फिर विचलित कर दिया।

वह इस बार अपने को किसी प्रकार सम्हाल न सके। पुस्तक बंद करके रख दी और सोचने लगे—साँझ होने में अब अधिक विलम्ब भी नहीं है, चलें किसी ओर घूम आवें।

यह सोच कर वह घर से निकल पड़े और मेस्टन-रोड पर कुछ सोचते विचारते हुए चले।

जिस गान ने रमेश का पढ़ना भंग किया और जिसने छत पर से उनको उठ जाने के लिये विवश किया, उसी गाने का कुछ भाग बार-बार भुलाने की चेष्टा करने पर भी उनकी स्मृति से विस्मृत न हुआ। अनेक प्रकार की चिन्तनायें करते और ए० बी० रोड, रामनारायण-बाजार तथा पटकापुर होते हुए ठंढी सड़क पर जा निकले। कहीं पर बैठने की इच्छा न हुई। सोचते-विचारते और टहलते-घूमते वह सरसैयाघाट पर गंगाजीके किनारे जा पहुँचे।

सीढ़ियाँ उतर रमेश गंगाजी के तट पर पहुँचे। नीचे की सीढ़ियों से मिला हुआ जो बुर्ज जल में कुछ दूर प्रवेश करके गोलाकार बना हुआ था, उसी पर जाकर बैठ गये।

सरसैया-घाट के सभी घाटों पर प्रायः ऐसे छोटे-बड़े अनेक बुर्ज बने हुए है। जल के किनारे बैठकर विहार करनेवाले कानपुर के अनेक व्यक्ति प्रायः सायंकाल आकर इन्हीं पर बैठते और विहार करते हैं।

सूर्य्यास्त हो चुका है, फिर भी पृथ्वी पर अभी प्रकाश है। पश्चिमाकाश पर लालवर्ण के विराट रूप दिखाई दे रहे हैं। बुर्ज पर बैठे हुए रमेश ने देखा—बुर्ज के आसपास तीन ओर गंगा का गम्भीर जल है। अपरिमित जल पश्चिम की ओर से पूर्व की ओर बह रहा है।

उस अगाध जल की ओर श्रद्धा और विश्वास के साथ बार-बार देखकर वह सोचने लगे—गंगा, तुझमें शीतलता है—तेरे इस अगाध जल में बड़ी शीतलता है। तेरी यह शीतलता क्या मेरे हृदय को-जो जीवन की कठोर विपदाओं से त्रस्त है और संसार की अनेक विपद ज्वालाओं से दग्ध हो रहा है—शीतल कर सकती है? संसार की अनेक आत्मायें समय-असमय, अचानक

और जान-बूझ कर, तेरी गोद में पहुँच गई है और अपने जीवन की ज्वाला को शान्त कर सकी है। मेरा अन्तःकरण संसार की ज्वालाओं से भुन रहा है, मैं विनम्र प्रार्थना करता हूँ, मातु गंगे! अपने हृदय में तू मुझे स्थान दे। इस संसार में केवल दुःख है—केवल कष्ट है। मेरा यह जीवन संसार की चिन्तनाओं से जर्जरित हो चुका है। मुझे संसार में अब कहीं शान्ति नहीं है—संतोष नहीं है। मैं प्रार्थना करता हूँ, मुझे अपनी शीतल गोद में स्थान देकर शान्ति दे।

रमेश सोचने लगे—यदि मैं आज गंगा के अगाध जल में अपना जीवन उत्कर्ष कर दूँ, तो मेरे इस दग्ध जीवन को निःसन्देह शान्ति मिल सकती है।

रमेश निश्चयपूर्वक अपना जीवन गंगा के अगाध जल को समर्पित कर देने के लिए प्रस्तुत हो गये। उन्होंने अपने जीवन के अंतिम क्षण गिनते हुए एक बार तारा की याद की। उनके नेत्रों से अश्रुपात होने लगा। तारा की स्मृति से उनका हृदय चीत्कार करके रो उठा।

उस नीरव अश्रुपात में रमेश के मुख से निकल पड़ा—तारा, तुमसे बहुत दिन पहले विलग हो चुका था, आज संसार मे विलग होता हूँ। तारा, मैं संसार से चलता हूँ, मेरे जीवन के यह अंतिम क्षण व्यतीत हो रहे हैं! तारा, संसार से विदा होते समय क्या मै तुम्हें एक बार देख भी न पाऊँगा?

रमेश का हृदय तारा को एक बार देखने के लिए अस्थिर हो उठा। वह सोचने लगे—मैं अपना जीवन गंगा को उत्सर्ग कर दूँगा, आत्मघात करूँगा, संसार का त्याग करूँगा। किन्तु तारा को इन आँखों से एक बार देखकर!

इस प्रकार की भावना करते हुए रमेश को गंगाजी के तट पर बहुत समय हो गया। उन्होने सचेत होकर देखा, चारों ओर अंधकार हो गया

है। उस अन्धकार में वह अपने दुःखावेग को रोक न सके। फूट-फूट कर रोने लगे।

बड़ी देर तक रमेश का अश्रुपात न रुका। उनके हृदय में एक आन्दोलन-सा होने लगा—जो जिसे चाहता है, वह उससे मिल नहीं सकता! संसार की यह दुरवस्था! वह उसे एक बार अपने नेत्रों से देख नहीं सकता! समाज का यह आधिपत्य! सभ्यता का यह नियंत्रण!

कुछ देर में उनका हृदय शान्त हुआ। देखा, क्रन्दन के पश्चात् हृदय हल्का हो गया है। समझा था, क्रन्दन स्त्री-जाति की स्वाभाविक गति है—व्यर्थ की बात है। किन्तु आज समझे, जिस समय हृदय की कातरता इतनी बढ़ जाती है कि संसार में कुछ नहीं सूझता—जिस समय अपना कोई बल-भरोसा नहीं रह जाता, उस समय एकमात्र क्रन्दन ही उस दुःख-भार को कम करने में समर्थ होता है।

गंगा के किनारे बुर्ज पर बैठे हुए रमेश को बड़ी देर हो गई। चारों दिशायें तिमिराच्छन्न हो गईं। उन्होंने उठकर गंगा को प्रणाम किया और घर का रास्ता लिया।

४१

दिन पर दिन और मास पर मास व्यतीत होते चले गये, तारा का कोई समाचार न मिला। उसके साथ की घटनायें ऐतिहासिक घटनायें और उसके साथ की बातें स्वप्न की बातें हो गईं। जिस समय रमेश उसकी बातों का स्मरण करते, उनकी आँखों में उसकी वही मूर्ति स्पष्ट दिखाई देने लगती।

रमेश के हृदय में तारा के मिलने का कोई भरोसा न रहा। वह सोचा करते—तारा ऐसे व्यक्ति के हाथ की खिलौना हुई है, जो महान् कर्कश है। उसके हाथ से तारा का किसी प्रकार छुटकारा नहीं। तारा के व्यावहारिक

जीवन से वह इतना अप्रसन्न है कि उसके जीते-जी तारा का रामनगर जाना बहुत कठिन दिखाई देता है।

तारा का यह बन्धन रमेश को बहुत खलने लगता। अस्थिर हो जाने पर वह फिर सोचने लगते—लोकनाथ यदि तारा को कभी धीरजपुर से रामनगर न जाने देंगे, तो मैं क्या करूँगा? यदि ऐसी ही बात हुई, तो फिर अपना यह जीवन-भार मैं किस प्रकार ढो सकूँगा? क्या तारा को यह जीवन-भर का बन्धन स्वीकार हो सकता है? मैं चाहे स्वीकार भी कर लूँ, किन्तु उसको स्वीकार न होगा। हाँ, उसको तभी तक स्वीकार है, जब तक मैं चाहता हूँ।

तारा के हृदय की आलोचना करके रमेश फिर मन-ही-मन कहने लगे—किसी प्रकार तारा को मैं सूचना दे दूँ कि समाज के बन्धनों की अवहेलना करके वह धीरजपुर का त्याग कर दे। मैं उसका उत्तरदायी होऊँगा। मुझे पूर्ण भरोसा है कि मेरी ऐसी सम्मति होते ही वह निर्भय होकर ऐसा करेगी।

तारा के ऐसा करने से जो सुख का युग सम्मुख आ सकता है और उसके संसर्ग से जिस प्रकार जीवन सन्तुष्ट हो सकता है, रमेश की आँखों में वह एक बार घूम गया। किन्तु बात-की-बात में उनका हृदय काँप उठा। वह कह उठे—मैं इस प्रकार का सन्देश देकर सामाजिक क्रान्ति करने के लिए कभी प्रयत्न नहीं कर सकता। सम्भव है, मेरी ऐसी सम्मति पर उसे समाज की अवहेलना स्वीकार न हो। यदि कहीं ऐसी बात उस समय हो गई, तो मेरा क्या मूल्य रह जायगा?

रात-दिन रमेश के हृदय में न जाने कितनी बातें पैदा होतीं और बात-की-बात में मिट जाया करतीं। इस प्रकार उनके बहुत दिन बीत गये।

बहुत दिनों से रमेश आजकल निरुद्योग हैं। कानपुर में रहकर भी वह किसी आर्थिक व्यवसाय में नहीं हैं। ऐसे समय पर कोई अपना व्यापार और कार्य न होने के कारण उनका समय संसार और जीवन की ऐसी बातों के

सोचने और विचारने में व्यतीत हुआ करता है, जिनसे जीवन की एक-एक घड़ी और भी आपद्जनक दिखाई देती है। पुस्तकें पढ़ने, समाचारपत्र देखने, मित्रों से मिलने और एकान्त में लेटकर आकाश-पाताल की न जाने कितनी बातें सोच डालने के अतिरिक्त उनके पास आजकल और कोई काम नहीं है।

जीवन-निर्वाह के निमित्त कोई उद्योग करने के लिए रामा ने अनेक बार अनुरोध किया। रमेश ने उसके लिये प्रयत्न भी किया, बाबू राधामोहन ने उनके कहने पर बनारस से प्रकाशित होने वाले 'विकास' नामक एक मासिक पत्र के सम्पादक को उनके सम्बन्ध में लिखा। किंतु कुछ उत्तर नहीं आया।

रमेश उसकी प्रतीक्षा में रहने लगे। निरुद्योग रहकर उन्होंने बहुत बड़ी हानि उठाई है। जिस दिन से राधामोहन ने बनारस को पत्र लिखा, उनकी आँखें उसी ओर लगी रहीं।

यथासमय बनारस से पत्र मिला। उसमें रमेश के लिए लिखा था—एक दिन शीघ्र आकर मिल जाइये।

रमेश को यह पत्र पढ़कर बड़ा हर्ष हुआ और पत्र मिलने के दूसरे ही दिन जाने के लिए सोचने लगे।

सायंकाल के साढ़े चार बजे होंगे। रमेश अपने घर पर बैठे हुए कुछ कागज-पत्र उलट रहे हैं। ठीक इसी समय उनके पास एक व्यक्ति आया और बातें करने लगा। कुछ विलम्ब तक बातें करने के उपरान्त आगन्तुक ने कहा—कई दिन हो गए, आपके प्रतापनारायण मुझे रेलगाड़ी पर मिले थे। आपको पूछ रहे थे।

रमेश—क्या मुझे पूछ रहे थे?

आगन्तुक—हाँ, आपको पूछ रहे थे। स्टेशन पर जिस समय मिले, मुझसे परिचित तो थे ही, देखकर बातें करने लगे। आपको पूछते थे कि रमेश बाबू आजकल कैसे हैं।

रमेश—प्रतापनारायण तो कहीं आते-जाते नहीं। कहाँ गये थे जो आपको गाड़ी पर मिले थे?

आगन्तुक—धीरजपुर गये थे। वहाँ से लौटे थे।

धीरजपुर का नाम सुनते ही रमेश चक कर पूछा—धीरजपुर गये थे?

आगन्तुक—हाँ, मैंने पूछा, तो उन्होंने कहा कि हम धीरजपुर से आ रहे है।

रमेश मन-ही-मन सोचने लगे—धीरजपुर प्रतापनारायण कैसे गये थे? सम्भव है, तारा ने बुलवाया हो, किन्तु………

आगन्तुक ने फिर कहा—धीरजपुर से विदा करा के रामनगर जा रहे थे।

यह सुनते ही आश्चर्य के साथ रमेश ने पूछा—धीरजपुर से रामनगर बिदा कराके जा रहे थे?

आगन्तुक—हाँ।

रमेश से किसी प्रकार नहीं रहा गया। उन्होंने झट हँसकर कहा—भाई तुम हँसी करते हो।

आगन्तुक—समझ में नही आता, मै हँसी क्यों करूँगा। मेरी हँसी का कारण क्या हो सकता है?

तारा रामनगर गई, यह जानकर रमेश की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। जितनी देर आगन्तुक व्यक्ति बैठा रहा, वह बैठे-बैठे उसके साथ बातें करते रहे। उसके चले जाने पर वह फिर अपने कागजात देखने लगे, किंतु उनका हृदय चंचल हो उठा। किसी प्रकार उनसे बैठा न रहा गया। कागज और पुस्तकें बाक्स में बन्द करके रख दीं और राधामोहन के घर का रास्ता पकड़ा।

राधामोहन के घर जाकर देखा, वह घर पर नही हैं। वहाँ से लौटकर उन्होंने राधामोहन का पता लगाना आरम्भ किया। जहाँ जहाँ राधामोहन के

जाने की सम्भावना हो सकती थी, उन स्थानों में एक बार घूम कर वह फिर राधामोहन के घर पहुँचे।

घर पर मालूम हुआ कि राधामोहन आये थे और उनसे कहा गया था कि रमेश खोजते फिरते हैं, यह सुनकर वह तुरन्त लौट गये और अब तुमको खोजते होंगे।

यह जानकर रमेश का एक-एक क्षण बड़ी अधीरता के साथ व्यतीत होने लगा। सोचने लगे—अब कहीं जाना ठीक नहीं है। यहीं पर बैठकर राधामोहन की प्रतीक्षा करें, नही तो वह मुझे खोजते रहेंगे और मैं उन्हें खोजता रहूँगा।

राधामोहन के घर के ऊपरी खण्ड मे जाकर रमेश कमरे में बैठ गये और राधामोहन की बाट जोहने लगे।

कमरे मे बैठे हुए रमेश के हृदय में अनेक भावनायें उठने लगीं—तारा जब रामनगर गई है, तो क्या उसे पत्र न भेजना चाहिये था? धीरजपुर में वह पत्र-व्यवहार न कर सकती थी, किन्तु रामनगर में तो ऐसी परतंत्रता नहीं है। फिर उसके पत्र न भेजने और किसी प्रकार का समाचार न देने का क्या कारण हो सकता है?

रमेश के हृदय में अनेक प्रकार की उलझनें उठकर उनको व्यथित करने लगी। सोचने लगे—हो सकता है, धीरजपुर से मेरे लिए कुछ कहा-सुना गया हो और उन लोगों के रोकने तथा समझाने-बुझाने पर प्रताप-नारायण ने मुझको सूचना न देने के लिए निश्चय कर लिया हो। किन्तु ऐसा होने पर भी क्या तारा से चुपके रहा जा सकता है? उसको यह गुप्त रहस्य भी क्या मुझे न लिखना चाहिए था?

बार-बार अनेक प्रकार की बातें सोचकर रमेश की व्याकुलता बढ़ने लगी—अब मुझे शान्त रहना चाहिए। देखूँ कब तक तारा मुझे कोई समाचार नही देती। जब उसने मुझे किसी प्रकार की सूचना भी नहीं दी, तो फिर मैं उसके पास पहुँचने का क्यो प्रयत्न करूँ? किन्तु, यदि वह किसी

प्रकार के बन्धन में हुई, तो फिर उसका क्या अपराध? उसके रामनगर जाने की बात सुनकर अब मुझसे चुपके तो नहीं रहा जायगा। न जाने किस प्रकार उसको छुटकारा मिला हो, और सम्भव है कि वह छुटकारा इतने अल्प समय का हो कि मैं इसी प्रकार की उलझनों में पड़ा रहूँ और उधर वह लौटकर धीरजपुर चली जाय।

बैठे-बैठे रमेश ने न जाने कितनी बातें सोच डालीं, किन्तु कुछ निर्णय न कर सके। उनके समय-असमय के सहारा, दुख-विपद के एकमात्र सहायक बाबू राधामोहन हैं। राधामोहन पर जितना भरोसा उनका है, ठीक उसी प्रकार उनपर राधामोहन का। दोनों में परस्पर हार्दिक स्नेह है। राधामोहन का ऐसा कोई गुप्त रहस्य नहीं, जो उनसे अप्रकट हो, और उनकी कोई ऐसी बात नहीं, जो राधामोहन को विदित न हो। जिस समय कोई ऐसी बात आ पड़ती है, जिसे स्वयं वह नहीं सोच सकते, उस समय वह उसमें राधामोहन की सम्मति लेते हैं।

आज भी उसी आधार पर वह राधामोहन के कमरे में बैठे हुए हैं। जिस समय वह राधामोहन की प्रतीक्षा कर रहे थे, उनके हृदय में न जाने कितनी बातें उठीं और बात-की-बात में विलीन हो गईं। उनके निस्तब्ध हृदय में जिस समय विचार-स्रोत बह रहा था, और अनेक उलझनों मे पड़े हुए वह कुछ निर्णय न कर सकते थे, ठीक उसी समय राधामोहन ने कमरे में आकर कहा—रमेश, कहो आज कैसे मुझे खोज रहे थे, कुशल तो है?

राधामोहन रमेश के पास बैठ गये। रमेश ने कहा—ब्यालू करने का समय है। ब्यालू करके आइये, कुछ बातें करनी हैं।

राधामोहन—अच्छा तो फिर आप भी चलिये।

रमेश—नहीं, मैं तो ब्यालू न करूँगा।

राधामोहन—क्यों, ऐसी कौन-सी बात है?

रमेश—कुछ नहीं, साधारण बात है, मैं कुछ उलझन में पड़ा हूँ। आप ब्यालू कर लीजिए।

राधामोहन—तो फिर मैं भी ब्यालू न करूँगा। बातें करके ब्यालू करूँगा। कहिये क्या बात है?

रमेश—बनारस से जो पत्र आया था, उसमें उन्होंने मुझे बुलाया था। मैं कल की ट्रेन से बनारस जाने को था, किन्तु आज कुछ ऐसा समाचार मिला है, जिसके कारण मै कल बनारस न जा सकूँगा।

राधामोहन—क्या समाचार मिला है?

रमेश—सुना है, तारा रामनगर गई है। इसलिए अब मेरा बनारस जाना न होगा, मै पहले रामनगर जाऊँगा।

राधामोहन—मेरी सम्मति में तो बनारस से लौटकर रामनगर जाते तो अधिक अच्छा होता। बनारस में तो बरसो का काम नही है, केवल चौथे-पाँचवें दिन आप लौट आवेंगे।

रमेश—यह तो ठीक है, पर मैं किसी प्रकार पहले बनारस नहीं जा सकता। बनारस जाने की जितनी बड़ी आवश्यकता है, उसे अनुभव करता हुआ भी मैं इस निर्णय पर पहुँचता हूं, कि मुझे पहले रामनगर जाना चाहिये।

राधामोहन—रामनगर कहीं भाग न जायगा। रामनगर पीछे भी जा सकते है, बनारस जाने की अधिक आवश्यकता है। वहाँ पर यदि काम करना निश्चित हो जायगा, तो फिर लौटकर आप चाहे दस-पाँच दिनो में भी चले जायँगे, तो कुछ हानि न होगी। किन्तु इस समय न जाना ठीक न होगा। यह आर्थिक प्रश्न है। जिस समय मनुष्य ऐसे प्रश्नो में उलझ जाता है, उस समय उसके सम्मुख अनेक व्याधियाँ पैदा हो जाती है। इसलिए रमेश बाबू, मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि बनारस से लौटकर रामनगर जाइए।

रमेश—मै इन सभी बातों पर भली-भाँति विचार कर चुका हूँ; किन्तु मेरा साहस किसी प्रकार बनारस जाने का नहीं होता। और यदि मैं जाऊँगा भी, तो चित्त की अस्थिरता के कारण कोई लाभ न होगा।

राधामोहन—अच्छी बात है; कितनें दिनों में लौटेंगे रामनगर से?

रमेश—अभी तो यह भी निश्चित नहीं है कि मैं रामनगर जाऊँगा या नही, यही तो आप से बातें करना है।

राधामोहन—भाई तुम्हारी बातों का मैं कोई अर्थ नहीं समझता, रामनगर के कारण तो आप बनारस नही जा रहे है और फिर भी आप रामनगर जायँगे या न जायँगे, इसका अभी तक निश्चय नहीं ! इसके क्या अर्थ होते है ?

रमेश—बनारस न जाकर मै रामनगर जाने के लिए अधीर हो रहा हूँ। यद्यपि इसमे मेरी हानी है; किंतु विवश हो रहा हूँ ऐसा करने के लिए। यहाँ तक निर्णय हो जाने के पश्चात् रामनगर जाने में कुछ ऐसी घटनायें है, जिनके कारण प्रश्न हो रहा है कि मुझे रामनगर जाना चाहिये या नहीं। इसलिए कि एक ओर अधीरता विवश करती है रामनगर पहुँचने के लिए, और दूसरी ओर संकोच की मात्रा बढ़ रही है कि तारा का कोई मेरे पास पत्र नही आया।

राधामोहन और रमेश की बातों में आधी रात से अधिक हो गई, किन्तु कोई निर्णय न हुआ। शेष रात्रि में राधामोहन को आलस्य आने लगा। रमेश की बातो में कोई निर्णय होता हुआ न देख कर सोते समय राधामोहन ने कहा—भाई मै तो बनारस जाने के लिए कहूँगा, इस लिए कि तारा का कोई पत्र नही आया, इस प्रकार रामनगर तुम्हारा जाना अप्रासंगिक है।

रात को शेषांश में राधामोहन के सो जाने पर कुछ निद्रा के आ जाने से, रमेश भी उन्हीं के साथ सो गये।

४२

दूसरे दिन प्रभात-काल उठ कर रमेश अपने घर गये और सोचने लगे—अब मुझे क्या करना चाहिये। रात को जिस समय वह राधामोहन से बातें कर रहे थे, राधामोहन के अनेक बार समझाने पर भी उनके हृदय में किसी प्रकार बनारस जाने की इच्छा उत्पन्न न हुई। उस समय उनकी अवस्था

इतनी अस्थिर हो रही थी, कि यदि कोई बलात्कार उनको बनारस भेजता, तो पता नहीं, वह उस बलात्कार को किस प्रकार सहन कर सकते ।

किन्तु प्रभात-काल उठ कर जब वह अपने घर आये, तो उनको अपनी अवस्था में परिवर्त्तन जान पड़ने लगा । जब से तारा के रामनगर आने की बात सुनी है, उनकी अन्तरात्मा अस्थिर और अधीर हो गई है । बनारस जाने के लिए अपनी अस्तव्यस्त अवस्था में किसी प्रकार उनको साहस नही होता । किन्तु रात को उनकी जो अवस्था थी, उसमें अब कुछ रूपान्तर दिखाई दे रहा है ।

रात को वह सोच रहे थे कि प्रभात होते ही तारा के पास पहुंचने का प्रयत्न करूँगा, किन्तु अब रामनगर जाने के लिए भी उनमें जो कुछ रात को साहस था, वह निर्बल हो गया । बनारस जाने की बात भी उनकी समझ में आवश्यक है, किन्तु तारा से भेंट करने की इच्छा इतनी बलवती हो गई है कि उनका हृदय किसी प्रकार बनारस जाने के लिए प्रस्तुत नहीं होता ।

अवस्था यह हो गई कि वह न बनारस जा सकते है और न रामनगर । दो स्थानों में कहाँ जाना चाहिये ? वह इसका किसी प्रकार निर्णय न कर सके ।

संकल्प-विकल्प में पड़ कर रमेश किसी समय सोचने लगते—मैं कितनी बड़ी भूल कर रहा हूँ, रामनगर जाकर तारा ने अपने पहुँचने की सूचना भी नही दी । फिर मैं उसे देखने के लिये क्यों अस्तव्यस्त हो रहा हूँ ? मुझे बनारस जाना चाहिये ।

सोचते-सोचते रमेश बनारस जाने का प्रबन्ध करने लगते, किन्तु थोड़ी ही देर में फिर सोचने लगते—रामनगर जाकर यदि तारा पत्र नहीं भेज सकी, तो इसका कोई विशेष कारण है । किन्तु उसका रामनगर पहुँचना जान कर मैं उससे बिना मिले किस प्रकार रह सकूँगा ? जिस तारा को एक बार इन आँखों से देखने के लिए स्मरणातीत काल से छटपटा रहा था, किसी प्रकार की सम्भावना भी नहीं थी कि उसके दर्शन कभी होंगे, बहुत

सोचने पर भी मै किसी प्रकार का निर्णय न कर सका था—जिससे मैं उनको एक बार देख सकता; ऐसी अवस्था में इस प्रकार का समय पाकर—जिसमें मै उससे मिल सकता हूँ—यदि उससे जान-बूझ कर न मिल सका, और वह फिर लौट कर उसी प्रकार के बन्धनो में बँध गई, तो फिर अन्त में केवल पछताने के और कुछ फल न निकलेगा।

सोच-विचार में पड़े हुए रमेश को दोपहर का समय हुआ। स्नान करके वह वस्त्र पहन कर स्टेशन जाने के लिये प्रस्तुत हुए। स्टेशन जाने के पहले उन्होंने अपने संदिग्ध विचारों पर एक बार फिर विचार किया। स्टेशन जाने के लिये अपनी घड़ी मे समय देखा। इसी अव्यवस्थित परिस्थिति में एक मिलने वाले व्यक्ति ने उनसे पूछा—कहाँ आप जा रहे हैं?

रमेश ने उत्तर दिया--मुझे दो विभिन्न दिशाओं मे जाना है, किन्तु मैं स्वयं नही जानता कि मैं कहाँ जा रहा हूँ।

रमेश ने यह कह कर अचानक देखा, पोस्टमैन आ रहा है। पोस्टमैन ने आकर एक पत्र निकाला और उनके हाथ में दिया। बात-की-बात में उन्होंने खोल कर पढ़ना आरम्भ किया—

रमेश बाबू

मै रामनगर आ गई हूँ। चातक-दृष्टि से आपकी ओर निहारती हुई यह पत्र भेज रही हूँ। जिस समय पत्र मिले, तुरन्त आकर दर्शन देवें। मैं अब अधिक न लिखूँगी। इसे पत्र नहीं, तार समझें। अधिक मिलने पर।

आपकी—तारा

पत्र पढ़ते ही रमेश के हृदय में उत्साह और आनन्द की बाढ़-सी आ गई। जैसे-तैसे पत्र को पढ़कर तीव्र वेग से बाबू राधामोहन के घर पहुँचे। वह भोजन कर रहे थे। रमेश ने उस पत्र को उनके सम्मुख रख दिया। पत्र पढ़ कर वह रमेश की ओर देखकर मुस्कुराने लगे—

रमेश ने कहा—अच्छा, अब मैं चलता हूँ, देर होती है।

राधामोहन ने मुस्कुराते हुए कहा—बन्दे !

रमेश ने स्टेशन की ओर प्रस्थान किया। स्टेशन पहुँचने में विलम्ब हो चुका है, कहीं गाड़ी छूट न जाय, यह सोचते हुए उन्होंने एक ताँगा किया।

स्टेशन पहुँच कर देखा, अभी गाड़ी खड़ी हुई है। टिकट-आफिस में जाकर रामनगर का टिकट लिया और गाड़ी में जाकर बैठ गये। जितनी देर गाड़ी खड़ी रही, गाड़ी पर बैठे हुए तारा का पत्र बार-बार पढ़ते रहे।

गाड़ी छूटी और रामनगर की ओर अग्रसर हुई। जिस कम्पार्टमेंट में रमेश बैठे हुए थे उसमें और भी कुछ सज्जन तथा भद्र महिलायें बैठी हुई थीं। गाड़ी में बैठे हुये स्त्री-पुरुष कोई किसी से बातें कर रहा था, कोई किसी से। शान्त-चित्त बैठे हुये रमेश रामनगर-स्टेशन की प्रतीक्षा कर रह थे। ई० आई० आर० के टाइम-टेबुल में रमेश गाड़ी के रामनगर पहुँचने का समय देखने लगे।

यद्यपि रमेश कई बार इसी गाड़ी से रामनगर-स्टेशन जा चुके हैं, किंतु फिर भी उन्होंने गाड़ी के रामनगर पहुँचने का समय जानन की आवश्यकता को अनुभव किया। कानपुर से दोपहर को एक बज कर पैंतीस मिनट पर गाड़ी के छूटने का समय है, और पाँच बज कर पैतालिस मिनट पर गाड़ी रामनगर-स्टेशन पहुँचती है। यह समय कैसे कटेगा, रमेश बार-बार यही सोचने लगे।

तीव्र वायु के साथ भागने वाली रेल-गाड़ी पर बैठे हुए सोच रहे थे—जिसके देखने में बरसों का विलम्ब था और वास्तव में जिसके मिलने का कोई भरासा नहीं रहा था, आज उसके मिलने में दो-तीन घण्टों की देरी रह गई है। यह दो-तीन घंटों की देरी भी व्यतीत होती है, और बात-की-बात में वह समय आता है, जब मैं देखूँगा कि वह शुभ घड़ी, जिसे मैं अनन्त काल की दूरी पर देखता था, मेरे सम्मुख है।

अनेक प्रकार की बातें सोचते-विचारते रमेश ने अपनी घड़ी में देखा, साढ़े पाँच बज चुके है, रामनगर अब दूर नहीं है।

रमेश के पास यद्यपि कुछ सामान नही है, फिर भी रामनगर स्टेशन आता हुआ देखकर उतरने के लिये सम्हलने लगे। राम-राय करते-कराते रामनगर स्टेशन आया और सबसे प्रथम गाड़ी से उतर कर रमेश ने प्लेटफार्म पर पैर रखा। अपना टिकट स्टेशनमास्टर को दिया और बाहर निकल कर इक्का खोजा।

इक्कों की पंक्तियाँ लगी हुई थीं। एक इक्के पर बैठ गये। इक्के वाला परिचित था। वह रामनगर की ओर अग्रसर हुआ।

इक्के पर बैठे हुए कितना समय हुआ, इक्के ने कब रामनगर के भीतर प्रवेश किया, रमेश को इसका कुछ भी पता न था। अकस्मात् रमेश के सम्मुख वही विशाल भवन आ पड़ा, जो प्रतापनारायण का भवन था और जिसमे तारा के साथ वह बहुत बड़े समय तक विहार कर चुके थे।

उस विशाल भवन की प्राचीर देख कर रमेश चौंक पड़े—यह वही घर है, जिसमें तारा से मै विलग हुआ था। यह वही घर है, जिसमें बैठकर तारा के साथ अनेक दिन और अनेक रातें व्यतीत की हैं। इसी घर में तारा कही बैठी होगी—इन्ही दीवारों के भीतर तारा की वही मूर्त्ति होगी।

इक्का प्रतापनारायण के द्वार पर पहुँच गया। रमेश इक्के से उतरे और उसी कमरे में जाकर बैठ गये, जिसमें आज के प्रथम भी अनेक बार विश्राम कर चुके थे।

सायंकाल के साढ़े सात बजे होंगे, घर में जहाँ तारा बैठी थी, रमेश ने प्रवेश किया। वर्षों से दबी हुई भावनाओं और शुद्ध स्नेह की अपरिमित बाढ़ हृदय के संकुचित क्षेत्र में परिमित न रह सकी। उनको देखते ही वह रो उठी। उन्होंने उसको शांत करके पूछा—रामनगर में तुम्हारा आना कब हुआ?

तारा—मुझे यहाँ आये आज बारहवाँ दिन है। यहाँ आते ही पत्र भेजने के लिए मैंने पोस्टकार्ड मँगाया। किन्तु समय की बात, न मुझे कार्ड

मिल सका और न टिकट-लिफाफा। द्विविधा में, एक-एक दिन करके मुझे सप्ताह-भर बीत गया। जब लिफाफा मिला, तो फिर मैंने तुमको पत्र भेजा।

इसके पश्चात् रमेश के पूछने पर तारा ने धीरजपुर का हाल सुनाना आरम्भ किया। जिस दिन से वह लोकनाथ के साथ धीरजपुर गई थी, और उस दिन से उसके साथ जिस प्रकार जिसका व्यवहार हुआ था, एक-एक करके उसने उनके सम्मुख रखा।

तदुपरान्त उसको रामनगर आने में जिस प्रकार असाध्य साधना करनी पड़ी, और जिस प्रकार उसको रामनगर पहुँचने में सफलता मिली, तारा ने सब आद्यन्त रमेश से कह सुनाया।

रात-दिन सोचकर भी रमेश निर्णय न कर सके थे कि तारा से मैं किस प्रकार मिल सकता हूँ। किन्तु उसने किस प्रकार प्रयत्न करके रामनगर आने में सफलता पाई है, यह जान कर वह विस्मय-पूर्वक मन-ही-मन उसकी प्रशंसा करने लगे।

रमेश को रामनगर आये हुए धीरे-धीरे दो दिन व्यतीत हो गये। तीसरे दिन दोपहर को बैठकर वह सोचने लगे—जिस समय मैं तारा से बहुत दूर था और उससे मिल सकने की मुझे कोई आशा न रही थी, उस समय मैं उसको देखने के लिये व्याकुल हो रहा था। सोचता था—जिस समय उसको मैं आँखों से देखूँगा, संसार के एक ऐसे आनन्द का अनुभव करूँगा, जिसे अनोखा समझूँगा। किन्तु जिस समय वह मेरे सम्मुख आई, मैं नहीं समझ सका कि उसके मिलने पर मैंने क्या अनुभव किया। मेरी समझ में नही आता, संसार की इस अवस्था का क्या कारण हो सकता है। यह भी मैं सोचता हूँ कि वह जितने समय तक मेरे सम्मुख है, मुझे शान्ति और संतोष है। जिस घड़ी उससे विलग हो जाऊँगा, उसी समय मेरा हृदय अस्थिर होने लगेगा। पता नहीं, जीवन की इस प्रकृत लीला का क्या अर्थ होता है?

दोपहर को भोजन करके रमेश तारा के समीप बैठे हुए उससे बातें कर

रहे है। बातें करते हुए तीक्ष्ण दृष्टिसे एक बार उसकी ओर देख कर उनके हृदय में असंतोष का जन्म हुआ—जिसको एक बार आँखों से देखने के लिए बर्षों से मैं बिलबिला रहा था—जो मूर्त्ति इतने समय के लिये मेरी आँखो से ओझल हो रही थी, और जिसके कारण मेरा यह जीवन परमात्मा जाने क्या हो गया था, उसी मूर्ति को आज मैं अपने नेत्रों से देख रहा हूँ।

रमेश ने तारा से अपनी वह व्यथा कहनी आरम्भ कर दी, जो उसके विलग होने पर उनको सहनी पड़ी थी। उनकी सारी बातें उसने एक-एक करके सुनी।

रमेश ने हृदय खोल कर अपनी आत्म-कथा तारा को सुनाई, जिसे सुन कर उसने उनके हृदय की गति का भली-भाँति अनुभव किया।

तारा की अवस्था का विचार करते हुए रमेश ने सोचा—यदि तारा का चित्त पारलौकिक बातों की ओर आकर्षित किया जाय, और कुछ धर्म तथा अध्यात्म की बातें उसे सिखाई जाँय, तो उसको अपनी इस वैधव्य अवस्था का दुःख विस्मृत हो सकता है।

इसी आधार पर रमेश ने तारा को धर्म और त्याग की अनेक बातें सुनानी आरम्भ की। जितनी देर तक वह अपनी बातें कहते रहे, तारा ध्यानपूर्वक सुनती रही।

अन्त में रमेश ने देखा, तारा के हृदय पर उन बातों का कोई प्रकाश नहीं पड़ा। उसके हृदय से यौवनावस्था की विलासिता, चपलता और चंचलता अभी तक किसी प्रकार कम नहीं हुई। वह स्वभावतः विनोदप्रिय है। उसको वह जिस ओर आकर्षित करना चाहते थे, न कर सके। देखा, वे बातें उसके हृदय का स्पर्श भी नहीं कर सकतीं। साथ-साथ यह भी समझा कि जो बातें कर गये हैं, उनका वह कुछ अर्थ नहीं समझी।

इस बार आकर रमेश को तारा के सम्बन्ध में एक नवीन अनुभव हुआ। उन्होंने देखा, तारा के सम्मुख जो कोई मनुष्य होता है, उसे वह

ध्यानपूर्वक देखती है। किसी भी पुरुष की बात बड़े चाव के साथ सुनती है। अनेक बार उसके इन व्यवहारो को देखकर उनको चौक जाना पड़ा।

एक बार देखा—एक ऐसे पुरुष के साथ, जिसका तारा से कुछ भी सम्बन्ध नही था, बातें करने में उसने बहुत समय लगा दिया। उनको यह देखकर आन्तरिक क्लेश हुआ। स्वप्न में भी उनको इस बात का पता न था कि वह किसी दूसरे से बातें करने और सम्बन्ध रखने में किसी प्रकार कभी मेरी अवहेलना कर सकती है।

तारा के निकट इस प्रकार एक दो बार नहीं, अनेक बार अपमानित हो जाने पर रमेश के हृदय में अपार दुःख हुआ। तारा का व्यावहारिक जीवन देखकर उन्होंने न जाने कितनी बातें सोच डाली, किन्तु वह किसी प्रकार का कुछ निर्णय न कर सके।

रमेश के हृदय में इस बार मनोमालिन्य उत्पन्न हो गया। जितनी देर वह तारा से बिलग रहते, तारा के प्रतिकूल अनेक भावनायें सोचा करते। किन्तु जिस समय उसके सम्मुख होते, जिस समय उसके व्यवहार का मोहन-मंत्र उनके नेत्रो में होता, उस समय फिर उनको अपने आप पर अधिकार न रह जाता।

रमेश की अवस्था दो प्रतिकूल विचार-प्रवाह में बहने लगी। कई दिन बीत जाने के कारण एक दिन उन्होने तारा से कहा—मुझे कई दिन हो चुके हैं, कल मै कानपुर चला जाऊँगा।

तारा ने कहा—किससे पूँछकर ?

रमेश—तुम से।

तारा ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—बस ठीक है, जब मै कहूंगी, तब तुम जा सकोगे।

रमेश—जब मैं चाहूँगा तब क्या तुम जाने न दोगी ?

तारा—ना।

रमेश—क्यो ?

तारा—मेरी इच्छा।

रमेश—यदि मेरी कोई हानि होती हो, तो भी तुम न जाने दोगी?

तारा—क्या हानि होती है?

रमेश—मै अत्यन्त आवश्यक कार्य से बनारस जाने के लिए तैयार था; किन्तु जिस घड़ी तुम्हारा रामनगर आना सुना, किसी तरह अपने को सम्हाल न सका। मेरे मित्र बाबू राधामोहन ने मुझसे बहुत कुछ कहा; किन्तु मै फिर भी बनारस नही जा सका। कल बनारस जाऊँगा और फिर लौट कर तुमसे मिलूँगा।

तारा ने हँस कर कहा—यदि मुझे इतना चाहते होते, तो क्या धीरज-पुर आकर मिल न सकते थे?

रमेश—धीरजपुर मेरे आने से क्या अवस्था होती, तुम क्या जानती नहीं हो? वहाँ आने पर मेरा कितना तिरस्कार हो सकता था, और कौन-सी घटनायें घट सकती थीं, यह सब जानते हुए भी तुम मुझपर दोषा-रोपण करती हो?

तारा—जहाँ प्रेम होता है, वहाँ लाज नहीं रहती—और जहाँ लाज होती है, वहाँ प्रेम नहीं होता।

रमेश—तब तो मैं भी कह सकता हूँ कि मेरे ऊपर तुम्हारा यदि प्रेम होता, तो तुमको भी, जहाँ मै होता, आकर मिलना चाहिये था।

तारा ने तीव्र स्वर में कहा—क्या तुमने मुझे इसके लिए आज्ञा दे रखी थी? मैं धीरजपुर जाने को किसी प्रकार तैयार न थी; किन्तु तुम्हारी आज्ञा माननी ही पड़ी। क्या आज भी तुम इस बात की आज्ञा देते हो?

रमेश—क्या मेरी आज्ञा तुम्हें इतनी स्वीकार है?

तारा—हाँ।

रमेश ने विस्मित नेत्रों से तारा की ओर देखा। अनेक क्षण चुप रह कर तारा ने कहा—मैं तीर्थ-यात्रा करना चाहती हूँ, तुम मेरे साथ चलोगे न?

रमेश—मेरे साथ तीर्थ-यात्रा करोगी !

तारा—हाँ ।

रमेश—यदि कोई कुछ कहे तो ?

तारा—मुझे किसी का डर नहीं है ।

निर्निमेष दृष्टि मे रमेश ने तारा के मुख की ओर देखा । उसके शान्त, सौम्य और सरल मुख पर प्रकृत सौन्दर्य झलझला रहा था । उसके मुख से कोई बात न निकल सकी ।

तारा को बनारस से लौट कर आने का वचन देकर रमेश दूसरे दिन रामनगर से विदा होकर कानपुर चले गये ।

४३

रमेश समझे थे, तारा के हृदय पर जितना मेरा अधिकार है, किसी दूसरे का नही है । मुझे छोड़ कर उसने अपने जीवन में किसी को अपनाया नही है । उसके नेत्रों का प्रकाश, जीवन का सर्वस्व, जो कुछ हूँ, मै ही हूँ । किन्तु इस बार तारा से मिलने पर रमेश को यह भ्रम सूझ पड़ा ।

इस बार भी रमेश को समय-असमय पर विरह-वेदना हुई, किन्तु जिस समय उनको तारा का स्मरण होता, उसके साथ ही साथ यह भावना भी उत्पन्न हो जाती—तारा न केवल मेरी है, और उसका प्रेम न केवल मेरे ऊपर अवलम्बित है । जिस समय उनके हृदय में यह भावना उठती, उनको अत्यन्त खेद होता ।

तारा के सम्बन्ध में रमेश का यह संकल्प-विकल्प अविलम्ब ही दूसरे रूप में परिणत हो गया । उन्होने समझा—तारा का प्रेम अस्थिर ओर स्वतंत्र है । किसी एक ओर जाकर वह समाप्त नहीं हुआ । उसका स्नेह-स्रोत मेरी ओर प्रवाहित हुआ था; किंतु थोड़े ही समय में उसका प्रवाह-पथ अवरुद्ध हो गया । ऐसी अवस्था में यदि वह स्रोत उमड़ कर किसी दूसरी ओर को

प्रवाहित हो चला हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। उनका स्नेह-स्रोत इतना गम्भीर और अपरिमित है, कि संसार की शत-शत विपद्-ज्वालाओं से भी शुष्क नहीं हो सकता। यदि मै उसपर रुष्ट होकर उसकी अवहेलना करूँ, तो वह प्रवाह उमड़ कर कहाँ जा निकलेगा, और किस प्रकार किस समय शान्त होगा, कुछ पता नहीं।

रमेश का आकर्षण फिर तारा की ओर हुआ—उसके स्वभाव की बार-बार मैंने प्रशंसा की है। वास्तव में उसका प्राकृतिक जीवन विशुद्ध है। उसमें किसी प्रकार का भ्रम नहीं हो सकता। किन्तु तप और विराग की कोई सीमा होती है। जिसकी यह अवस्था होगी, जिसके स्वस्थ सुघटित शरीर में इतना लावण्य होगा, जहाँ यौवनोन्माद की यह अवस्था होगी, वहाँ आत्मसंयम और इन्द्रिय-दमन का प्रश्न! उसके अतुलित सौंदर्य और प्रफुल्ल यौवन को देखकर किसी प्रकार विश्वास नहीं होता कि विधाता ने उसके सौभाग्य मे विषय-वैराग्य लिखा था। समाज के अन्तर्गत अविचार है! सभ्यता तिमिराच्छन्न है। फिर कौन निर्णय करेगा संसार की इन समस्याओं का? मेरी समझ में नही आता, जिसे विधाता ने भोग का साक्षात् स्वरूप दिया हो, उससे समाज और सभ्यता त्याग कैसे चाहती है? जिस व्यक्ति में शिक्षा और विद्या का प्रकाश होता है वह असमर्थ है अपनी शिक्षा और बिद्या के प्रकाश को समूल भस्मीभूत कर देने में! जिसमें अज्ञानांधकार है, वह असमर्थ है एक शिक्षित की भाँति सभ्यतापूर्वक व्यवहार करने में। इसी सिद्धान्त पर एक प्रेममयी सौन्दर्य-प्रतिमा तरङ्गित यौवनोन्माद की अवस्था में किस प्रकार त्याग कर सकती है, यह निर्णय करना मेरी ज्ञान-शक्ति के परे है! तारा में आत्म-संयम हो, इन्द्रिय-दमन हो, यह दूसरी बात है। किन्तु मै कौन-सा मुख लेकर आत्मसंयम और इन्द्रिय-दमन का प्रश्न उसके सम्मुख रख सकता हूँ? जिसने संसार की शिक्षा प्राप्त की है, जिसने बड़े-बड़े ग्रंथों का स्वाध्याय किया है, और जिसने आत्म-संयम तथा इन्द्रिय-दमन की व्याख्या समझी है, वह क्या अपने जीवन में एक दिन भी आत्म-

संयम से काम ले सका ? मैंने जीवन की ऐसी समस्याओं पर अधिक से अधिक विवेचना की है। मेरे जीवन में तारा के तप और वैराग्य का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। उसके आत्म-संवरण को देख कर मेरा हृदय लज्जा और संकोच से फटा जाता है। अनेक बार प्रयत्न करके भी क्या मैं स्वयं आत्म-संयम और इन्द्रिय-दमन कर सका ? विज्ञान के प्रकाश में अनेक आविष्कार इस प्रकार हुए हैं जिनके अपूर्व चमत्कार हैं, किन्तु संसार की किसी बात पर मुझे इतना विस्मय नहीं है, जितना मुझे इस बात पर है। आत्म-संवरण हो सकता है, किन्तु उसी से, जो उसके योग्य होता है। जिस पदार्थ में प्राकृतिक ज्वाला है, वह उस ज्वाला का दमन करके शीतल कैसे हो रहा है ? यह मेरे सम्मुख एक विस्मयकर समस्या है।

सर्वस्वत्यागी एक योगी की भाँति युवक रमेश का समय इसी प्रकार जीवन की आलोचना-प्रत्यालोचना में व्यतीत होने लगा। बनारस जाने का समय निकल गया। वह बनारस न जा सके।

खुर्दमहाल-पार्क में आज एक सार्वजनिक सभा थी। उसमें कई एक दूसरे वक्ताओं के अतिरिक्त बाबू राधामोहन और रमेश की भी वक्तृतायें हुईं। राधामोहन की वक्तृता जितनी ही सरल और राजनीतिक थी, रमेश की उतनी ही उत्तेजनापूर्ण और सामाजिक।

सभा विसर्जन हो जाने पर रमेश और राधामोहन एक साथ आये। उसके पश्चात् राधामोहन अपने घर चले गये और रमेश अपने घर।

रमेश ने घर जाकर देखा, सायंकाल की आई हुई डाक में दो समाचारपत्र और एक लिफाफा रखा है। लिफाफा देखते ही विश्वास हो गया, तारा का पत्र है।

उतावली के साथ पत्र खोला और आदि से अन्त तक उसे पढ़ डाला, किंतु संतोष नहीं हुआ। कुछ ठहर कर फिर पढ़ा। उसकी एक-एक पंक्ति से उनकी तृषित आत्मा को एक प्रकार की शीतलता और मधुर शांति मिलने लगी। जितनी ही बार पढ़ा, अधिकाधिक आनंद और संतोष का अनुभव किया।

रमेश पत्र के एक-एक वाक्य से तारा की हार्दिक स्थिति का विवेचन करने लगे। अब तक उनके हृदय में उसके प्रति जो दुर्भावनायें उठ कर उनके जी को संकल्प-विकल्प में डाले हुए थीं, वे प्रेम-परिप्लावित सद्भाव में परिणत हो गईं। प्रत्येक पंक्ति और शब्दावली से उन्होंने उसके तत्का-लीन विचारों और भावों को भली भाँति हृदयंगम किया।

तदुपरान्त रमेश चारपाई पर लेट गये। कुछ देर ठहर कर उन्होंने व्यालू किया और फिर शयनागार में जाकर सो रहे।

प्रातःकाल उठे और रामनगर जाने के लिये प्रवन्ध करने लगे। गाड़ी का समय आ जाने पर भोजन किया और ट्राम पर बैठ कर स्टेशन का रास्ता लिया।

वहाँ जाकर देखा, गाड़ी आ गई है। टिकट लेकर गाड़ी पर ज्यों ही बैठे, गाड़ी खुल गई।

यथासमय गाड़ी रामनगर पहुँच गई। स्टेशन पर उतर कर रमेश सदा की भाँति उत्कंठित हृदय से तारा के पास पहुँचे।

रमेश जब जब तारा के समीप बैठते और उससे बातें करते, उनके नेत्रों मे तारा के आत्म-संयम का मानचित्र होता। जितना ही उन्होंने उसके स्वभाव की आलोचना की, उतना ही उसको उन्होंने अपने हृदय में स्थान दिया। उसकी प्रकृति में आत्म-संयम और आत्म-संवरण देख कर उन्होंने समझा—संसार का जो सुख तृष्णा के दमन में है, वह तृष्णा की तृप्ति में नहीं। जो आनन्द त्याग में हो सकता है, वह भोग में किसी प्रकार सम्भव नहीं है।

किन्तु तृष्णा का दमन और आत्म-संयम किस प्रकार सम्भव है, यह रमेश की समझ में नही आया।

ज्येष्ठ मास की दोपहर है। तारा रमेश के निकट बैठी हुई बातें कर रही है। रमेश ने निश्चल और निस्पन्द होकर कहा—तारा, तुमसे आज मैं कुछ बातें करना चाहता हुं, मैं अत्यन्त निर्म्मल और निश्छल-भाव से तुम से बातें करूँगा। किन्तु फिर भी संकोच होता है, कहीं तुम अनुचित न समझो।

तारा ने उत्सुक हो कर कहा—क्या ?

रमेश ने कहा—जिस कठोर त्याग-पथ पर तुम्हें अपना जीवन अतिवाहित करना है, उस पर तुम क्या सोचा करती हो ?

तारा के मुख से कोई उत्तर मिलता हुआ न देख कर रमेश ने सोचा-तारा मेरी बात समझी नहीं। फिर कहा—तुम्हें यह आत्म-संयम और आत्म-संवरण किसने सिखा दिया है ?

तारा—तुम्हारे चले जाने पर मैं नित्य........

रमेश ने बात काट कर कहा—मैं जो पूछता हूँ, वह बताओ। मेरी बात को क्या समझा नही है ?

तारा ने माथा सिकोड़ कर कहा—क्या बताऊँ ?

रमेश—जो मै पूछता हूँ।

तारा—व्यर्थ की बातें न करो।

रमेश—क्यो, तुम्हें कुछ कष्ट होगा ?

कुछ उत्तर न देकर तारा फिर दूसरी बातें करने लगी। किन्तु रमेश ने झुँझला कर कहा—मैं दो-एक बातें समझना चाहता हूँ। तुम यदि न बताओगी, तो ....

तारा—क्या समझना चाहते हो ?

रमेश ने फिर अपनी बात कही। तारा ने मुस्कुरा कर पूछा—इसमें क्या समझना चाहते हो ?

रमेश—कुछ समझूँगा।

रमेश की बातो का कुछ उत्तर न देकर तारा फिर इधर-उधर की बातें करने लगी। रमेश ने पूछा—मेरी बातों का उत्तर न दोगी ?

तारा—क्या ?

रमेश—जो मैं पूछता हूँ।

तारा—अब मैं जाती हूँ।

रमेश—कहाँ ?

तारा—कुछ काम-काज करने। देखो न, साँझ होने चली है।

रमेश ने झपट कर तारा का हाथ पकड़ लिया और कहा—मैं देखता हूँ, तुम्हारा हृदय मेरे लिये कितना विशुद्ध है। यदि मेरी बातों का उत्तर न मिलेगा, तो मै समझूँगा कि तुम्हारा हृदय निर्म्मल नहीं है।

तारा का मुख गम्भीर हो उठा। बोली—मैं सच कहती हूँ, इन बातों को मै कुछ महत्व नही देती।

रमेश का विस्मय और भी अधिक बढ़ गया। कुछ ठहर कर अत्यन्त दीन-भाव से बोले—मै जो कुछ जानना चाहता था, वह तो दूर, मै और भी विस्मय में पड़ गया! निस्संकोच होकर दो बातें यदि तुम मुझे समझा दो, तो मै तुम्हारा बड़ा ऋणी होऊँगा।

यह कह कर रमेश ने तारा की ओर गम्भीर दृष्टि से देखा—सरल-स्वभावापन्न तारा के सुन्दर मुख पर करुणा के भाव जागरित हो उठे हैं। उसके कुछ न कहने पर उन्होंने विनम्र भाव से फिर कहा—हृदय की एक सच्ची बात के कहने में तुम्हें मेरे साथ कुछ संकोच हो सकता है?

आर्त्त-स्वर में रमेश के मुख से निकली हुई बात सुन कर तारा का सुकुमार-हृदय दयार्द्र हो उठा। उसके मुख से निकल पड़ा—ना।

रमेश ने कहा—मैं जानता हूँ, तुम्हारे हृदय को इन बातों से कष्ट होगा, किन्तु मेरे हृदय का विस्मय मुझे विवश कर रहा है तुम से दो बातें पूछने के लिये।

तारा का मुख भारी हो उठा। उसने कुछ उत्तर न दिया। रमेश ने फिर कहा—कल्पना करो, संसार स्वभावतः गुड़ खाता है। अब दो बातें हैं—गुड़ खाने को महत्त्व ही न देना दूसरी बात है, और गुड़ न होने के कारण आत्म-संयम करना दूसरी बात है। इन दो बातों में तुम्हारे लिये मैं क्या समझूँ?

तारा—मैं बिलकुल ठीक कहती हूँ, मुझे कभी स्मरण भी नहीं होता।

रमेश—यही तो मुझे विस्मय है। मुझे विश्वास नहीं होता ऐसा कभी हो सकता है?

तारा जोर से हँस पड़ी और कहने लगी—तुम्हें क्या हो गया है, कोई तुम्हारी बातें सुनेगा तो कहेगा, पागल हो गया है।

रमेश ने तारा की बात पर ध्यान न देते हुए कहा—जो तुम कह रही हो, वह कभी हो नही सकता।

तारा ने हँसते हुए पूछा—क्या नहीं हो सकता?

रमेश—जैसा तुम कह रही हो।

तारा—अच्छा, जो कुछ हो सकता है; वही सही।

रमेश—यह कुछ नहीं, सच्ची बात बताओ।

तारा—बस यही बातें हैं आज, या और कुछ?

रमेश—बस यही।

तारा—तो मैं जाती हूं।

यह कह कर तारा हँसती हुई जैसे ही चलने को खड़ी हुई, रमेश ने पकड़ लिया और कहा—जो बातें पाँच मिनट में हो सकती हैं, उनमें व्यर्थ इतना समय खो रही हो।

तारा—तो क्या करूँ?

रमेश—जो तुम कह रहीं हो, वह बिलकुल मिथ्या है, जिस पर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता। मैं जैसा कहता हूं कि मान लो, गुड़ खाना स्वाभाविक बात है, किन्तु गुड़ अपने पास न होने के कारण अपनी इच्छा का दमन करना दूसरी बात है, और गुड़ खाने का स्मरण ही न होना दूसरी बात है।

तारा ने रमेश के मुख पर तीक्ष्ण-दृष्टिपात करते हुए मुस्कुरा कर कहा—कहाँ गुड़ है? बताओ, कहाँ है?

रमेश ने हँस कर पूछा—खाओगी?

तारा ने सिर हिला कर स्वीकार किया। रमेश ने विस्मित नेत्रों से तारा

की ओर लगातार बड़ी देर तक देखा। उनको बार-बार सुनाई देने लगा, मानो तारा कह रही है—कहाँ है गुड़, बताओ कहाँ है ?

तारा की निर्भयता देखकर रमेश का सर्वाङ्ग काँप उठा। उसकी बात को भुलाकर उन्होंने कहा—खाने की इच्छा होती है, किन्तु गुड़ न होने के कारण आत्म-संवरण किया जा सकता है, यहाँ तक तो मेरी समझ में आता है, किन्तु तुम्हारा जो कहना है, मनुष्य प्रकृति का जहाँ तक मैंने अनुभव किया है, मेरी समझ में किसी प्रकार वह नहीं आता।

तारा का मुख अत्यन्त गम्भीर हो उठा। टकटकी लगाकर वह एक ओर को देखती रह गई। उसकी अवस्था देखकर रमेश कुछ न समझ सके। उसके मुख से करुणार्त्त स्वर में निकल पड़ा—जान बूझकर क्या पूछते हो ?

रमेश ने तारा के आन्तरिक दुःख का प्रत्यक्ष अनुभव किया। फिर कुछ विलम्ब के पश्चात् कहा—तारा, मुझे खेद है कि मैंने तुम्हारे हृदय को दुःखी किया। विश्वास रखो, मैंने किसी दूसरे भाव से नहीं पूछा। मैं तुम्हारा हूँ, मेरी बातों से तुम्हें दुःख न होना चाहिये।

४४

इस सौन्दर्योपासक जगत में सौन्दर्य का बहुत अधिक मूल्य है। किन्तु संसार में वास्तविक सौन्दर्य की मात्रा बहुत कम है। जिसमें केवल रूप है, शारीरिक-संगठन और सुन्दर छबि है, वह सौन्दर्य बाह्य सौन्दर्य है। बाह्य सौन्दर्य में चित्ताकर्षण होता है, किन्तु अस्थायी। जहाँ बाह्य सौन्दर्य होता है और अन्तरात्मा कलुषित होती है, वह सौन्दर्य वास्तव में वह सोने का घड़ा है, जिसके भीतर विषाक्त पदार्थ होते हैं।

किन्तु, जहाँ आन्तरिक सौन्दर्य है, जिसका व्यावहारिक जीवन सुन्दर है, यथार्थ में वही सौन्दर्य है। आन्तरिक सौन्दर्य ही स्थायी सौन्दर्य है। प्राकृतिक संसार में दो प्रकार के सौन्दर्य हैं—बाह्य सौन्दर्य और आन्तरिक

सौन्दर्य। पर जहाँ दोनों सौन्दर्य हैं, बाह्य सौन्दर्य के साथ-साथ सोने और सुगन्ध की भाँति आन्तरिक सौन्दर्य भी है, वही प्रकृति सौन्दर्य है।

तारा का शारीरिक संगठन जितना सुन्दर है, व्यावहारिक जीवन उससे भी सुन्दर है। उसके व्यवहार सौन्दर्य ने एक-एक बच्चे और एक-एक स्त्री-पुरुष को अपना रखा था। अपनी व्यवहार-कुशलता के कारण वह कभी किसी की अप्रसन्नता का कारण न हो सकी थी।

किन्तु इस पापात्मा संसार की आँखों में किसी के गुण देखने का उतना प्रकाश नही है, जितना अवगुण देखने के लिए !

रमेश और तारा का सम्बन्ध संसार के नेत्रों में खटका और संसार उसे किसी प्रकार सह नही सका। रामनगर के अनेक घरों में तारा की आलोचना होने लगी। जहाँ कही दो-तीन स्त्रियाँ इकट्ठी होती, तारा की बातें होने लगती। कोई कहता—तारा देखने में ही भोली-भाली है। कोई कहता-जब से आई है, रमेश के साथ विहार करती रहती है। कही बातें होतीं—इसीलिए तो उसने धीरजपुर छोड़ा है। कोई बताता—यही तो अब संसार में रह गया है !

इधर तारा के स्नेह-बन्धन के कारण रमेश को बार-बार अनेक मानसिक कष्टों का सामना करना पड़ा। एक दिन के लिए भी विलग होने से उनका हृदय जिस प्रकार अधीर और अस्थिर हो उठता, वही उसे अनुभव करते। अनेक बार उन्होंने अपनी अवस्था पर विचार करके अपने को सम्हाला, किन्तु कोई विशेष फल नही हुआ।

रमेश को अपना जीवन निरीह बोध होने लगा। अत्यन्त अस्थिर हो जाने के समय भी उनकी निर्बल आत्मा ने समाज के प्रति उनको स्वेच्छा-चारिता से काम न लेने दिया। फिर भी उनके हृदय में यह भावनायें उठने लगतीं—इस प्रकार यह जीवन कब तक बीतेगा ? इस समाज की रक्षा—जिसमें केवल कृति की विशुद्धता है—कब तक हो सकेगी ?

समाज के आधिपत्य को अनुचित समझते हुए भी रमेश सामाजिक

अवहेलना के लिए प्रस्तुत न थे। किन्तु हृदय की व्याकुलता ने उनको जीवन के एक ऐसे जटिल स्वरूप में पहुँचा दिया, जिससे उनको यह ज्ञान ही न रहा कि मुझे क्या करना चाहिये।

सायंकाल छत पर बैठी हुई तारा रमेश को रामा के भेजे हुए पत्र दिखा रही है और कह रही है कि रामा का मेरे साथ अब बड़ा अच्छा व्यवहार है।

रामा और तारा के बीच में स्नेह देख कर रमेश को अपार आनन्द हुआ। कुछ विलम्ब तक तारा अनेक गाथायें गाती रही। उसकी समझ में रमेश बातें सुन रहे हैं; किन्तु उस समय उनका हृदय कुछ दूसरी बातों की उलझन में पड़ा हुआ था।

उसकी बातें समाप्त हो जाने पर थोड़ी देर में उन्होंने अत्यन्त सरल और दीन भाव से कहा—तारा, मेरे साथ तुम्हारा यह सम्बन्ध संसार को स्वीकार नहीं है। मुझे पहले नहीं मालूम था कि संसार मेरे सम्बन्ध को पद-दलित करेगा।

तारा ने टकटकी लगा कर रमेश की बात सुनी; किन्तु कुछ उत्तर न दे सकी। रमेश ने फिर कहा—संसार मेरी निन्दा करता है। जब मैं इस निन्दा की आलोचना करता हूँ, मुझे यह निन्दा अनुचित जान पड़ती है।

तारा—फिर?

रमेश—यह सब जान कर भी मुझे निन्दा से छुटकारा पाने के लिए चेष्टा करना चाहिये।

तारा—आज से नहीं, जिस दिन तुमने इस घर में पैर रखा था, उस दिन से मेरा जी न जाने क्यों तुम्हारा हो गया है।

रमेश—वायु को देख कर मुझे दिशा का परिवर्त्तन करना चाहिये।

तारा—क्या?

रमेश—यदि तुम मुझसे मिलना छोड़ दो, तो यह अपवाद मिट सकता है।

तारा ने निर्भीक हृदय से उत्तर दिया—सब कुछ मुझसे हो सकता है, किन्तु यह मुझसे न होगा।

रमेश—यदि मैं तुम्हें भूल जाऊँ ?

तारा—किन्तु मैं तुम्हें न भूलूँगी।

रमेश ने सावधान होकर तारा की ओर देखा। उसके निर्भीक मुखमण्डल पर किसी प्रकार का कोई भाव न दीख पड़ा। बोले—इस हठ से क्या होगा ?

तारा—जो कुछ भी हो।

तारा की एक-एक बात सुन कर रमेश को आश्चर्य होने लगा। कुछ ठहर कर उन्होंने पूछा—जिस अभागे के कारण तुम्हारा यह लोकापवाद होता है, उसे तुम इतना क्यों अपनाती हो ?

तारा ने बात का उत्तर न देते हुए कहा—लोकापवाद के भय से मेरा तुम त्याग करोगे ?

छत के नीचे घर में दो-तीन स्त्रियाँ बातें कर रही थीं, तारा की बात समाप्त होते ही अकस्मात् सुनाई पड़ा—कलियुग है कलियुग! विधवा क्या हुई, मानो संसार का सुख मिला, लाज-शर्म से पिण्ड छुटा! कोई कुछ कहे, पर वहाँ किसकी परवाह है। हे भगवान, न जानें इस कलियुग में क्या-क्या देखने में आयेगा।

यह सुनते ही रमेश का हृदय काँप उठा। मुख से कोई बात न निकल सकी। पास ही बैठी हुई तारा ने भी स्पष्ट सुना।

कुछ समय तक उन बातों की ओर ध्यानपूर्वक सुन चुकने पर रमेश ने देखा, तारा के मुख पर संकोच और मानसिक वेदना का कोई भाव नहीं है। उसके इस प्रकार प्रस्तर-हृदय को कर उनके अन्तःकरण में अनेक बातें उठने लगीं।

स्त्रियों की बातें सुन चुकने पर तारा ने रमेश की ओर देख कर कहा—सुना ?

रमेश ने कुछ उत्तर न दिया। तारा ने फिर कहा—मेरे लिए सब कहा जा रहा है।

तारा की बात सुनकर स्थिर नेत्रों से रमेश ने उसकी ओर बड़ी देर तक देखा। उनका सर्वाङ्ग अवसन्न हो गया। मुख से कुछ न निकल सका। कुछ समय में उन्होंने तारा के मुख से फिर सुना—परमात्मा कुछ न कहे, मनुष्य कहा करे। मैं पाप करती हूँ या नही, परमात्मा इस बात को जानता है। मनुष्य के कहने से क्या होता है।

रमेश ने कहा—मनुष्य जैसा देखता है, वैसा कहता है। वह किसी के हृदय की बात को क्या जाने?

तारा—क्या देखता है?

रमेश—जो कहता है, वही देखता है।

तारा—कहा करे!

तारा की स्वेच्छाचारिता और निर्भीकता देखकर मधुर मुस्कान के साथ रमेश ने पूछा—पाप नहीं किया?

तारा ने तीव्र स्वर में उत्तर दिया—ना।

रमेश—पाप नही तो फिर और क्या था?

तारा—इस प्रकार तो संसार एक दूसरे का प्यार किया ही करता है, इसमें कुछ पाप नहीं है।

तारा की बात सुनकर रमेश का हृदय अत्यन्त विस्मित हो उठा। जिसे आज तक उन्होंने पाप में ही मिश्रित समझा था, जिसे संसार पाप कहता है, आज एक बालिका के मुख से सुन कर—इसमें कुछ पाप नहीं है—उनके विस्मय का ठिकाना न रहा।

रमेश सोचने लगे—पाप क्या है? पाप किसे कहते हैं? जिसे संसार ने पाप समझ रखा था, उसकी अवहेलना करती हुई एक बालिका आज संसार को सिखा रही है—इसमें कुछ पाप नहीं है। इस सभ्य संसार के गर्व को—जिसमें समाज का शासन है—धूलि में मिलाते हुये एक अबोध

बालिका कह रही है—इसमें कुछ पाप नहीं है। वास्तव में पाप है क्या? संसार को इस बात का ज्ञान नहीं! जिसकी आत्मा अत्यन्त निर्म्मल है, उसके निकट वास्तव में कोई पाप नहीं। किन्तु हाय! संसार की सभ्यता के निकट जो कुछ है, पाप है—दुराचार है।

बड़ी देर तक रमेश तारा की बातों की विवेचना करते रहे। अन्य-मनस्क बैठी हुई तारा को अपनी अवस्था का ज्ञान हुआ—लोकापवाद का ज्ञान हुआ। उसके नेत्र अश्रुबिन्दुओं से छलछला उठे। उसने अपना प्रश्न, जिसका उत्तर रमेश न दे पाये थे, फिर पूछा—लोकापवाद के कारण क्या तुम मुझे भुला दोगे?

तारा की बात सुन कर रमेश ने उसकी ओर देखा—उसके नेत्रों से अश्रुबिन्दु भूमि पर टपक रहे थे। उनका हृदय सहम उठा। चेतना-हत होकर करुणार्द्र भाव से उन्होंने उसको प्रेमालिङ्गन करते हुए कहा—मैं.... इस ...जीवन ..में . तुमको .. झूठ बात है।

तारा के नेत्रों का अश्रुपात न रुका। अपने वस्त्र से तारा के नेत्रों का अश्रुमोचन करते हुए रमेश ने फिर कहा—तारा, तुम्हारे नेत्र अपनी अवस्था पर नहीं, समाज की सभ्यता पर आँसू बहा रहे है।

४५

तारा के व्यावहारिक जीवन को देख कर रमेश सोचा करते—संसार में ऐसी कितनी आत्मायें होगी, जिनका व्यावहारिक जीवन इतना सुन्दर होगा! दूसरे का मन आकर्षित करने और संसार को अपनाने के लिए तारा के व्यबहार-बर्ताव में गजब का जादू है।

उसके शील और स्वभाव को देखकर रमेश विस्मित होकर कहते—तारा ने संसार की यह माया कहाँ से सीखी है। रामा जिस समय उसके साथ दुर्व्यवहार कर रही थी, और मैं उसपर अप्रसन्न हो रहा था, उस समय

उसने मुझे विवश किया था रामा के दुर्व्यवहारों पर भी रामा के साथ सद्व्यवहार करने के लिए। वह जिस समय बातें करती है, उसकी बातों में सरल और गम्भीर भाव का अगाध समावेश होता है।

एक-दो नहीं, ऐसी अनेक बातें तारा में रमेश को दिखाई पड़तीं, जिनको देख कर उनके हृदय में अनन्त विस्मय का आविर्भाव होता। कभी-कभी वह सोचते—संसार कहता है, सभ्यता सीखो, शिक्षित बनो। संसार में कितनी सुविधायें न की गईं? छोटे-से-छोटे स्कूल से लेकर बड़े-से-बड़े कालेज और विश्वविद्यालय संसार में अपने प्रकाश के सम्मुख किसी को कुछ नहीं समझते। किन्तु उन कालेजों और विश्वविद्यालयों के शिक्षार्थियों में ऐसे कितने हृदय निकलते हैं, जिनमें वास्तविक हृदय हो, जिनमें विशुद्ध शील और मधुर सद्व्यवहार हो, जिनके व्यावहारिक जीवन में पवित्र मोहनमन्त्र हो? संसार में ऐसी कितनी आत्मायें हैं, जो अत्यन्त सुन्दर होकर भी इस प्रकार संयम-शील......!

वह प्रायः तारा के व्यावहारिक जीवन की आलोचना करते हुए निश्चय करते—तारा से जब मिलूँगा, तो उसके शील और सरल स्वभाव को देख कर समझूँगा कि संसार में शील और सरल स्वभाव किसे कहते है। जिस समय वह बातें करेगी, ध्यानपूर्वक उसके सुन्दर मुख को देख कर अनुभव करूँगा कि प्रकृत जीवन में किस प्रकार लोकप्रियता, सुशीलता, स्वतन्त्रता, संयम और आत्म-दमन का स्वाभाविक समावेश होता है।

किन्तु जिस समय वह तारा से मिलते, उस समय उसके विनोद और मनोरञ्जन में अपने आप को भूल कर सम्मिलित हो जाते।

रमेश तीन दिनों से कानपुर जाने की चेष्टा कर रहे हैं; किन्तु तारा के आग्रह से नित्य जाने में असमर्थ हो जाते हैं। आज उन्होंने प्रातः उठ कर निश्चय कर लिया है कि मैं कानपुर अवश्य चला जाऊँगा। देखूँ, वह मुझे कैसे रोक लेगी।

शौच-क्रिया से निवृत्त होकर वह तारा के पास पहुँचे। तारा चद्दर

ओढ़े हुए सो रही है। जाते ही उन्होंने चद्दर अकस्मात् खींच ली। वह झटपट उठ कर अपने परिधान-वस्त्रों को सम्हालने लगी। उन्होंने कहा—मैं आज जाता हूँ।

तारा—कहाँ ?

रमेश—कानपुर।

तारा ने चारपाई पर बैठने के लिये रमेश को संकेत किया। उन्होंने कहा—चारपाई पर बैठूँगा नहीं। तीन दिनों से मै कानपुर नहीं जा सका। आज मैंने निश्चय कर लिया है कि अवश्य जाऊँगा।

तारा—अच्छा, जरा बैठ तो जाइये।

रमेश—बैठूँगा नहीं। कहो, क्या कहना है ?

तारा—बैठ जाइये। कहती हूँ।

रमेश—नही, बैठूँगा हरगिज नहीं। बैठना ही तो अपराध है।

तारा ने तीक्ष्ण दृष्टिपात करते हुए कहा—क्या ?

रमेश ने बात बना कर कहा—इस लिये कि बैठने ही के कारण तीन दिनों से जाने की चेष्टा करने पर भी नही जा सका।

तारा—यह कुछ नही। जब आपकी इच्छा न होगी, तो फिर आपको कौन रोक लेगा ?

रमेश—हाँ, रोक लेगा।

तारा—कौन ?

रमेश—जिसने अब तक रोक रखा है।

तारा ने संकुचित भाव से कहा—जिसकी प्रार्थना पर चारपाई पर बैठ नहीं सकते, उसे क्या अधिकार है रोक रखने का ?

रमेश कुछ उत्तर न दे सके। गम्भीर दृष्टि से तारा की ओर देख कर चारपाई पर बैठ गये। बैठते ही कहने लगे—तारा, देखो, अब आज मुझे रोको नहीं, तीन दिनों से प्रयत्न करने पर भी मै जा नहीं सका। कल

सायंकाल बाबू राधामोहन का पत्र मिला है। अब यदि न जाऊँगा, तो वह अप्रसन्न होंगे।

तारा—बाबू राधामोहन कौन ?

रमेश—कानपुर से एक उच्चकोटि की मासिक-पत्रिका प्रकाशित होती है। वह उसी के सम्पादक हैं। मेरे बडे मित्र हैं।

तारा—वह क्यों अप्रसन्न होंगे ?

रमेश—इसी लिए कि उन्होंने बुलाया है।

तारा—उन्होंने बुलाया है, मै रोकती हूं।

रमेश ने मुस्कुराते हुए तारा की ओर देखा। उनके कुछ उत्तर न देने पर उसने फिर कहा—तब क्या करोगे ?

रमेश ने फिर भी कुछ उत्तर न दिया। कुछ देर ठहर कर कहा—मैं कानपुर न जाता, यदि तुम्हारा कुछ काम होता। मैं देखता हूं, मेरे यहाँ रहने से तुम्हारा कुछ उपकार नहीं होता, और वहाँ जाने की बड़ी आवश्य-कता है। इस लिए मुझे आज जाने दो। मैं विश्वास दिलाता हूँ, जब तुम बुलाओगी, तुरन्त आऊँगा।

तारा—अच्छा, आज नही, कल।

रमेश—यही कहते-कहते कई 'कल' वीत गये—आज चौथा दिन । आज तुम फिर कहती हो, आज नही—कल।

तारा—मैं सच कहती हूं, कल न रोकूँगी।

रमेश—यह कुछ नहीं, मैं आज जाऊँगा।

बड़ी देर तक तारा और रमेश में परस्पर आग्रह होता रहा। उसके बढ़ते हुए आग्रह को देख कर रमेश ने कहा--तुम चाहे जितनी बातें बनाओ, मै किसी प्रकार आज रुक नही सकता।

तारा ने विनीत भाव से कहा-मेरी बातों पर तुम्हें कुछ तरस नहीं आता ?

रमेश--तुम्हारी यह नित्य की बातें हैं। तुम व्यर्थ मेरी हानि करा रही हो।

तारा—नित्य नहीं, केवल आज। कल फिर मैं हँस कर आपको भेज दूँगी।

रमेश—आज क्यों नहीं?

तारा—आज कुछ काम है।

रमेश—क्या काम है?

तारा—कुछ बातें करनी है।

रमेश—बातें-बातें कुछ नहीं हैं। इतने दिन आए हो चुके हैं, तब बातें क्यों नहीं हुईं? अब आज कुछ बातें करनी हैं।

तारा ने मुस्कुरा कर कहा—गुड़ नहीं खाओगे?

विस्मित होकर रमेश ने तारा की ओर देखा। उनके मुख से कोई ब ह न निकल सकी। वह खिलखिला कर हँस पड़ी।

रमेश का विस्मय उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। बार-बार तारा के मुख की ओर देख कर बोले—व्यर्थ तुम मुझे रोकती हो, कानपुर जाना आवश्यक है, जाने दो।

तारा ने कुछ उत्तर न दिया और भूमि पर हाथ की उँगली से रेखायें करने लगी। रमेश ने फिर कहा—तुम सुनती नहीं हो, मुझे जाने को देर हो रही है।

भूमि पर उँगली से रेखायें करते हुए तारा ने कहा—जिन बातों के लिये मैंने बुलाया था, वे बातें करके फिर कल आनन्द से चले जाइये।

रमेश ने कुछ उत्तर न दिया। तारा ने फिर कहा—तुम तो चले जाओगे, मुझे क्या कहते हो? मेरी सब बातें सुन कर जैसा कुछ उचित समझ पड़े, निर्णय करके कल ...

रमेश ने कहा—कैसा निर्णय?

तारा—जिसके लिये मैं रामनगर आई थी और जिसके लिये मैंने तुम्हें बुलाया था, वह बात करने के लिये बार-बार चेष्टा करती हूँ किंतु साहस नहीं

होता। इसी लिए मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ, दो बातें सुन कर जैसा समझ पड़े, मुझे आज्ञा दो।

तारा की बातें सुन कर रमेश के हृदय में संकल्प-विकल्प उठने लगे—ऐसी कौन-सी बातें हैं, जिन्हें कहने की चेष्टा करने पर भी कह सकने का साहस नहीं हुआ ?

रमेश अपने जाने की बात भूल-सी गये और बार-बार सोचने लगे—ऐसी कौन-सी बातें हो सकती हैं, जिनके कहने का तारा को साहस नहीं हुआ। यदि कोई ऐसा रहस्य है, जिसके लिए तारा ने मुझे बुलाया था, और यदि मैं बिना उन्हें सुने चला जाऊँगा, तो मेरा आना व्यर्थ होगा।

यह सोच कर रमेश ने तारा से पूछा—कब बातें करोगी ?

तारा—दोपहर को, भोजन के पश्चात्।

रमेश—अच्छा, कल मुझे फिर रोकोगी तो नहीं ?

तारा—ना।

४६

दोपहर ढल चुकी है। लगभग तीन के बजा होगा। रमेश बड़ी देर से तारा के साथ बातें कर रहे हैं।

तारा की एक-एक बात सुन कर प्रत्येक बात का उन्होंने यथोचित उत्तर दिया। जिस समय वह बातें करने बैठे थे, प्रतीक्षा करने लगे थे कि तारा कोई गुप्त समाचार कहना चाहती है। अनेक बातें हो चुकने पर उन्होंने अनुभव किया कि उसने उसी प्रकार की बातें कीं, जैसी कि कल तक नित्य करती थी।

रमेश को सहसा बोध हुआ—तारा ने मुझे रोकने के लिए यह बातें बनाई थीं। कितना बड़ा भ्रम हुआ। मैं आज किसी प्रकार न रुकता और कानपुर चला जाता, किन्तु उसकी बातें सुन कर मैंने समझा कि वह किसी

गुप्त रहस्य की बातें करेगी। इसी लिए मैं किसी प्रकार जाने का साहस न कर सका।

रमेश ने व्याकुल हो कर पूछा—तारा, तुमने मुझे बड़ा धोखा दिया। मैं आज अवश्य चला जाता, किन्तु तुम्हारी बातें सुन कर मैंने समझा कोई विशेष बात है। तुम्हारे हाथों मै कई बार बन चुका था, इसी लिये मैंने आज निश्चय कर लिया था कि आज अवश्य चला जाऊँगा। किंतु आज भी तुमने मुझे खूब बनाया।

तारा जोर से हँस पड़ी। रमेश सोचने लगे—मैंने आज कहा था, कि देखूँ आज तारा मुझे कैसे रोक लेगी। किन्तु मेरी चातुरी काम न कर सकी। मैं जानता था कि वह मुझे रोकने की चेष्टा करेगी। पर फिर भी मै बातों में आ गया!

तारा ने हँसते हुए कहा—नही-नहीं, मैने बनाया नहीं।

रमेश—आज के लिए कुछ नई बात नहीं है। मुझे जब ऐसा विश्वास हो जावेगा, तो मैं तुमसे फिर मिला न करूँगा। सच कहता हूँ, मै हास्य-विनोद के लिए नहीं मिलता।

तारा ने व्यग्र होकर कहा—मुझ पर अविश्वास करोगे?

रमेश—तुमने कितनी बार पत्र में लिखकर—आवश्यक काम है—बुलाया है। मैं तुरन्त आया, परन्तु आकर देखा, कही कुछ नहीं।

तारा ने रमेश की बात पर ध्यान न देते हुए कहा—अपने हृदय की जिन बातों पर प्रकाश डालना चाहती हूँ, उसे प्रकाशित करने में असमर्थ-सी हो जाती हूँ।

तारा की बात सुनकर उसके हृदय की आन्तरिक गवेषणा करते हुए रमेश के हृदय में अनेक बातें उठने लगीं। थोड़ी देर में उन्होंने कहा—निस्संकोच-भाव से तुमको प्रत्येक बात कहना चाहिये।

तारा—तब तुम क्या करोगे?

रमेश—यथाशक्ति तुम्हारा उपकार।

तारा ने करुणार्द्र नेत्रों से अनेक क्षण पर्य्यन्त रमेश के मुख की ओर देखकर कहा—मेरा जी कहीं लगता नही, यह क्या बात है ?

रमेश ने कुछ सोचकर कहा—जी क्यों नहीं लगता ?

तारा—मै नहीं जानती ।

रमेश—भला अपने जी की बात कोई न जानेगा ?

तारा—तुम बताओ, मेरा जी क्यों नहीं लगता ?

तारा की बात सुन कर रमेश सोचने लगे—दूसरे के हृदय की बात भला मै क्या जानूँ ? यह भी तारा की एक पालिसी है, कि स्वयं न कह कर मुझसे पूछती है—तुम बताओ, मेरा जी क्यों नही लगता ?

रमेश ने सोचकर कहा—मै नहीं, इसका निर्णय तुम्हीं कर सकती हो।

तारा—जब मैं धीरजपुर जाती हूँ, तो कुछ समय तक जी लगता है, फिर रामनगर के एक-एक जन की मुझे याद आती है, और रामनगर आने के लिए सिर धुना करती हूँ। किन्तु जब रामनगर आ जाती हूं, तो कुछ समय तक रामनगर में भी जी लगता है, और फिर धीरजपुर के बच्चों, स्त्रियो और पुरुषों की याद आती है।

रमेश ने विस्मित होकर पूछा—रामनगर में तुम्हारा जी अब नहीं लगता ?

तारा ने सिर हिलाकर कहा—ना ।

रमेश आश्चर्य के साथ सोचने लगे—यह बात क्या है ? मैं मनुष्य होकर एक मानव-प्रकृति का रहस्य समझ नहीं पाता। अब तक मैंने जो समझ रखा था, वह केवल भूल है। मैं समझता था, धीरजपुर से रामनगर का मान तारा के हृदय में अधिक है। मै समझता था, तारा रामनगर केवल मेरे लिये आती है, किन्तु यह सब भूल है। तारा के हृदय में रामनगर का उतना ही मान है, जितना धीरजपुर का। यह भी सम्भव है कि तारा के हृदय में मेरा भी उतना ही मूल्य हो, जितना संसार के प्रत्येक मनुष्य का।

रमेश के हृदय में क्षोभ का आविर्भाव हुआ, किन्तु थोड़ी ही देर

में वह फिर सोचने लगे—तारा मनुष्य-जीवन का प्यार करती है। इसके हृदय की अतृप्त आकांक्षा मानव-जीवन की भिखारिणी हो गई है, और उसकी कातर आकांक्षा.........।

रमेश सोच रहे थे, कि तारा ने फिर कहा—जिसे मैं एक बार देखती हूँ, फिर उसे देखने की मेरी इच्छा होती है। किसी पर भी क्रोध नहीं आता। अनेक स्त्री-पुरुषों ने मुझे अपवाद लगाया, मैंने सुना और जाना, किसी पर मुझे क्रोध नहीं हुआ।

तारा की ओर देखते हुए ध्यानपूर्वक रमेश बातें सुन रहे थे। कुछ ठहर कर तारा फिर कहने लगी—न जाने मेरा कैसा स्वभाव है। घर के नौकरों के साथ जब कटु व्यवहार होता है, तब मुझे दुख होता है। नौकर जब कोई नौकरी छोड़ कर चला जाता है, तो मैं उसके लिए रोती हूँ।

निर्निमेष दृष्टि से रमेश तारा की ओर देख रहे थे। उसकी अनेक बातें सुनने पर भी कुछ कहने का उसमें साहस न हुआ। उसके मुख से उन्होंने फिर सुना—घर के पशुओं में जब कोई बिकता है, तो मुझे खेद होता है। मुझे ऐसा जान पड़ता है, मानो वह अब एक जीवन के लिए बिलग हुआ और अब न मिल सकेगा। जब कोई पशु मर जाता है, तो मैं उसके लिए दिन-दिन भर रोया करती हूँ। मेरे यहाँ एक गाय थी। उसके एक बछड़ा था। बड़ा सुन्दर था। उसे मैं बहुत प्यार करती थी। संयोग से वह मर गया—मुझे बड़ा दुःख हुआ। बहुत कहने-सुनने पर मैंने दूसरे दिन भोजन किया। किन्तु उसकी याद मुझे कई सप्ताह तक न भूली।

रमेश ने मुस्कुराते हुए कहा—बछड़ा तुम्हें क्यों प्यारा था, इसी लिये कि वह बड़ा सुन्दर था!

तारा ने कुछ उत्तर न दिया। रमेश ने फिर कहा—तारा, सुन्दर वस्तु तुम्हें भी प्यारी लगती है? जो स्वयं सुन्दर है, वह दूसरे की सुंदरता का भला क्या प्यार करे?

तारा ने कहा—अठखेलियाँ तुम कर रहे हो, पीछे को मुझे दोष देते हो।

रमेश—अच्छा, अब,,अठखेलियाँ न करूँगा, किन्तु और क्या करूँ ? तुम्हारे इतना कह जाने पर भी मैं कुछ समझ नहीं सका।

तारा—तुम इतना भी नहीं समझ सके, कालेज में क्या पढ़ते रहे ?

रमेश—मैंने कालेज में यह नहीं पढ़ा।

तारा—और क्या पढ़ा है ?

रमेश—कालेज में 'ज्योग्राफी' पढी है, विज्ञान और संसार का इतिहास पढ़ा है।

तारा—किन्तु एक मनुष्य-जीवन की समस्यायें नहीं पढ़ीं !

रमेश कुछ उत्तर न दे सके। तारा जोर से हँस पड़ी और कहने लगी—क्यों, यही ना ?

तारा के हँस पड़ने पर हास्य-स्वर के एक-एक कण से सुनाई देने लगा—किन्तु एक मनुष्य-जीवन की समस्यायें नहीं पढ़ीं।

रमेश कुछ विस्मित-से होकर चिन्ता करने लगे—एक मनुष्य-आत्मा को मानव-प्रकृति की एक बात न बता कर 'ज्योग्राफी' 'साइन्स' और 'हिस्ट्री' की शिक्षा देने वाले संसार के स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय मानव-इतिहास के लिये उपहास-मात्र है। एक बालिका, जो मेरे सम्मुख एक नितान्त निरक्षर बालिका है, आज मेरा उपहास कर रही है, और भूत होकर स्कूल तथा कालेज की दीवारों के पीछे पड़ने वाला मैं एक निर्लज्ज की भाँति उस उपहास को सह रहा हूँ !

चिन्ता करते-करते रमेश ने दीन-भाव से कहा—जिस प्रकार तुमने अपनी स्थिति बताई है, यदि उसके साथ-साथ यह भी निर्णय कर डालो, कि इस प्रकार की स्थिति का कारण क्या है तो अधिक अच्छा हो।

तारा ने कहा—इसका निर्णय तुम्हीं करो।

तीक्ष्ण दृष्टिपात करते हुए रमेश ने कहा—मैं ?

तारा—हाँ, तुम।

निर्निमेष नेत्रों से तारा का विकसित वदन-मण्डल देखते हुए रमेश को स्पष्ट बोध हुआ--एक आरण्य-कुसुम अरण्य में ही जन्म लेकर अरण्य में ही विकसित और प्रस्फुटित हुआ ! यौवन की अतृप्त बासनाओं की ज्वाला! स्नेह-सरिता का प्रखर स्रोत ! पथावरोध !

रमेश ने सोचते-सोचते कहा--एक दुखी आत्मा की अवस्था ऐसी ही हो जाती है।

तारा--यही तो प्रश्न है, क्यों हो जाती है ?

रमेश--यह तो तुम्हीं सोच सकती हो कि हमारी अभिलाषा किस बात के लिए है--हमारे मन का आकर्षण किस ओर है !

तारा--जब मैं धीरजपुर में थी, तब मेरा जी रामनगर में रखा था। जब रामनगर में आ गई, तो तुम्हारी ओर जी लगा रहा। अब इच्छा होती है और कहीं जाऊँ--तीर्थ-यात्रा करूँ।

रमेश ने मुस्कुरा कर कहा--करो तीर्थ-यात्रा !

तारा--चलो फिर, पहले कहाँ चलोगे ? तुम तो कानपुर जाते हो !

रमेश--मेरे साथ तीर्थ-यात्रा ?

तारा--हाँ, तुम्हारे साथ तीर्थ-यात्रा। क्यों ?

रमेश--यदि मैं दुर्व्यहार करूँ तो ?

तारा ने रमेश की ओर देख कर निर्भीक स्वर से कहा--तुम ? कुछ नहीं कर सकते।

रमेश--क्यों ?

तारा--मुझे विश्वास है।

रमेश कैसे ?

तारा--जिस मार्ग पर विश्वास न होगा, उसपर पैर न रखूँगी।

तारा की बात सुन रमेश विस्मित नेत्रों से उसकी ओर देखकर रह गये।

४७

प्रभात काल में निद्रा-भङ्ग होते ही जिस समय तारा के नेत्र खुले, अकस्मात् रमेश के चले जाने की बात का स्मरण होने से उसके हृदय में धक-सा हुआ। उनके चले जाने की बात बार-बार सोच कर उसके हृदय में असह्य वेदना होने लगी।

इन दिनों में रमेश के साथ आनन्द-विनोद हास्य-मनोरञ्जन करते हुए तारा का समय जिस प्रकार व्यतीत हुआ और उसमे जिस प्रकार सुख मिला, तारा के निकट आज उसका कुछ मूल्य नहीं है। काल रात तक हास्य-मनोरञ्जन में जो सुख था, आज वह सब का सब अतीत काल के गर्भ में विलीन हो गया।

यद्यपि अभी गये नहीं है, केवल जाने की बात है। किन्तु अभी से उस दारुण वेदना को—जो क्षण भर में सम्मुख आने वाली है—अनुभव करके तारा का हृदय अस्तव्यस्त हो रहा है। यद्यपि रमेश के आज रोक रखने का तारा के पास कोई उपाय शेष नही है, फिर भी वह उनके रोक रखने की बात बार-बार सोचने लगी।

रमेश ने यथासमय तारा मे मिल कर अपने जाने की प्रार्थना की। उसने अत्यन्त विनीत-भाव से पूछा—आज रुकोगे नहीं?

रमेश ने विरक्त स्वर में उत्तर दिया—यदि मेरे पूछने का यही फल होता है, कि मैं जा नही सकता, तो मैं न पूछूँगा और चला जाऊँगा।

तारा ने कहा—इतना मैं भार हो गई हूँ?

तारा की बात सुन कर क्षण भर के लिये रमेश ने तारा के मुख की ओर देखा। यकायक उनके मुख से निकल पड़ा—हाँ।

तारा—क्यों?

रमेश—इस लिये कि—न खुदा ही मिला, न विसाले सनम, न इधर के हुए, न उधर के हुए!

तारा—विसाले सनम क्या ?

रमेश ने कुछ उत्तर न दिया। तारा ने फिर कहा—रमेश बाबू, भला आज किसी प्रकार ठहर सकते हो ?

रमेश—ना।

तारा—क्या मैं एक दिन आपको ठहरा नही सकती ?

रमेश—कितने दिन मुझे जाते-जाते हो चुके हैं, अभी तुम्हारा एक दिन नही हुआ ?

तारा—अभी तक तो आप अपनी इच्छा से रहे हैं, आज मैं अपनी इच्छा से रोकती हूं।

रमेश—अभी तक हम अपनी इच्छा से रहे हैं ?

तारा—हाँ, अपनी इच्छा से।

रमेश—यह तुम्हारी कृतज्ञता है!

तारा के ओष्ठ-प्रान्त से एक क्षीण हँसी की रेखा निकल कर शून्य में विलीन हो गई। रमेश ने मुग्ध दृष्टि से उसकी ओर देख कर कहा—व्यर्थ में समय खो रही हो। जब मै उठ कर चलने लगूँगा, तब कहोगी, हमें यह कहना है—वह कहना है!

तारा ने कहा—हाँ, तो बताओ, कल की हमारी बातों का क्या निर्णय किया ?

रमेश ने कुछ सोच कर कहा—तारा, संसार की ओर देखो, और फिर विचार करो। इस प्रकार संसार मे कभी काम नही चलता। अपने हृदय को समझाओ और शान्त करो।

तारा ने व्याकुल-भाव से कहा—कैसे मैं समझाऊँ, तुम्ही क्यो न समझा दो।

तारा के दीन शब्दों को सुनकर रमेश कुछ उत्तर न दे सके।

रमेश और तारा में बड़ी देर तक इसी तरह की बातें होती रहीं। ठीक

समय पर भोजन प्रस्तुत हुआ। रमेश ने भोजन किया और वस्त्र पहनते हुए तारा से कहा—अब मैं जाता हूँ।

तारा—क्यों, अभी तो गाड़ी में बड़ी देर होगी।

रमेश—नहीं अब गाड़ी आने का समय है।

यह कहते-कहते रमेश ने अपनी घड़ी देखी। तारा ने पूछा—क्यों, कितना बजा है?

रमेश ने उत्तर दिया—नौ बजा है।

तारा—लगभग साढ़े दस बजे गाड़ी आती है। अभी से जाकर क्या करोगे?

रमेश बैठ गये और बातें करने लगे।

जिस समय घड़ी में दस बजा, उन्होंने सबसे विदा होकर स्टेशन का रास्ता पकड़ा।

कई दिनों से रमेश कानपुर जाने के लिए चेष्टा कर रहे थे, बड़ी कठिनाई से आज छुटकारा मिला। किन्तु फिर भी जिस समय वह तारा से विदा होकर स्टेशन की ओर चले, उनको असह्य कष्ट हुआ।

स्टेशन जाते हुए रमेश ने तारा के सम्बन्ध में अनेक बातें सोच डालीं—तारा का जी कहीं नहीं लगता। उसका हृदय उद्भ्रान्त और विवश हो गया है। अपनी अवस्था को मेरे सम्मुख रख कर वह मुझसे उसका कारण पूछ रही थी। क्या वह अपनी अवस्था को पहचानती न होगी? यह कभी संभव नहीं। फिर क्या बात है कि अपनी उस अवस्था को स्वयं न कह कर मुझसे कहलाना चाहती थी? इन बातों के सम्बन्ध में मैं उससे स्पष्ट न पूछ पाया! देखते वह किस प्रकार अपनी इस अवस्था की समालोचना करती है। केवल इसी प्रश्न को हल करके मैं जान सकता कि उसके हृदय की गति किस ओर जा रही है—उसके मन का आकर्षण किस ओर है।

स्टेशन के निकट जाकर रमेश ने देखा—स्टेशन पर एक-दो मनुष्यों के

सिवा यात्रियो की भीड़ कहीं दिखाई नहीं देती। उन्होने एक स्टेशन-कर्मचारी से पूछा—गाड़ी के आने में कितना विलम्ब ?

कर्मचारी—पैसेंजर-ट्रेन को यहाँ से गये हुए लगभग एक घंटा हुआ।

रमेश ने विस्मय के साथ कर्मचारी की ओर देख कर पूछा—क्यों, कितना बजा है ?

कर्मचारी—साढ़े ग्यारह।

रमेश ने अपनी घडी देखी। उसमें अभी तक साढ़े दस बजने में भी कुछ मिनट शेष थे। उनको अपनी घड़ी के लेट होने का बड़ा विस्मय हुआ। सोचने लगे—मेरी घड़ी सदा ठीक समय देती रही है। आज इसके लेट हो जाने का क्या कारण है ?

क्षण भर में रमेश के मुख से अकस्मात् निकल पड़ा—यह सब तारा की ढिठाई है।

रामनगर स्टेशन से कानपुर एक ही बार गाड़ी आती-जाती है। इस गाड़ी से चूक कर वह चौबीस घंटे के लिए रामनगर में ही रुक जाने को विवश हो गए।

रामनगर लौट कर रमेश ने जिस समय सब से कहा, कि गाड़ी छूट जाने के एक घंटा पीछे हम स्टेशन पर पहुँचे थे, तारा वहीं पर खड़ी थी। उनकी बात सुन कर वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। उन्होंने अपूर्व भाव से उसके मुख की ओर देख कर मन-ही-मन कहा—अच्छा, जिस ढिठाई के साथ तुमने आज मुझको कानपुर जाने से रोक रखा, वह मेरी आँखों में घूम रही है।

दिन के तीसरे पहर रमेश ने बातें करते हुए कहा—यदि मैं जानता कि घड़ी तुमने 'स्लो' कर दी है, तो मैं घड़ी पर विश्वास न करता।

तारा—यदि मैं जानती कि तुम मेरे कहने से एक दिन ठहर भी न सकोगे, तो मैं तुमसे प्रेम न करती।

तारा की बात सुन कर रमेश ने विस्मित होकर उसके मुख पर तीक्ष्ण दृष्टि-पात किया और मुस्कुराते हुए कहा—किसने कहा था प्रेम करो ?

तारा—किसने कहा था घड़ी पर विश्वास करो ?

रमेश—भूल।

तारा—भूल।

रमेश—आज भूल का प्रायश्चित्त होगा।

तारा ने कुछ उत्तर न दिया। बड़ी देर तक उसकी ओर देखकर रमेश मन-ही-मन सोचने लगे-जब तक तारा के सम्मुख रहता हूँ, तब तक अपने आपको भूला सा रहता हूँ और जब विलग होता हूँ, तब न जाने मुझे किस प्रकार का कष्ट होता है। उससे बिलग होकर जीवन एक-एक क्षण कटना कठिन हो जाता है। यह कष्ट और व्यथा क्यों होती है ? मैं उससे केवल प्रेम करता हूँ। यह व्यथा क्या उसी का परिणाम है ? प्रेम में भी क्या व्यथा होती है ? जो हो, किन्तु जो कष्ट होता है, उसे कौन सहेगा ? अब तक सहा और संतोष किया। पर अब सहना कठिन है। इस प्रम का अन्त कहाँ है ? जहाँ अन्त होगा, वहीं शान्ति होगी। अब बस शान्ति की इच्छा है।

रमेश की घड़ी अपने हाथ में लेकर तारा देख रही थी। रमेश ने कहा—लोक-निन्दा जो होनी थी, हो चुकी। अब किस बात का भय है।

तारा ने कुछ भी उत्तर न दिया। रमेश ने फिर कहा—तारा, आज तुम मुझे क्षमा करोगी ?

रमेश की बात सुन कर तारा ने विस्मय के साथ रमेश की ओर देखा। उनके प्रदीप्त मुखमण्डल पर कलुषित वासना की म्लान आभा छिटक रही थी।

तारा का हृदय काँप उठा। रमेश कुछ कहना ही चाहते थे, तब तक तारा उठी और—जाती हूँ, भावज बुला रही हैं, फिर आऊँगी—कहती हुई जाने लगी।

रमेश ने झटक कर तारा की धोती पकड़ ली और कहा—बैठो, फिर जाना।

तारा ने संकोच भाव-से कहा—भावज बुला रही है, जाती हूँ, फिर आऊँगी।

रमेश ने अलसा कर कहा—थोड़ी देर बैठो, फिर चली जाना।

तारा बैठ गई। रमेश ने पूछा—तुम्हें किसी प्रकार का मेरे साथ संकोच है? तुम्हारे साथ प्रेम करके मुझे बड़ी व्यथा मिली है। आज उसका प्रतिशोध होगा।

तारा ने कुछ उत्तर न दिया। रमेश ने फिर पूछा—तुम्हें स्वीकार है?

तारा ने कहा—क्या?

रमेश तारा की पात का उत्तर न देकर सोंचने लगे—जिसके प्रेम से यह असह्य वेदना मिली है, जिसने मुझे बात-बात में बना रखा है—उसकी ढिठाई देखना है।

तारा अन्यमनस्क बैठी हुई थी। रमेश ने कहा—तारा, तुमने बहुत दुखी किया है, आज उसका समाधान करो।

तारा ने कातर स्वर में कहा—कैसे?

रमेश ने कुछ उत्तर न देकर तारा का एक बार दृढ़ालिंगन किया और कहा—तारा, आज मुझे क्षमा करोगी।

तारा के नसो की उत्तप्त शोणित-धारा चञ्चल हो उठी। उसके दोनों नेत्र जलने लगे। हृदय काँप उठा। वह आत्म-विस्मृत हो कर उनकी ओर देखती रह गई।

रमेश की कलुषित चेष्टा देख कर तारा के समस्त शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। उसके मुखमण्डल पर भीषण परिवर्त्तन!

रमेश स्थगित हो रहे। तारा के मुख से निकल पड़ा—बस और कुछ? बोले, क्या चाहते हो? ब्याह करोगे—क्या करोगे? बोलो? बोलो ना?

रमेश का हृदय काँप उठा। कुछ उत्तर न दे सके। उनका सिर लज्जावनत हो गया। अनेक क्षण पश्चात् उन्होंने सिर उठाकर देखा—तारा आँखो से अश्रुपात हो रहा है। उन्होंने व्याकुलता से पूछा—तारा, क्यों?

कुछ भी उत्तर न मिला। रमेश ने फिर पूछा, किन्तु कुछ उत्तर न मिलने पर लज्जा और संकोच से उनका हृदय फटने लगा। तारा की आँखों से अविरल अश्रुप्रवाह बहते देख कर वह अधीर हो उठे। सावधान हो कर बार-बार अपने वस्त्र से उसके नेत्रों का अश्रुमोचन करने लगे।

अनेक क्षण के पश्चात् तारा की आँखों का अश्रु-प्रवाह कुछ शान्त हुआ। रमेश के मुख की ओर भक्ति-भाव से देख कर तारा ने कहा—मैंने प्रेम किया था—अपना आत्म-समर्पण किया था, उस प्रेम का यह फल! उस श्रद्धापूर्ण आत्म-समर्पण का यह प्रतिफल! मैं जानती नहीं थी, प्रेम का यह फल होता है! मैं जानती थी, तुम मुझसे प्रेम करते हो—मुझे प्यार करते-हो—सखी-भाव से करते हो—निष्काम-भाव से करते हो! तुम्हारे हृदय में एक क्षण के लिये भी कुत्सित भावना उत्पन्न हो सकती है, मुझे स्वप्न में भी पता न था। मैंने भूल की! उसी भूल का यह प्रायश्चित्त है।

रमेश के मुख से कुछ न निकला। तारा की बातें सुनकर समस्त शरीर में विद्युत्-रेखायें फूट निकलीं। उसने फिर कहा—मैंने तुम्हारा बड़ा विश्वास किया था। मुझे विश्वास था, तुम मुझे प्रेम-भाव से हृदय लगाओगे—मेरा प्यार करोगे और संरक्षण करोगे। मुझे विश्वास था, तुम मेरे साथ कभी अनुचित व्यवहार न करोगे! इसी विश्वास पर आत्म-समर्पण करके मैंने समझा था कि एक बार तुम्हारे कुत्सित व्यवहारो को देखने पर भी मैं उन्हें सद्व्यवहार समझूँगी?

तारा का कंठ अवरुद्ध हो गया। आगे वह कुछ न कह सकी। अपने अंचल से मुख छिपा कर वह फूट-फूट रोने लगी।

हृदय के आवेगों की अतिशयता से किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो कर प्रस्तर-पुत्तलिकावत् रमेश एक दृष्टि से निर्व्वाक्—निस्पन्द! निश्चल!

इस अपूर्व अवस्था में रमेश के हृदय में भीषण संकल्प-विकल्प उठने लगे। बड़ी देर तक अश्रुपात करने के पश्चात् तारा का हृदय कुछ शान्त

हुआ। ज्ञानोन्मेष होने पर गम्भीर दीर्घ-श्वासोच्छ्वास उसके अन्तस्तल से निकलकर ग्रीष्म-दिवस के उत्तप्त समीरण में मिश्रित हो गया।

तारा ने मुख खोलकर देखा—रमेश की आँखों से अश्रु-विन्दु टूट-टूट कर भूमि पर टपक रहे हैं। दोनों नेत्र लाल हो गये हैं।

तारा का हृदय ग्लानि भावना से भर उठा। क्षोभ, दुःख और अनुशोचना से उसका अन्तःकरण विक्षुब्ध होने लगा। उसने एक बार श्रद्धा-पूर्ण नेत्रों से रमेश की ओर देखा।

रमेश अपने आपको सम्हाल न सके। तारा के चरणों पर मस्तक रखकर रो उठे—तारा, क्षमा करो। तुम देवी हो, तुमसे भूल नहीं हुई, भूल मुझसे हुई है। अब क्षमा करो! तुम्हारा हृदय निर्मल है, तुम देव-बाला हो। तुमसे भूल न होगी! भूल मुझसे होगी। मै मनुष्य हूँ—और उस मनुष्य समाज का एक अंश हूँ—जो सभ्य होकर भी अत्यन्त नीच, और शिष्ट हो कर भी जघन्य, तथा शुद्ध धार्मिक होकर भी अत्यन्त पतित है।

तारा ने रमेश को उठाकर वक्षस्थल से लगा लिया!

४८

प्रातःकाल के आठ से अधिक बजे होंगे। कानपुर जाने का रमेश सब प्रबन्ध कर चुके हैं। गाड़ी आने का समय अभी दूर है। केवल इसीलिये रमेश कमरे में बैठे हुए 'यंगइंडिया' पत्र देख रहे है।

रमेश को 'यंगइण्डिया' पढ़ते हुए अभी अधिक विलम्ब नही हुआ था कि पोस्टमैन ने आकर उनके हाथ में एक पत्र दिया। परम उत्सुकता के साथ उन्होंने पत्र लेकर पढ़ना आरम्भ किया। उसमें लिखा था—

प्रिय रमेश बाबू

रामनगर जाते समय सम्भवतः चार-पाँच दिनों के लिए कह गये थे।

पता नहीं, चार-पाँच दिनों का अर्थ आपने क्या समझ रखा है। पर्याप्त समय तक प्रतीक्षा करके मैंने आपको एक पत्र लिखा था, किन्तु दुर्भाग्य वश मुझे अबतक उसका उत्तर नहीं मिला। यद्यपि मैंने उत्तर की आशा न की थी, पर जब आप न आ सके थे, तो क्या एक कार्ड में दो-चार पंक्तियाँ लिखकर भेजने में किसी ने आपका हाथ पकड़ रखा था? समझ में नहीं आता क्या बात है। परमात्मा करे, आप कुशल हों। यदि उचित समझें तो मेरी प्रार्थना को स्वीकार करें और एक बार आकर दर्शन देवें। फिर चाहे आजीवन के लिये......

आपका—मोहन

बाबू राधामोहन का पत्र पढ़कर रमेश के हृदय में एक प्रकार का आघात-सा हुआ। मानो वह चिरकाल की निद्रा को भंग करके सोते से जगे। कुछ समय तक सोचकर रमेश ने घड़ी में देखा, नौ बजकर पन्द्रह मिनट हुए थे। गाड़ी का समय निकट जान सबसे मिलकर विदा हुए।

स्टेशन जाते समय मार्ग में राधामोहन के पत्र पर अनेक बातें सोच डालीं। स्टेशन पहुँच कर टिकट-आफिस से टिकट लिया और प्लेटफार्म पर पड़ी हुई बेंच पर जाकर बैठ गये।

यथासमय गाड़ी आई और रमेश गाड़ी में जाकर बैठ गये। गाड़ी जिस समय छूटी, उनके हृदय में अनेक संकल्प-विकल्प उठने लगे। किस समय गाड़ी रामनगर से चली और कब उसने कानपुर तक का लम्बा मार्ग पार किया, उनको कुछ पता न लगा।

कानपुर ठीक समय गाड़ी पहुँची। रमेश गाड़ी से उतर कर ताँगे पर अपने घर चले गये।

सायंकाल के छः बज चुके हैं। रमेश अपने घर में बैठे हुए कुछ सोच रहे हैं। थोड़ी देर में लेटर-पेपर उठा कर उन्होंने एक पत्र लिखना आरम्भ किया—

श्रद्धेय बाबू राधामोहन जी

सादर वन्दे

मैं आज कानपुर आ गया हूँ। घर पर आये हुए पत्र देख रहा हूँ। अवकाश मिलने पर आकर दर्शन देंगे। अधिक दयाभाव !

आपका—रमेश

पत्र लिख कर रमेश ने एक मनुष्य के द्वारा बाबू राधामोहन के घर भेज दिया। पत्र भेजे हुए अभी अधिक विलम्ब नहीं हुआ, अकस्मात् स्लीपर पहने हुए राधामोहन ने घर में प्रवेश किया।

रमेश ने राधामोहन को देख कर वन्दे किया। राधामोहन ने वन्दे कह कर पूछा—कब पधारे ?

रमेश—आज ही आया हूँ।

राधामोहन—आ गये, मैंने तो आशा न की थी।

रमेश ने मुस्कुरा कर कहा—आपका पत्र मिलता और मैं आता नहीं, यह कैसे हो सकता है !

राधामोहन ने हँस कर कहा—यह तो आपके बिना कहे हुए भी मैं समझ सकता हूँ।

राधामोहन की बात सुन कर रमेश ने हँस दिया। राधामोहन ने कहा—चलो, कहीं घूमने चलें।

रमेश—कहाँ चलोगे ?

राधामोहन—फूलबाग।

दोनों मित्र साथ-साथ फूलबाग की ओर चले। चलते हुए राधामोहन ने पूछा—मेरा कोई पत्र मिला था ?

रमेश—हाँ, प्रातः आठ बजे के लगभग मैं बैठा हुआ यंगइण्डिया देख रहा था उस समय आपका पत्र मिला था।

राधामोहन—शायद उसी को पाकर आपने आने की दया की।

रमेश—नही, मैं आज आने के लिए तैयार बैठा था। गाड़ी का समय दूर था। इसी लिए यंगइन्डिया पढ़ कर समय काट रहा था।

राधामोहन—मेरा और कोई पत्र मिला था?

रमेश—हाँ, मिला था। किन्तु आने की चेष्टा करने पर भी मैं आ न सका था।

राधामोहन—जिस प्रकार आपका समय आज-कल बीत रहा है, उसे देख कर मुझे संतोष नही है। पहले पत्र पर जब आप नहीं आये तो मुझे बड़ा क्षोभ हुआ था। मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि मैं आप से अप्रसन्न हूँ। इसी लिए मैं आपको यहाँ लिवा कर आपसे कुछ बातें करना चाहता हूँ।

रमेश ने मुस्कुराते हुए कहा—कैसी बातें?

राधामोहन—पहले तो यह बताइये कि आप अपना समय इस प्रकार क्यों खो रहे हैं?

रमेश—आप जानते होंगे कि मेरा समय केवल विनोद और मनोरञ्जन में बीता है। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मैं स्वयं इस प्रकार के जीवन से अश्रद्धा रखता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरा जीवन विनोद और आमोद-प्रमोद के लिए नही है। कुछ घटनायें ऐसी आ गई थीं, जिनसे मुझे अपना समय इस ओर लगाना पड़ा।

राधामोहन—यह सब ठीक है, किन्तु जिस प्रकार आपका जीवन व्यतीत हो रहा है, वह असंतोषजनक है। आपके हृदय का आकर्षण न जाने किस ओर है। यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि उससे देश, समाज, जीवन, मित्र आदि सबकी अवहेलना हो रही है।

रमेश—आपकी बातों का विरोध करने की इच्छा से नहीं, केवल आपके सन्तोष के लिये उत्तर दूँगा। मुझे अपने ऊपर विश्वास है कि मैंने किसी प्रकार किसी के प्रति अवहेलना नहीं की। आपको पत्र नही भेज सका,

इसके यह अर्थ नहीं होते कि मैं आपको भूल गया था। यदि संसार की समस्यायें कभी आपने अनुभव की हैं, तो मेरी धारणा है कि इसके कारण कुछ ऐसी उलझनें आ पड़ती है जो इस प्रकार विवश कर देती है।

राधामोहन—मैं जानता हूँ कि आप बातें बनाकर समाधान कर देंगे। किन्तु मुझे किसी प्रकार संतोष नहीं हो सकता।

रमेश—मै पहले कह चुका हूँ कि आपकीं बातों का विरोध करने की इच्छा से नहीं केवल आपकी अप्रसन्नता के समाधान करने के लिये उत्तर दे रहा हूँ।

राधामोहन—यह कुछ नहीं। अब दो बातों में एक ही बात हो सकती है, या तो आप तारा का सम्बन्ध रख सकते हैं, अथवा मेरा। मित्र-भाव के नाते से मेरा कर्त्तव्य था कि आपको विपथ से पथ पर लाने की चेष्टा करता। किन्तु मैं देखता हूँ कि मेरी बातों का कोई फल नहीं होता। इस लिये मैंने निश्चय कर लिया है कि यदि मेरी बात आप स्वीकार न करें, तो मैं अपना सम्बन्ध आप से तोड़ दूँ।

बातें करते हुए रमेश और राधामोहन फूलबाग में पहुँच कर एक तिपाई पर बैठे हुए हैं। राधामोहन की बात सुन कर रमेश काँप उठे। तारा का नाम सुनते ही अकस्मात् उनके अन्तःकरण में आघात-सा हुआ। तारा का सम्बन्ध तोड़ देने के लिये राधामोहन का अनुरोध सुन कर उनके हृदय में अनेक भावनायें उठने लगी—तारा का सम्बन्ध तोड़ दूँगा। उसने क्या अपराध किया है? सम्बन्ध तोड़ सकता हूँ, किन्तु किस आधार पर? क्या वह सम्बन्ध इस योग्य है जो तोड़ा जा सके? क्या उस सम्बन्ध को तोड़कर मैं अपने जीवन का सुख देख सकूँगा।

रमेश को एक बार तारा के साथ की अन्तिम घटनाओं का स्मरण हुआ। अपनी यह अज्ञात अवस्था और तारा का प्रकृत प्रेम क्षण-भर में उनके

नेत्रों में घूम गया। फिर सोचने लगे—मैं उसका सम्बन्ध क्या तोड़ूँगा, वही मेरा सम्बन्ध तोड़ देगी। मैं उसे क्या भूलूँगा, वही मुझे भुला देगी। फिर भी क्या मै उसे भूल सकता हूँ? उसके जीवन का प्रकृत रहस्य अपने जीवन में क्या मुझे एक क्षण के लिए भी विस्मृत हो सकता है, कभी नहीं, असम्भव है, नितान्त असम्भव है। तब फिर ऐसी दशा में बाबू राधामोहन के आग्रह का क्या फल होगा?

बड़ी देर तक रमेश से कोई उत्तर न पाकर राधामोहन ने फिर पूछा—मै आपसे सच कह रहा हूँ, आप स्पष्ट कह दें, निस्संकोच होकर निर्णय करें और मुझे अभी उत्तर दें। यदि आप उस सम्बन्ध को न तोड़ सकें तो मुझसे स्पष्ट कह दें।

बड़ी देर तक सोचने के पश्चात् भी रमेश की समझ में नहीं आया, कि राधामोहन की बात का मै क्या उत्तर दूँ। उनके अन्त.करण में एक प्रकार की ज्वाला-सी जलने लगी। वह कुछ उत्तर न दे सके।

राधामोहन ने फिर पूछा—क्यो, क्या निर्णय करते हो?

रमेश ने कहा—मै अभी कुछ उत्तर नहीं दे सकता।

राधामोहन—नहीं, अभी आपको उत्तर देना होगा। उसके लिए यदि आप इतने विवश है तो मुझसे आप स्पष्ट कह सकते हैं।

तारा की बातों का स्मरण कर के रमेश ने एक दारुण वेदना का अनुभव किया। राधामोहन के बार-बार हठ करने पर उन्होंने कहा—भाई राधा-मोहन, आज मै तुम्हारे मुख से क्या सुन रहा हूँ। जिन बातों की मैंने कभी स्वप्न में भी आशा न की थी, आज मैं अपने कानों से उन्हें सुन रहा हूँ। जिस बात का मुझसे उत्तर चाहते हो, अभी तक वह मेरी समझ में नहीं आई। मै इसके लिए कुछ समय चाहता था, किन्तु तुम एक क्षण का भी समय देने को प्रस्तुत नहीं हो। जैसी तुम्हारी इच्छा!

रमेश का हृदय गद्गद् हो आया। राधामोहन ध्यान-पूर्वक सुन रहे

थे। रमेश ने फिर कहा—आपकी मित्रता की जितनी मेरे हृदय में सत्ता है, तारा के प्रकृत-जीवन पर उतनी ही मेरी श्रद्धा है। जब मैं आपकी मित्रता की ओर देखता हूँ, तो कुछ समय के लिए तारा को भूल जाता हूँ, किन्तु जब तारा के श्रद्धेय जीवन का स्मरण होता है, तो क्षण भर के लिए मुझे यह संसार विस्मृत हो जाता है। भाई राधामोहन, तुम मुझे क्षमा करोगे। मेरा हृदय बड़ा दु:खी हो गया है। मैं तुम्हारी दया का भिखारी हूँ। तुम मुझे अपना समझ कर क्षमा करो।

कुछ ठहर कर रमेश ने राधामोहन की ओर दीन नेत्रों से देखा। उनके कुछ न कहने पर रमेश ने फिर कहा—तुम्हारा यह आग्रह मेरे लिए हितकर न होगा। तुम्हारे मुख से—या तो तारा का ही सम्बन्ध रख सकते हो, अथवा मेरा—सुन कर मेरे हृदय में दारुण व्यथा होती है। मैं सोचता हूँ, तुम्हारी इन बातों का मैं क्या उत्तर दूँ। और मै यह भी सोचता हूँ कि यदि तारा भी मुझ से इसी प्रकार का आग्रह करे, तो मैं उसके सम्मुख तुम्हारे लिए केवल उत्तर में तारा को त्याग सकता हूँ, और जब तुम वही आग्रह करते हो, तो तुम्हारे सम्मुख मैं केवल शब्दों में तारा के कारण तुमको छोड़ सकता हूँ। किन्तु वास्तव में मै क्या करूँगा, यह दूसरी बात है। भाई राधामोहन, मेरे इस जीवन से दोनों सम्बन्धों का गम्भीर नाता है। इन दोनों में मैं किस सम्बन्ध को त्याग सकता हूँ, यह निर्णय करना मेरे लिए असम्भव है। ऐसी अवस्था में मैं तुमसे विनय करूँगा मेरे इस अभागे जीवन पर दया करो। किन्तु फिर भी यदि तुम्हारे आग्रह का समाधान न होगा, तो मैं अपने इस अभागे जीवन को समाप्त करूँगा। किसी का संबंध विच्छेन न करूँगा। किसी का सम्बन्ध-विच्छेद सहय न होगा।

कहते-कहते रमेश के नेत्रों में आँसू आ गये। अपनी धोती में उन्होंने अपना मुख छिपा लिया। उनकी यह अवस्था देख कर राधामोहन का हृदय दयार्द्र हो उठा। बोले—रमेश, तुम्हें क्या हुआ है? तुम आज एक बालिका

की भाँति मेरे सम्मुख आँसू वहा रहे हो। मैं इस प्रकार की बातें करके देखता था, तुम क्या उत्तर देते हो। क्या तुम्हें विश्वास है कि मैं कभी तुम्हारा सम्बन्ध-विच्छेद कर सकता हूँ ?

राधामोहन ने रमेश के मुख से धोती खींच कर देखा—उनकी आँखें आँसुओं से डबडबाई हुई है। वह बार-बार उनको समझाने लगे।

रमेश वहीं हरी-हरी घास पर लेट गये। उनके हृदय से एक वेदना-भरी सन्तप्त साँस निकल कर सायंकाल की शीतल समीर में मिश्रित हो गई।

४९

तारा के सम्बन्ध में रामा ने अपना हृदय जबसे निर्मल कर दिया है, उसका स्नेह और प्यार तारा की ओर बढ़ता जाता है। जितना ही शुद्ध-भाव से वह तारा का स्मरण करती है, उतना ही तारा का प्रेम उसके हृदय में स्थान करता जाता है।

कुछ समय से रामा की इच्छा हो रही है कि रामनगर जाऊँ और तारा के साथ रहूँ। तारा का स्नेह उसको बार-बार विवश करने लगा—रामनगर जाने और तारा से भेंट करने के लिए। किन्तु वह रामनगर कैसे जाये, किस प्रकार तारा से भेंट करे, यह उसकी समझ में किसी प्रकार न आया।

एक दिन बैठे हुए रमेश से रामा बातें कर रही थी। अनेक प्रकार की बातें करने के पश्चात् उसने उनसे कहा—मेरी बड़ी इच्छा हो रही है राम-नगर जाकर तारा के साथ कुछ दिनों तक रहने के लिए।

रमेश ने रामा की बात को बार-बार हृदयंगम करके कहा—तारा के प्रति तुम्हारे हृदय में जितना ही मैं स्नेह पाता हूँ, मुझे उतनी ही प्रसन्नता होती है। मैं तुम्हें हर्षपूर्वक भेजने के लिए प्रस्तुत हूँ। तुम रामनगर जाओ

और उसके साथ प्रेम-भाव से रहो। मेरा विश्वास है कि वहाँ जाकर जितना ही तुम प्रेम और शुद्ध-भाव से उसके साथ रहोगी, उतना ही तुम्हें अपने जीवन में सुख का अनुभव होगा।

रामा के कई बार अनुरोध करने पर रमेश ने उसको रामनगर भेज दिया। वहाँ जाकर वह तारा से बड़े स्नेह के साथ मिली। उसके सद्व्यवहार से तारा को जितना हर्ष हुआ, उसे तारा ने ही अनुभव किया।

रामनगर आये हुए रामा को धीरे-धीरे डेढ़ सप्ताह हो गया। तारा के साथ प्रेम करके उसको अनन्त सुख मिला। वह तारा के साथ जितना ही सद्व्यवहार करती, तारा उसका उससे भी अधिक सम्मान करती।

दोनों बहनों में गाढ़ स्नेह हो गया। खाना-पीना, उठना-बैठना, सब एक साथ होने लगा। रामा जिस समय भोजन करने बैठती, तारा को पहले बुलाकर बिठा लेती, और जब तारा को भोजन करना होता, तो रामा बिना वह पाकशाला में पैर न रखती।

रामनगर से रमेश को आए हुए लगभग डेढ़ मास हो गया। तारा का कोई समाचार न मिला। वह नित्य तारा की बातें सोचते और क्षोभ तथा चिन्तना से व्याकुल होने लगते।

एक दिन रमेश बैठे-बैठे सोचने लगे—पता नहीं, तारा के हृदय में मेरे सम्बन्ध में कैसे विचार हैं। उसके प्यार और स्वाभाविक स्नेह में जो मुझे आनन्द था, वह जीवन पर्यन्त अब न मिलेगा। यदि उसकी श्रद्धा मेरे ऊपर से जाती रही और उसने मुझे भुला दिया, तो फिर मैं क्या करूँगा? अब भी उपाय है, जिससे मैं उसका फिर प्यारा बन सकूँ? जहाँ तक मेरा अनुमान है, उसका मेरे ऊपर विश्वास अब न रहेगा। किन्तु यदि वास्तव में ऐसा ही हुआ, तो मैं संसार में फिर भी जीवित रहूँगा, इसमें सन्देह है।

इस प्रकार रमेश के हृदय में प्रायः चिन्तनायें उठा करतीं। एक दिन वह योंही बैठे हुए थे। पोस्टमैन ने आकर उनको एक लिफाफा दिया। उसे फाड़ कर वह पढ़ने लगे....

श्रद्धेय रमेश बाबू

इतना समय हो गया, जिस दिन से गये, आज तक आपने कोई पत्र नही भेजा। अनेक बार मैंने आपकी याद की और आशा की कि आपका कोई पत्र मिलेगा, किन्तु दुर्भाग्य! आपका कोई पत्र न मिला। इतने समय तक पत्र की बाट देखकर निराश हो जाने पर आज मैं आपको पत्र लिखने बैठी हूँ। आशा करती हूँ कि यथासमय पत्रोत्तर देंगे और एक बार आकर फिर दर्शन देंगे।

आपकी—तारा

पत्र को पढ़ कर रमेश को परम हर्ष हुआ। तारा के सम्बन्ध में नित्य जो सोच-विचार कर वह व्याकुल हुआ करते थे, आज सब भ्रम दूर हो गया। उन्होंने उसी समय उसके पत्र का उत्तर लिखा, और रामनगर जाकर उससे मिलने की बात सोचने लगे।

पत्र भेजने के ठीक छठे दिन रमेश रामनगर पहुँचे। उनके आने की बात जिस समय तारा के कानों में पहुँची, उसको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। जिस समय रमेश उससे मिले, उसको देखते ही एक बार उनके नेत्रों में पूर्व घटनायें घूम गईं। उन्होने श्रद्धापूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा। उसने मुस्कुरा दिया!

* * * *

रमेश को रामनगर आये कई दिन बीत गये। तारा के समीप बैठने-उठने और प्रेमालाप करने से उनकी अन्तरात्मा को विशेष शान्ति मिली।

* * *

तारा पर रमेश की जितनी श्रद्धा है, वह भी उनके साथ उतना ही प्रेम करती है, और रामा जितना ही तारा के साथ सद्व्यवहार करती है, वह भी रामा का उतना ही सम्मान करती है। प्रेम के इस पारस्परिक सहयोग से अनन्त सुख का आविर्भाव हुआ।

जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में रह कर भी रमेश को जो सुख कभी न मिल सका था, वह सुख आज उनके सम्मुख है।